लेखनकला
का
इतिहास
प्रथम खण्ड
ईश्वरचन्द्र राही

इस ग्रन्थ में

विभिन्न देशों के प्राचीन एवं
अर्वाचीन ६० मानचित्र;

☐

सिन्धु – घाटी–लिपि का
रहस्योद्घाटन का प्रयास करने वाले
२५ विद्वानों के निष्कर्ष;

☐

विश्व की समस्त प्राचीन एवं
अर्वाचीन लिपियाँ एवं प्रतिदर्श
३८१ फलकों पर;

☐

३६२ प्रकार की मृतक
एवं जीवित लिपियों के रूप;

☐

विभिन्न लिपियों की,
खोज करने वाले,
उत्खनन करने वाले,
उनको पढ़ने वाले,
विद्वानों के नाम;

☐

विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों के
नाम (जिनको पढ़कर यह ग्रन्थ
लिखा गया);

☐

दिये गये हैं

लेखन कला का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

हि० ग्रं० अ० प्रभाग ग्रन्थाङ्क : २५९

लेखन कला का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

लेखक
ईश्वर चन्द्र राही

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ—२२६००१

प्रकाशक

विनोद चन्द्र पाण्डेय

निदेशक,

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,

लखनऊ

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय,

भारत सरकार की विश्वविद्यालयस्तरीय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत,

हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित।

पुनरीक्षक

प्रोफ़ेसर डॉ० लल्लन जी गोपाल

विभागाध्यक्ष : प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं

पुरातत्त्व विभाग, कला संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

वाराणसी।

प्रथम संस्करण : १९८३

प्रतियाँ : २२००

मूल्य : १०७ रुपया (एक सौ सात रुपया)

मुद्रक

जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०

गोलघर, वाराणसी

प्रस्तावना

शिक्षा-आयोग (१९६४-६६) की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने १९६८ में शिक्षा सम्बन्धी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और १८ जनवरी, १९६८ को संसद के दोनों सदनों द्वारा इस सम्बन्ध में एक सङ्कल्प पारित किया गया। उक्त सङ्कल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालयस्तरीय पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार की शत-प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य में एक ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की गयी। इस राज्य में भी विश्वविद्यालय स्तर की प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के लिए हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ७ जनवरी, १९७० को की गयी।

प्रामाणिक ग्रन्थ-निर्माण की योजना के अन्तर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों को हिन्दी में अनूदित करा रही है और अनेक विषयों में मौलिक पुस्तकों की भी रचना करा रही है। प्रकाश्य ग्रन्थों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अन्तर्गत वे पाण्डुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित करायी जा रही हैं जो भारत-सरकार की मानक-ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत इस राज्य में स्थापित विभिन्न अधिकरणों द्वारा तैयार की गयी थी।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत मुद्रित एवं प्रकाशित करायी गयी है। इसके लेखक श्री ईश्वर चन्द्र राही हैं। इसका पुनरीक्षण प्रो० डॉ० लल्लन जी गोपाल ने किया है। इन दोनों विद्वानों के इस बहुमूल्य सहयोग के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान उनके प्रति आभारी है।

श्री राही जी द्वारा प्रस्तुत 'लेखन कला का इतिहास' उनके विशद अध्ययन और अध्यवसाय का परिचायक है। उसमें उन्होंने समस्त विश्व की भाषाओं के उद्गम, लिपियों के आविष्कार और इतिहास के बदलते हुए चरणों का विकासक्रम दिखाते हुए प्रत्येक प्राचीन देश के मूल स्वरूप, उसकी जातिगत विशेषता तथा आधुनिक उपलब्धियों का वैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। लिपियों के उद्भव एवं विकास का निरूपण करते हुए प्राचीन मानक चित्रों द्वारा सभ्यता और संस्कृति के विकास में मानवजाति के सामूहिक योगदान का भी समुचित उल्लेख है। इस प्रकार भाषा, लिपि, पुरातत्त्व, काल निर्धारण और प्राचीन इतिहास के आधार पर सिन्धु-धाटी, दक्षिण एशियाई देशों, पश्चिम एशियाई देशों तथा मध्य व पूर्वी एशियाई देशों को लेखन कला के विकास के साथ-साथ नृविज्ञान के आधार पर समस्त मानवता का इतिहास भी रेखांकित किया गया है। राही जी ने ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न भण्डारों का आकलन कर विश्व मानक की जिज्ञासाओं के सहज विकास को वर्तमान दुर्धर्ष तकनीकी युग तक की मंगल यात्रा के रूप में निरूपित किया है। जहाँ तक मैं जानता हूँ भारतीय भाषाओं में यह अपने ढंग का अनन्य प्रयास है, निश्चित ही राही जी के इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी संस्थान गौरवान्वित हो सकेगा। वे हम सबके साधुवाद के पात्र हैं।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'
उपाध्यक्ष
उ० प्र० हिन्दी संस्थान,
लखनऊ

प्राक्कथन

मानव सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन समय-समय पर प्रस्फुटित हुए हैं। मानव समाज को नयी दिशा देनेवाले आविष्कारों के सापेक्षिक महत्त्व का निर्धारण दुष्कर है, तथापि इनमें लेखन-कला की उपयोगिता किसी से कम नहीं है। मानव के अन्य जीवों पर प्राप्य श्रेष्ठता के सूचक गुणों और उपलब्धियों में भावों और विचारों को अंकित करने की उसकी क्षमता विशिष्ट है। इसके कारण मानव के लिए यह सम्भव हो सका है कि वह ज्ञान का सर्जन, संरक्षण, संवर्धन और सातत्य बनाये रखे। वह अपने अनुभवों, विचारों और कल्पनाओं को भी मूर्त और स्थायी रूप दे सकता है।

लेखन कला के आविष्कार, उसमें सुधार और विकास की कथा अत्यन्त रोचक है। उससे कुछ कम रोमांचक नहीं है इन आविष्कारों की कथा और अनेक भूली-बिसरी लिपियों को पहचानने और समझने का आधुनिक विद्वानों का प्रयास। लेखन कला का इतिहास इतना विस्तृत है और तथ्यों की इतनी अधिकता है कि उनका विधिवत् अध्ययन और समुचित प्रस्तुतीकरण सरल नहीं है। इस क्षेत्र में श्री ईश्वरचन्द्र राही का प्रयास स्तुत्य हैं। अर्थाभाव के होते हुए भी उन्होंने दीर्घकालीन अध्ययन के द्वारा एक कठिन कार्य को सम्पादित किया है। मुझे स्वयं पता है कि किस प्रकार अनेक देशों की यात्रा करके, अनेक पुस्तकालयों में अध्ययन करके और विशिष्ट विद्वानों से परामर्श करके उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है। इस पुस्तक की रचना की अपनी एक रोचक कथा है जो किसी भी नैष्ठिक, कर्मठ और जिज्ञासु व्यक्ति के लिए प्रेरणा एवं स्फूर्ति का स्रोत सिद्ध होगी।

मुझे हर्ष है कि इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का संयोग मुझे प्राप्त हुआ है। मैंने इस पुस्तक का औपचारिक पुनरीक्षण भी किया है। हिन्दी ही नहीं अन्य किसी भाषा में इससे तुलनीय उद्देश्य, विस्तार और शैली के ग्रन्थ विरल हैं। मानव की सांस्कृतिक विरासत को समझने में सहायक यह पुस्तक विभिन्न समाजों में परस्पर सहयोग और आदान-प्रदान की प्रक्रिया स्पष्ट करके समता और सद्भावना के विचारों और प्रयासों को बल देगी।

श्री राही को उनके इस बहुमूल्य योगदान के लिए साधुवाद देते हुए माँ सरस्वती से मेरी प्रार्थना है कि उनको स्थायी यश का भागी बनाये।

प्रो० लल्लन जी गोपाल
एम० ए०, डी० फ़िल (इलाहाबाद),
पी एच० डी० (लन्दन),
विद्या चक्रवर्ती (मानद)

संकाय प्रमुख, कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी – २२१००५

दो शब्द

जब मैं सन् १६२८ में ८ वर्ष की आयु में सर्वप्रथम एक सायकिल – विश्व – यात्री के सम्पर्क में आया तो मनरूपी कक्ष के एक कोने में यात्रा करने की प्रेरणा का बीजारोपण हो गया। चैतन्यता तथा उत्सुकता के खाद एवं पानी देने से वह बीज अंकुरित होकर बढ़ता रहा। २ जून १६३८ को वही बीज एक फल के रूप में परिवर्तित हो गया, जब मैंने अपनी प्रथम सायकिल-यात्रा दिल्ली से पंजाब की ओर इस आशय से आरम्भ कर दी कि मैं एक ऐतिहासिक खैंबर दर्रे को पार करके विदेश चला जाऊँगा। परन्तु अंग्रेजी राज्याधिकारियों ने मुझे अनुमति नहीं दी और मैं अपने देश 'अखण्ड भारत' को जानने व समझने में लग गया।

भारत के सुदूर पश्चिमी, दक्षिणी, पूर्वी तथा उत्तरी पर्वतीय भागों की यात्रा में मेरा ध्यान एक मुख्य समस्या की ओर आकर्षित हुआ और वह समस्या थी भाषा को अर्थात् बोली व लिपि की। अंग्रेज़ी राज्य में अंग्रेज़ी भाषा द्वारा अहिन्दी भाषा-भाषियों से विचार-विनिमय का कार्य चलता रहा, परन्तु समस्या, समस्या ही बनी रही और मन में कुलबुलाती रही। न समस्या का पूर्ण रूप और न उसके किसी निदान का रूप मस्तिष्क में आ सका।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक समस्याएँ कुछ आंशिक रूप में सुलझने लगीं और विद्वानों का ध्यान भारत की राष्ट्रभाषा के निर्माण एवं एकता की ओर अग्रसर होने लगा तो मेरे मन की वह कुलबुलानेवाली समस्या भी अपने स्थूल रूप में प्रकट होने लगी और मैंने सन् १६५८-६० में पुनः सायकिल – यात्रा आरम्भ कर दी। अब मैं ३८ वर्ष का एक विकसित मानव बन चुका था, विचारों में भी परिपक्वता आ चुकी थी। इसके अतिरिक्त भी मैं बम्बई में सन् १६५२ - ५४ तक केन्द्रीय सरकार की ओर से विदेशी यात्रियों के लिए एक पथ-प्रदर्शक भी रह चुका था, जिसने उसी कुलबुलाती समस्या को अत्यधिक प्रज्ज्वलित कर दिया था।

दूसरी बार की सायकिल – यात्रा ने भाषा एवं लिपि की समस्या पर मुझे कुछ गहरी दृष्टि से सोचने एवं समझने का अवसर प्रदान किया। एक प्रश्न, जिसका जन्म तो हो चुका था, परन्तु उसका स्पष्ट रूप सामने नहीं आया था, सदैव उठता रहा कि जब भारत की मुख्य १५-१६ भाषाएँ – बोली व लिपि और उनकी लगभग २६५ बोलियों के रूप में शाखाएँ हैं, जिनका एकीकरण असम्भव सा प्रतीत होता है तो विश्व की भाषाओं का एकीकरण तो एक युटोपियन विचार होगा।

अपने इसी सायकिल – यात्रा – काल में मैंने एक पुरातत्त्व-सम्बन्धी पुस्तक के लिए हैदराबाद में प्रान्तीय सरकार के पुरातत्त्व विभाग के तात्कालिक निदेशक श्री मोहम्मद अब्दुल वहीद से भेंट की और उनसे कुछ चर्चा राष्ट्रभाषा

हिन्दी व उसकी देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में हुई तब उन्होंने कुछ प्राचीन लिपियों के अभिलेख दिखाये तथा उनकी एकता पर कुछ प्रकाश डाला। अब क्या था, अन्धे को दो आँखें मिल गयीं, अँधेरी राह पर चलने के लिए एक कभी न बुझनेवाला दीप मिल गया और कुछ अध्ययन के पश्चात् यह भी पता लग गया कि भारत की समस्त लिपियों का एक ही स्रोत ब्राह्मी है। उसी की खोज में लग गया और अध्ययन की सही दिशा में अग्रसर होने लगा।

जब एक देश में भाषाओं एवं लिपियों की समस्या है तो विश्व में कितनी समस्या होगी ? क्या भारत की लिपि देवनागरी का सम्बन्ध विदेशों की लिपियों से है या हो सकता है ? क्या भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी – देवनागरी विश्व-भारती के पथ पर अग्रसर हो सकती है ? क्या एक भारतीय अपनी राष्ट्रभाषा के द्वारा विश्व की अन्य भाषाएँ सीख सकता है ? क्या भारत की तरह विश्व की अन्य लिपियों का स्रोत भी एक है ? ऐसे प्रश्नों ने मुझे न केवल विश्व की लिपियों के अध्ययन करने की प्रेरणा प्रदान की, अपितु भिन्न-भिन्न देशों की लिपियों के जन्म व विकास के विषय में शोध करने के लिए विश्व की सायकिल – यात्रा करने के लिए भी प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप मैं १९७४ में ५८ वर्ष की आयु में अपनी सायकिल – यात्रा पर निकल पड़ा और ३५ देशों की यात्रा दो वर्ष में पूरी कर ली। इस यात्रा के पूर्व ही मैंने इस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था और उसको चार पुस्तिकाएँ तथा एक बृहद् ग्रन्थ लिखकर एक रूप भी दे चुका था। इस विश्व – सायकिल – यात्रा में मैंने अनेक पुरातत्त्व – विभागाध्यक्षों से भेंट करके इस विषय पर विचार-विमर्श किया। इस विषय की ऐसी अनेक पुस्तकों व ग्रन्थों का अवलोकन किया जिनका भारत में उपलब्ध होना असम्भव था। स्वीडन तथा जर्मनी में मैंने स्वयं चार्ट्स बनाकर भारत तथा अन्य मुख्य देशों के वर्णों की प्रदर्शनियाँ कीं तथा भाषण दिये। इन कार्यों से मेरे ज्ञान का विस्तार हुआ तथा भारत की देवनागरी लिपि की सरलता का प्रचार हुआ तथा अनेक पाश्चात्य देशवासियों को लिपियों के तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर मिला।

इस पुस्तक में आदिकाल अर्थात् ५००० वर्ष पूर्व से वर्तमान काल तक की लगभग सभी लिपियों के जन्म व विकास की तथा अन्य लिपियों से उनके सम्बन्ध की, विस्तार से प्रमाणों सहित चर्चा की गयी है। जहाँ – जहाँ से प्राचीन लिपियाँ उत्खनन द्वारा निकाली गयीं, वे भिन्न-भिन्न देशों के सारे स्थान मानचित्रों में दिये गये हैं। साथ साथ उन लिपियों का काल एवं देश का – प्राचीन से अर्वाचीन तक का – इतिहास, प्राचीन मानव का लिपियों के विकास में योगदान का रूप तथा अर्वाचीन मानव का उनको पढ़ने का प्रयास, प्रमाण सहित इस पुस्तक में दिया गया है।

सम्भवतः हिन्दी भाषा एवं उसकी देवनागरी लिपि के माध्यम से विश्व की समस्त लिपियों की ध्वनियों को तथा उनके वर्णों को लिपिबद्ध करने का मेरे द्वारा यह प्रथम प्रयास होगा। वैसे तो इसके पूव भी एक पुस्तक उर्दू भाषा में विश्व की लिपियों पर श्री मोहम्मद ईशाक सिद्दीकी द्वारा लिखी जा चुकी थी। यह प्रयास एक अन्त नहीं, अपितु इस बात का श्रीगणेश है कि हिन्दी को विश्व-भारती बनाना है तो उसके बुनियाद की भाषा और लिपियों को विश्व की भाषा की दृष्टि से अन्वेषण-ग्रंथ तैयार करने होगें। भाषा से भी पहले लिपि को महत्त्व देना होगा। इस दृष्टि से भी यह हिन्दी या भारतीय भाषा में प्रथम पुस्तक होगी, ऐसी मेरी धारणा है।

अन्त में मैं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयास से इस प्रथम व अनोखे ग्रंथ को, प्रकाशित करने का भार वहन किया। मैं आंध्र प्रदेश के पुरातत्व-विभाग के भूतपूर्व निदेशक श्री मोहम्मद अब्दुल वहीद खाँ का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस विषय के अध्ययन की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया तथा मैं विश्व के सभी पुरातत्त्व-वेत्ताओं का, प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहासकारों का और सभी लिपि-सम्बद्ध शोधकर्ताओं का, लेखकों का, लिपियों के रहस्योद्घाटनकर्ताओं का तथा उत्खननकर्ताओं का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके अथक परिश्रम के परिणामों द्वारा मैं इस ग्रन्थ को पूरा कर सका। इससे भी अधिक मुझे आभारी होना चाहिए और आभारी हूँ, जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०, वाराणसी के श्री तरुण भाई का, जिनके प्रयास के फलस्वरूप यह ग्रन्थ मुद्रित हो सका। इसके अतिरिक्त भी इस विषय के विद्वानों स्व० श्री सी० शिवराममूर्ति, डॉ० लल्लन जी गोपाल, डॉ० गोबर्धन राय शर्मा, डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा, स्व० डॉ० राजबली पाण्डेय आदि का भी आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन किया है तथा अपने व्यक्तिगत सहयोग से प्रेरित करते रहे। मैं विश्व के अनेक मुख्य पुस्तकालयाध्यक्षों का तथा उन सभी व्यक्तियों का आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ के लेखन तथा प्रकाशन में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

इस बृहद् ग्रन्थ के प्रकाशन में समस्त विश्व की लिपियों के वर्ण, उनकी ध्वनियाँ, अभिलेखों के प्रतिदर्श आदि का यथासंभव प्रामाणिक एवं शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसके मुद्रण में यदि कुछ अशुद्धियाँ एवं त्रुटियाँ रह गयी हों तो मैं पाठकगणों से क्षमा चाहूँगा तथा भविष्य में ग्रन्थ को त्रुटिरहित बनाने के लिए उनके बहुमूल्य सुझाव एवं विचारों का स्वागत करूँगा।

ईश्वरचन्द्र राही

श्याम निवास,
बाग़ शेरजंग,
लखनऊ—२२६००३

संकेताक्षर

A. S. I.	Archaeological Survey of India.
C. I. I.	Corpus Inscriptionum Indicarum.
C. I. V.	Civilization of Indus Valley.
E. I.	Epigraphica Indica.
E. R.	Epigraphic Researches.
F. E. M.	Further Excavation by Mackay.
I. A.	Indian Antiquary.
I. M. D.	Indus-Valley – Mohenjo-Daro.
I. M. P.	Inscriptions of Madras Presidency.
J.	Journal
J. I. A. S.	Journal of Indian Asiatic Society.
J. A. S. B.	Journal of Asiatic Society.
J. R. A. S.	Journal of Royal Asiatic Society.
L. S. I.	Linguistic Survey of Indiaof Bengal.
M. D.	Mohenjo-Daro.
M. E. H.	Mackay's Excavation at Harappa.
M I. C.	Marshall's Indus Civilization.
N. Y.	New York.
P.	Page.
Pl.	Plate.
P. U. B.	Published.
S. I. I.	South-Indian Inscriptions.
Vol.	Volume.

आ०; आधु०	—	आधुनिक
ई०	—	ईसवो
ई० पू०	—	ईसा पूर्व
ई० स०	—	ईसवी सन्
फ० सं०	—	फलक संख्या
तृ०	—	तृतोय
श०	—	शताब्दो

प्रयुक्त शब्दों के विविध रूप

अमेरिका	:	अमरीका
अर्साकिड	:	अर्सासिड
असुरबनीपाल	:	अशुरबनीपाल
इङ्गलैण्ड	:	इंगलैण्ड
उद्देश्य	:	उद्देश्य
उद्भव	:	उद्‌भव
कम्बोडिया	:	कम्पूचिया
केल्ट	:	सेल्ट
कन्द्रा	:	कन्दरा
क्रम	:	क्रम
खेमर	:	खेमिर
गई	:	गयी
ग्यान	:	ज्ञान
गेल्ब	:	जेल्ब
चित्र	:	चित्र
चिन्ह	:	चिह्न
चिन्तन	:	चिंतन
जिव्हा	:	जिह्वा
दायें	:	दाएँ
टियूनिस	:	ट्युनिस
डच्छ	:	डच
पियू	:	प्यू
पश्चात्	:	पश्चात्
फ्रीजिया	:	फ्रीगिया
फ्रांस	:	फ्रांस
बायें	:	बाएँ
ब्राह्मो	:	ब्राह्मो
बैज़ेन्टाइन	:	बैज़ेन्टीन
भिन्न	:	भिन्न
मिट्टी	:	मिट्‌टी
मिस्र	:	मिस्र
मैथ्यु	:	मैथिउ
युद्ध	:	युद्‌ध
युरोप	:	योरोप, यूरोप
व्यञ्जन	:	व्यंजन
लिये	:	लिए
संभव	:	सम्भव
संबन्ध	:	सम्बन्ध
सेमेटिक	:	सेमिटिक
हण्टर	:	हन्टर
हेरोग्लिफ़्स	:	हैरोग्लिफ़्स
हेरेटिक	:	हैरैटिक
हैद्रामौत	:	हैद्रमउत
ह्रोज़नी	:	ह्रोज़्नी
ख	:	ख
झ	:	झ
ण	:	ण
१	:	१
४	:	४
५	:	५
८	:	८
९	:	९

कुछ विशेष संयुक्ताक्षर

ळ	=	ल	+	ड़			तमिळ
सं	=	स	+	म			संभव
क्ष	=	क	+	श			कक्षा
ज्ञ	=	ग	+	य			ज्ञान
श्री	=	श	+	री			श्रीमान्
स्र	=	स	+	र			मिस्र
त्र	=	त	+	र			मित्रता
स्य	=	स	+	य			राजस्य
अं	=	अ	+	न्			अंक
ह्वा	=	व	+	ह			जिह्वा
ह्न	=	न	+	ह			चिह्न
हृ	=	ह	+	र			हृदय
न्ध्र	=	न	+	ध	+	र	आन्ध्र
त्त	=	त	+	त			दत्त
क्य	=	क	+	य			चालुक्य
क्त (क्त)	=	क	+	त			शक्ति (शक्ति)
ण्ड	=	ण	+	ड			पाण्डेय
कृ	=	क	+	रि			कृपा
ष्ण	=	ष	+	ण			कृष्णा
प्र	=	प	+	र			प्रपात
द्व	=	द	+	व			द्वार
श्व	=	श	+	व			ईश्वर
न्द	=	न	+	द			नन्द
र्म	=	र	+	म			कर्म
म्ब	=	म	+	ब			सम्बन्ध
क्र	=	क	+	र			क्रम
ख्य	=	ख	+	य			संख्या
ष्ट	=	ष	+	ट			कष्ट

अनुक्रम

क्या *कहाँ*

पृष्ठबोधिनी

अध्याय : २

दक्षिण एशियाई देशों की लेखन कला का इतिहास–

अध्याय : ३

पश्चिमी एशियाई देशों की लेखन कला का इतिहास –

अध्याय : ४

मध्य व पूर्व एशियाई देशों को लेखन कला का इतिहास –

अध्याय : ५

दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों की लेखन कला का इतिहास –

अध्याय : ६

अफ़्रीका महाद्वीप के देशों की लेखन कला का इतिहास –

अध्याय : ७

यूरोपीय देशों की लेखन कला का इतिहास

अध्याय : ८

अमरीकी देशों की लेखन कला का इतिहास –

परिशिष्ट

□

लिपियों के फलकों '(Plates) की तालिका

(प्रथम खण्ड)

लिपियों के फलकों (Plates) की तालिका

(द्वितीय खण्ड)

□

मानचित्रों की तालिका

(प्रथम खण्ड)

मानचित्रों की तालिका

(द्वितीय खण्ड)

□

नोट :– इस पुस्तक में जो भी मानचित्र दिये गये हैं वे प्रामाणिक मानचित्रों के छाया – मात्र हैं। ये मानचित्र देशों की धारणा – मात्र प्रदर्शित करने के लिए अंकित किये गये हैं। सभी मानचित्र शुद्ध अनुपात में नहीं (not to scale) हैं।

लेखन कला का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

अध्याय : १

विषय प्रवेश

परिचय

'लेखन कला का इतिहास' आरम्भ करने के पूर्व कुछ विषय ऐसे हैं जो इस विषय के सीध अन्तर्गत तो नहीं आते, परन्तु वे इस विषय से इतने सम्बन्धित हैं कि उनका पाठकों को बोध कराना आवश्यक होगा। **वे विषय हैं :—**

भाषा—यह विषय भाषा-विज्ञान पर, भाषा की परिभाषा पर, उसकी उत्पत्ति पर, उसके भेदों पर तथा भाषा व लिपि के सम्बन्ध पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा।

लिपि—यह विषय लिपि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर, लिपि के भेदों पर, लिपि की उपयोगिता पर तथा उसकी उत्पत्ति पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा।

पुरातत्व—यह विषय उत्खनन के इतिहास पर, उसके भिन्न-भिन्न विभागों पर, लिपियों की खोज और उनके रहस्योद्घाटन-कार्य पर प्रकाश डालेगा।

कालनिर्धारण—यह विषय कार्बन-१४ की अकथ खोज पर, जिसने प्राचीन इतिहास को नया जीवन तथा इतिहासकारों को नया प्रोत्साहन प्रदान किया है तथा कालनिर्धारण को वैज्ञानिक रूप दिया है, प्रकाश डालेगा।

प्राचीन इतिहास—यह विषय विषय का परिचय प्रदान करेगा तथा मानव के विकास पर प्रकाश डालेगा।

इस पुस्तक में न केवल लेखन कला का इतिहास ही दिया गया है अपितु उन प्राचीन देशों का प्राचीन से अर्वाचीन काल तक का इतिहास भी दिया गया है, जहाँ अमुक लिपियों का उद्भव तथा विकास हुआ है। साथ ही साथ प्रत्येक प्राचीन देश के प्राचीन मानचित्र भी दिये गये हैं ताकि पाठकों को उस देश की तात्कालिक रूपरेखा का भली प्रकार से बोध हो जाये।

□

भाषा

मनुष्य ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम भाषा का ही — चाहे वह किसी रूप में हो — प्रयोग किया, तदनन्तर उसको सुरक्षित रखने के लिए लिपि का प्रयोग आरम्भ किया।

भाषा की परिभाषा

इस विषय पर पूरी एक पुस्तक ही लिखी जा सकती है, परन्तु यहाँ संक्षेप में कुछ परिभाषाओं के विषय में दे दिया गया है।

भाषा का अर्थ विचारों को व्यक्त करना है। विचार कई प्रकार से व्यक्त किये जा सकते हैं। आँख के इशारों से, मुँह के इशारों से, उँगली व हाथ के इशारों से (स्काउट्स को आज भी उँगलियों के इशारों से गूंगे-बहरों की तरह बात करना सिखाया जाता है) तथा ध्वनि के उच्चारण से। ये सब साधन भाषा के ही रूप हैं। परन्तु वर्तमान युग में केवल बोल कर ही विचारों को व्यक्त करना 'भाषा' कहलाता है।

भाषा मानसिक क्रिया का फल है। विचार भाषा का प्राण है अथवा आत्मा है। भाषा उन्हीं विचारों का बाहरी तथा भौतिक स्वरूप है। भाषा उन सारे चिह्नों का योग है जो हमारे विचारों को, मनोभावों को तथा अन्य बाहरी विचारों को ग्रहण करके पुनः उत्पन्न करे और आवश्यकता पड़ने पर उसको फिर दोहरा सके। केवल स्वरतंत्रों का हिलना ही भाषा नहीं है, अपितु वह बाहरी वातावरण है जो स्वरतंत्रों को चलने के लिए बाध्य करता है अर्थात् मनुष्य जो भी उपचेतन मस्तिष्क में ग्रहण कर लेता है, उसी को पुनः उत्पन्न करना (reproduction) भाषा है। भाषा हर व्यक्ति द्वारा ग्रहण की जाती है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति द्वारा रची नहीं जाती है।

मनुष्य का दिल और दिमाग़ एक टकसाल है, जिसके अन्दर दिल और दिमाग़ की प्रतिक्रिया स्वरूप सबसे पहले अचिंतित (uncontemplated) भाव, विचार प्रकट होते हैं। अचिंतन का चिंतन, भाषा की सर्वप्रथम अवस्था है। अचिंतित विचार जब चिंतन के विषय बनते हैं, तब दूसरी अवस्था का प्रारम्भ होता है। पहली अवस्था दूसरी अवस्था का आधार है। यह अमूर्त का मूर्तिकरण तथा अव्यक्त का व्यक्तिकरण है। यह वह सीढ़ी है, जहाँ भाषा जन्म लेती है।

शब्द व वाक्य

भाषा को सार्थक बनाने के लिए किसी पद्धति में बाँधना पड़ता है। शब्द निर्धारित नियमों के अनुसार मुख से निकालने पड़ते हैं। ये शब्द स्वयं विशेष-विशेष स्थानों से सतत् ध्वनियाँ निकालने से बनते हैं और ये ध्वनियाँ अलग-अलग जिह्वा के स्पर्श से अलग-अलग बनती हैं। नाक से ध्वनियाँ निकलने पर रूप बदल जाता है। कभी हम ऐसी ध्वनि पर पहुँच जाते हैं, जिसे हम और अधिक खण्डित नहीं कर सकते। ऐसी ध्वनियों को कल्पित करके अक्षर बनाये जाते हैं। एक वैज्ञानिक भाषा का गुण यह है कि जो अक्षर लिखे जायें वे एक से अधिक ध्वनि के परिचायक न हों, न ही कोई ऐसा अक्षर हो जो लिखा तो जाये परन्तु उसका उच्चारण न हो। भाषा मन की टकसाल में गढ़ा हुआ एक ऐसा सिक्का है जो अचिंतित रेखाओं मे गुज़र कर चिंतित वस्तु द्वारा रूप ग्रहण करता है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। विचारों का बोध वाक्यों द्वारा होता है। वाक्य ही भाषा का छोटे से छोटा अवयव है। हमारे विचार का छोटे से छोटा बाहरी स्वरूप वाक्य ही है, शब्द नहीं। शब्दों को जोड़ कर वाक्य बनाये जाते हैं। विचारों के अन्तर्गत भाव होते हैं। उसी प्रकार वाक्य के अन्तर्गत शब्द होते हैं। भाव से पहले जिस प्रकार विचार आता है, उसी प्रकार शब्द से पहले वाक्य आता है। जिस प्रकार पृथक् भाव की कोई स्थिति नहीं, उसी प्रकार वाक्य से स्वतंत्र शब्द का कोई अस्तित्व नहीं। अतएव भाषा का चरम अवयव वाक्य है, शब्द या अक्षर नहीं।

भाषा की उत्पत्ति

भाषा अब केवल भाषा ही नहीं, अपितु भाषा-विज्ञान हो गयी है और इस पर बड़े-बड़े वैज्ञानिक शोध हो चुके हैं तथा आगे भी होते रहेंगे। भाषा की उत्पत्ति लाखों वर्ष पूर्व हुई, जिसके विषय में यह खोज करने के लिए कि वह कब और कैसे प्रारम्भ हुई, पर्याप्त आधार उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में अनुमान का ही सहारा लिया जा सकता है। क्योंकि कल्पना या अनुमान विज्ञान के अंतर्गत आ नहीं सकते, इस कारण 'भाषा की उत्पत्ति' का विषय 'भाषा-विज्ञान' के विषय का अंग माना नहीं जा सकता। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए जब १८६६ में भाषा-विज्ञान-परिषद् (La Societe de Linguistique) की स्थापना पेरिस में की गयी तो संस्थापकों ने 'भाषा की उत्पत्ति' के विषय पर विचार करने पर ही प्रतिबंध लगा दिया। फिर भी अज्ञेय को ज्ञेय की परिधि में लाने के मानव स्वभाव ने विद्वानों को उत्पत्ति के विषय में विचार करने पर विवश किया, जिनके निष्कर्ष निम्नलिखित हैं।—

१. **देवताओं के द्वारा :** सारे प्राचीन देश ईश्वरवादी थे। ज्ञान के अभाव में हर बात जो तात्कालिक मनुष्य के लिए अज्ञेय थी, ईश्वर के निमित्त कर दी जाती थी। इसी सिद्धांत पर भाषा की उत्पत्ति भी ईश्वर के निमित्त कर दी गयी। पाणिनि के १४ सूत्र शिव के डमरू की ध्वनि से उत्पन्न हुए। संस्कृत को देव भाषा, अरबी को अल्लाह की तथा हेब्रू को जेहोवा की प्रदान की हुई भाषा समझा गया। यह प्राचीन विचार आज भी उतना ही प्रबल है। बच्चा जन्म के पश्चात् ही सुन कर भाषा सीखता है इसी कारण बहरे बोल नहीं पाते।

२. **अनुकरण के द्वारा :** मनुष्य ने अपने वातावरण में पशु-पक्षियों की ध्वनियां सुनीं और ध्वनियों के लिए शब्द बने। उदाहरणार्थ कुत्ते के भौंकने के लिए 'भौं-भौं', घोड़े के सांस निकालने के लिए 'हिनहिनाना', शेर का गर्जना, हाथी का चिंघाड़ना आदि। ऐसे ही हवा से 'साँय-साँय', लकड़ी की मार से 'ठक-ठक', बिजली (आकाश की) से कड़कना आदि।

३. **आवेग के द्वारा :** (पूह-पूह सिद्धान्त) क्रोध, प्रेम, घृणा आदि को व्यक्त करने के लिए कुछ न कुछ ध्वनियों का प्रयोग अकस्मात् हो जाता है, जैसे—धत्, ओह, छिः आदि।

४. **श्रम के द्वारा :** (हो-हो वाद) जब मनुष्य शारीरिक परिश्रम करता है, तो कंठ से स्वाभाविक रूप से किसी न किसी प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं, जैसे — धोबी की 'छियो-छियो', नाव चलानेवाले की 'हे हो' आदि।

५. **इङ्गितों के द्वारा :** आधार इसका भी अनुकरण है, परन्तु बाहर की चीजों का न होकर अपने शरीर के अंगों का संकेत, जो जान कर न किया जाये, अपितु स्वयं हो जाये (Unconscious imitation)।

६. **सम्पर्क के द्वारा :** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। आरम्भ काल में जब कि मनुष्य जंगलों में टोलियाँ बना कर रहता था, कन्द मूल, फल आदि खाता था, वह जैसी परिस्थिति के सम्पर्क में आया उसने विवश

होकर किसी ध्वनि का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ यदि उसने शेर या भालू देखा तो उसने डो-डो की या टो-टो की ध्वनि निकाली। शनैः-शनैः वह ध्वनि उस टोली वालों के लिए एक संकेत के रूप में निर्धारित हो गयी। इसी प्रकार सांकेतिक ध्वनियाँ बढ़ती गयीं और मानव-विकास के साथ ध्वनियों का विकास होता रहा। इस विकास का मुख्य कारण था सम्पर्क।

७. **समन्वित सिद्धान्त :** वे टोलियाँ जब दूसरी टोलियों के सम्पर्क में आयीं जो अपने साथ दूसरे प्रकार की ध्वनियां लायीं थीं, उनके सम्मिश्रण से नयी ध्वनियों ने जन्म लिया और इस प्रकार स कुछ इशारे कुछ अनुकरण, कुछ भाव, कुछ बाहरी वातावरण आदि के कारण ध्वनियों से वाक्य, वाक्य से शब्द और शब्द से वर्ण बन गये। यह कार्य लाखों वर्षों में सम्पन्न हुआ।

भाषा का प्रसार

कुछ लोग शताब्दियों तक एक क्षेत्र में रहे, इसी प्रकार कुछ अन्य लोग दूसरे क्षेत्र में रहे। जब वहाँ की भोजन सामग्री समाप्त हो गयी तो कुछ नये स्थानों को चले गये। उन स्थानों की बोली भिन्न थी। इस कारण भाषा का वर्णसंकर होना स्वाभाविक था; जिसके द्वारा एक नयी भाषा ने जन्म लिया। इस प्रकार बनते-बनते आज २७९६[1] बोलियाँ बन गयीं हैं और सम्भव है कुछ और बन जायें।

बोली और भाषा

बोली और भाषा में बहुत अन्तर है, परन्तु बहुत से शिक्षित लोग भी समझ नहीं पाते। बोली की सीमा संकीर्ण होती है जब कि भाषा की सीमा व्यापक होती है, परन्तु पहले व्यापकता की सीमा नहीं थी। राष्ट्रवाद के जन्म के साथ व्यापकता की सीमा देश की सीमा के साथ बँधकर भाषा में राष्ट्र जुड़कर राष्ट्र-भाषा बन गयी।

इनके अन्तर को समझने के लिए भाषा-विज्ञानवेत्ताओं ने तीन रूप निर्धारित किये हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

१. **व्यक्ति बोली (Idiolect) :** व्यक्ति-बोली भाषा का लघुतम रूप है। व्यक्ति के जन्म मरण तक उसकी भाषा में अन्तर होता रहता है, जो पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। बच्चे पानी को मम, भोजन को हप्पू या पप्पू आदि कहते हैं और बड़े होकर यह परिवर्तित हो जाते हैं।

२. **स्थानीय-बोली (Local Dialect) :** यह बहुत-सी व्यक्ति-बोलियों का सामूहिक रूप है। इसमें आपस में कोई अन्तर नहीं होता।

३. **भाषा (Language) :** यह बहुत-सी स्थानीय बोलियों का सामूहिक रूप है। इसमें आपस में कुछ अन्तर अवश्य होता है। भारत के प्रांत प्रांतीय भाषाओं के आधार पर निर्माण किये गये परन्तु एक प्रांत में अनेक बोलियाँ प्रचलित होती हैं।

भाषा में स्वर व व्यंजन

इनकी परिभाषा आवश्यक है। यह पुस्तक की लिपियों को समझने में सहायक सिद्ध होगा। स्वर और व्यंजन की परिभाषा इस प्रकार है :—

1. Gray's Foundations of The Languages—P. 418.

स्वर : किसी भाषा के वे वर्ण हैं जो दूर से सुनाई दे सकें, बिना किसी की सहायता के देर तक बोले जा सकें, कुछ मुँह खोल कर बोले जा सकें इत्यादि। मूल स्वर हैं :—'अ-इ-उ-ऋ' शेष स्वर इनके सम्मिश्रण से बने।

व्यञ्जन : वे वर्ण हैं जो स्वर से नज़दीक सुनाई दे सकते हैं। ध्वनि की दूर तक पहुँचाने में केवल स्वर ही शेष रह जायेगा।

संसार की भाषाओं में अन्तर

प्रथम महायुद्ध का १९१८ में अन्त हुआ। देश स्वतंत्र हुए। मानव परतंत्र हुआ। उसके आने-जाने की स्वतंत्रता पर रोक लगायी गयी। सम्पर्क कम होने लगे। राष्ट्रीय भाषाओं में कट्टरता आने लगी तो भाषाओं में परिवर्तन भी कठिन हो गये। अब जो कठिनता सामने है, वह यह कि यदि मनुष्य चाहे कि एक देश के अक्षर देख कर वह उनका उच्चारण सही कर ले सो असम्भव है। क्योंकि एक अक्षर या वर्ण रोमन का 'G' है; कहीं इसको ध्वनि 'ग' है तो कहीं 'ज'। इसी प्रकार 'C' है, कहीं यह 'स' का उच्चारण देती है और कहीं 'क' का। भाषा उसी समय सीखी जा सकती है जब उन्हीं लोगों के मध्य रहा जाये, जिनकी वह भाषा है। इस ओर कई प्रयत्न हुए हैं कि मानव एकता के लिए भाषा की एकता होना अनिवार्य है, परन्तु राष्ट्रवाद की कट्टरता के कारण तथा अन्य कठिनाइयों के कारण प्रयास सफल न हो सके।

पठनीय सामग्री

Bodmer	:	Loom of the Language.
Diamond, A. S.	:	History and Origin of Language.
Dutta, B.	:	History of Language.
Graff, W. L.	:	Language and Language.
Hall, Robert	:	Introductory Linguistics.
Helene & Laird, C.	:	Tree of Language.
Mehrotra, R. M.	:	भाषा विज्ञान-सार।
Ministry of Education	:	भाषा त्रैमासिक (भारत सरकार, नयी दिल्ली) सितम्बर १९६८
Pathak, D. B.	:	भाषा विज्ञान।
Tiwari, Dr. B. N	:	भाषा विज्ञान।

□

लिपि

लिपि, भाषा का कुछ निर्धारित चिह्नों के रूप में प्रतिनिधि का कार्य करती है। संसार के निवासी अपने देश, काल व परिस्थिति के अनुसार आरम्भ से आज तक विभिन्न ध्वनियों के अनुसार चिह्नों का भी प्रयोग करते रहे। मानव विकास के साथ-साथ उन ध्वनियों का भी विकास होता रहा जो मनुष्य ने निर्धारित कीं थीं। इसी कारण इस परिवर्तनशील जगत में भाषा व लिपि में भी सदैव परिवर्तन होते रहे। परिवर्तन जीवन है और अपरिवर्तन मत्यु। परिवर्तन से विकास, विकास से संघर्ष, संघर्ष से जीवन-उपयोगिता तथा जीवन-उपयोगिता से सुख व आनन्द प्राप्त होता है। यही क्रम आदि से अन्त तक चलता रहा है एवं चलता रहेगा। कोई प्राणी तथा वस्तु ःस क्रम से बच नहीं सकते। हाँ, इतना अवश्य है कि पर्याप्त विकास के पश्चात् परिवर्तन की गति में कुछ शिथिलता दृष्टिगोचर होने लगती है। लिपि भी इस क्रम से अछूती न रह सकी।

लिपि की उपयोगिता

यदि संसार में लिपि न होती तो मनुष्य

१—दूर स्थानों के लिए संदेश न भेज पाता।
२—प्राचीनकाल की उपलब्धियों को सुरक्षित न रख पाता।
३—अनेक विषयों पर शोध व खोज न कर पाता।
४—कला, दर्शन, विज्ञान व शिल्प आदि की प्रगति न कर पाता।
५—भावी संतान को प्रगति की ओर अग्रसर न कर पाता।
६ अनेक विषयों के ग्रन्थों को सुरक्षित न कर पाता।
७—भाषाओं का विकास न कर पाता।
८—दूर के स्थानों में तथा अल्पकाल में विचारों का प्रसार न कर पाता।

भाषा व लिपि मानव विकास के अभिन्न अंग हैं। भाषा लिपि के बिना और लिपि भाषा के बिना जीवित नहीं रह सकती। लिपि भाषा की वाहन है। भाषा उसी वाहन द्वारा दूरी और काल (space and time) का मार्ग तय करती है। जब कभी किसी विजेता आक्रमणकारी ने किसी पराजित देश की सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करना चाहा तो उसने सर्व प्रथम पराजित देश के अभिलेखालय तथा पुस्तकालय अग्नि के अर्पण किये। इस लिपि ने दूर दूर के देशों में एकता की भावना को जागृत किया है।

इतने लाभ होने पर भी एक ·दो दोष भी हैं, जैसे लिपि के कारण मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति में कुछ कमी प्रतीत करने लगता है। जहाँ अच्छे विचारों का प्रसार शीघ्र होता है वहाँ बुरे विचार भी शीघ्र फैलते हैं।

लिपि की काल्पनिक उत्पत्ति

हमारी मान्यता के अनुसार संसार की प्रत्येक वह वस्तु जो हमारे लिए अज्ञेय है, वह ईश्वर, गॉड व खुदा के लिए ज्ञेय है। इसी कारण प्रत्येक मनुष्य, शिक्षित अथवा अशिक्षित, जब अपने ज्ञान की परिधि से बाहर

निकल जाता है तो 'भगवान् जाने' शब्दों का ही प्रयोग करता है। यही बात लिपि के सम्बन्ध में भी है। प्राचीन काल में जब भी कहीं कोई लिपि दिखाई दी और उस देश - वासी से जहाँ वह प्रचलित थी पूछा गया तो उसने वही उत्तर दिया 'भगवान् जाने' भगवान् चाहे जानता हो या न जानता हो, पर उसका अटल विश्वास था कि जो बात वह नहीं जानता, भगवान् अवश्य जानता है। इसी कारण प्राचीन काल में प्रत्येक देशवासी अपने किसी तात्कालिक देवता को ही लिपि का जन्मदाता मानता था, जो निम्नलिखित है :—

देश का नाम	लिपि का नाम	देवता का नाम	काल
१. मेसोपोटामिया	कीलाकार (Cuneiform)	नेबू (Nebu)	ई० पू० की २५वीं श०
२. मिस्र	हीरोग्लिफ्स (Hieroglyphs)	थॉठ (Thoth)	ई० पू० की २८वीं श०
३. चीन	चीनी	वेनचांग (Wenchang)	ई० पू० की १८वीं श०
४. भारत	ब्राह्मी	ब्रह्मा	ई० पू० की चौथी श०
५. फ़िनीशिया	उत्तर सेमिटिक	कैडमस (Cadmus)	ई० पू० की १२वीं श०
६. ग्रीस	ग्रीक	हर्मिस (Hermes)	ई० पू० की ११वीं श०
७. रोम	रोमन	मर्करी (Mercury)	ई० पू० की ५वीं श०
८. इस्राइल	हेब्रू	जेहोवा (Jehova)	ई० पू० की १३वीं श०
९. अरब	अरबी	अल्लाह, आदम के द्वारा	आदिकाल
१०. आयरलैण्ड	केल्टिक ओगम	ओगमा (Oghma)	तृतीय सदी

लिपि की प्रामाणिक उत्पत्ति

प्राचीन लिपियों के खोज का कार्य अठारहवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ। यह खोज सभ्यता व संस्कृति के जन्मदाता प्राचीन देशों में, असभ्य देशों के अर्वाचीन विद्वानों ने अनेक कठिनताओं का सामना करते हुए की। पृथ्वी में दबे हुए तथा गूढ़ लिपियों में छिपे हुए प्राचीन इतिहास को प्रकाश में लाने का श्रेय, जो कभी भुलाया नहीं जा सकता, उन्हीं पाश्चात्य विद्वानों को है। उस प्राचीन इतिहास ने प्राचीन देशों के सम्मुख, अर्वाचीन वैज्ञानिक देशों को नतमस्तक कर दिया। विशेष रूप से प्राचीन लिपियों के रहस्योद्घाटन में विद्वानों ने अपना जीवन तक अर्पण कर दिया।

प्राचीन लिपियों के जन्म की प्रमाणिकता सिद्ध करने वाले निम्नलिखित विद्वान् हैं :—

देश का नाम	लिपि का नाम	विद्वान् का नाम	काल
१. मिस्र	हीरोग्लिफ़्स	शैम्पोलियाँ	१८१०
२. मेसोपोटामिया	कीलाकार	ग्रोट फेण्ड	१८०२
३. ,,	,,	हेनरी रॉलिन्सन	१८४५
४. भारत	ब्राह्मी	जेम्स प्रिंसेप	१८३७
५. फ़िनीशिया	उत्तरी सेमिटिक	ए० यच० गार्डिनर	१९१६
६. सिनाइ	सिनायटिक	फ़िलण्डर्स पेट्री	१९०४
७. क्रीट	क्रीटन (लीनियर)	आँर्थर ईवान्स	१९०५
८. हत्तूशा	हित्ती	ए० यच० सेसी	१८८०
९. इस्राइल	हेब्रू (प्राचीन)	लिज़्बार्सकी	१८९५
१०. नबात	नब्ती एवं अरबी	नबिया एबॉट	१९३०

२

इस प्रकार सैकड़ों विद्वानों ने लिपियों की खोज व उनके रहस्योद्घाटन में अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया। कुछ विद्वानों के नाम विख्यात हुए, परन्तु कितने ऐसे विद्वान् हुए होंगे जिन्होंने अपने को तो बलिदान कर दिया, परन्तु उनके नाम प्रकाश में न आ सके।

लिपियों का वर्गीकरण

जैसे जैसे प्राचीन लिपियाँ प्रकाश में आने लगीं, वैसे वैसे उनकी तुलनाएँ अन्य लिपियों के साथ होने लगीं। उन पर नये-नये शोध होने लगे तथा उनके वर्गीकरण भी किये जाने लगे, जो निम्नलिखित हैं :—

१. भ्रूण लिपि (Embryo writing) : यह लिपि लिपि नहीं थी। यह कुछ चित्र थे, कुछ रेखाएँ थीं, जिनसे न तो किसी उद्देश्य का पता चलता है और न वे कुछ तांत्रिक या धार्मिक चित्र प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के चित्र भिन्न-भिन्न देशों में लगभग बीस सहस्र वर्ष से दस सहस्र वर्षों के मध्य असभ्य निवासियों द्वारा उत्कीर्ण किये गये, जिनका विवरण निम्नलिखित है (फ० सं०-१)[1] :—

१. रंगीन पत्थर जो दक्षिणी फ्रांस से प्राप्त हुए।
२. प्राचीन चित्रकारी — स्पेन से प्राप्त हुई।
३. शिला पर उत्कीर्ण किये हुए — पुर्तगाल से प्राप्त हुए।
४. शिला पर उत्कीर्ण — इटली से प्राप्त हुए।
५. रेखा-गणितात्मक चिह्न — फ़िलिस्तीन से प्राप्त हुए।
६. रेखा-चित्र — क्रीट से प्राप्त हुए।
७. हाथी-दाँत पर अंकित चिह्न — मिस्र से प्राप्त हुए।
८. रेखा चित्र — मिस्र से प्राप्त हुए।
९. चट्टानों पर उत्कीर्ण रंगीन चित्र — अफ़्रीका से प्राप्त हुए।
१०. चिह्न — कैलीफ़ोर्निया (अमरीका) से प्राप्त हुए।
११. चिह्न — ऐरीज़ोना (अमरीका) से प्राप्त हुए।
१२. चिह्न — बहामा (कैरीबियन सागर) से प्राप्त हुए।
१३. चिह्न — ब्राज़ील (दक्षिण अमरीका) से प्राप्त हुए।
१४. चिह्न — आस्ट्रेलिया से प्राप्त हुए।

२. चित्रात्मक लिपि (Pictographic Script) : आदि काल में मनुष्य ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए अथवा कहीं दूर संदेश भेजने के लिए दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं के चित्रों को अंकित करके प्रयोग किया। चित्र के अर्थ उसी वस्तु तक सीमित थे। सूर्य के चित्र के अर्थ केवल सूर्य थे। यह स्थिति प्रत्येक उस प्राचीन सभ्य देश में थी, जहाँ किसी प्रकार की लिपि ने जन्म लिया। आज भी इस लिपि का प्रयोग चालक के लिए मार्ग-चिह्नों द्वारा तथा अन्य कार्यों के लिए किया जाता है। (फ० सं० – २)

३. सूत्रात्मक लिपि : कुछ प्राचीन देशों में रस्सी में गाँठें डाल कर संदेश भेजने का कार्य होता था। अफ़्रीका, पीरू (दक्षिण अमरीका) तथा चीन में इसके प्रमाण मिले हैं। अन्य देशों में भी यह प्रचलित हो सकती है, परन्तु प्रमाण नहीं मिलते। आज भी स्काउटिंग में इसकी उपयोगिता बतलायी जाती है। इन्का जाति

1. इनमें क्रमांक लेखक ने दिये हैं।

भ्रूण लिपि

फलक संख्या – १

चित्रात्मक लिपि

फलक संख्या – २

सूत्रात्मक लिपि

फलक संख्या – ३

के पीरू - निवासी रेड इण्डियन लगभग नवीं श० में गाँठों का प्रयोग करते थे। लाल डोरी के अर्थ सैनिक, पीली डोरी के अर्थ स्वर्ण, सफ़ेद डोरी के अर्थ चाँदी तथा हरी डोरी के अर्थ अनाज होते थे। डोरी की एक गाँठ = १०, दो गाँठें = २०, एक दोहरी गाँठ = १०० तथा दो दोहरी गाँठें = २०० के अंक होते थे। इसको कुईपस कहते हैं। (फ० सं० - ३)

४. भावात्मक या संकेतात्मक लिपि (Ideographic Script) **:** लिपि के विकास में जब मनुष्य आगे बढ़ा तब वही दैनिक वस्तुओं के चित्र अब एक भाव या संकेत प्रकट करने लगे। उदाहरणार्थ सूर्य का चित्र पहले केवल सूर्य का ही सूचक था, परन्तु अब दिन, गर्मी तथा प्रकाश का भी सूचक होने लगा। आकाश का तारा अब केवल तारा न रहकर आकाश का भी सूचक होने लगा। चित्र के भावार्थ निर्धारित किये जाने लगे, ताकि संदेश लिखे जा सकें और भेजे जा सकें। इसमें एक चित्र का एक ही भाव या संकेत निर्धारित किया गया, परन्तु कहीं एक से अधिक अर्थों का भी प्रयोग हुआ। लगभग प्रत्येक प्राचीन सभ्य देश में इस लिपि का प्रयोग चलता रहा। (फ० सं० - ३)

५. ध्वन्यात्मक लिपि (Phonetic or Phonographic Script) : यह एक महान् तथा दुर्लभ कार्य था — शब्द के लिए चिह्न निर्धारित करना। मानव के विकास के साथ मानव की आवश्यकताएँ बढ़ीं। आवश्यकताएँ बढ़ीं तो उनका उत्पादन बढ़ा, उत्पादन बढ़ाने के साधन बढ़े और हर क्षेत्र में प्रगति होने लगी। आदि काल में मानव के दैनिक जीवनोपयोगी यदि दस वस्तुएँ थीं, तो अब अस्सी या नब्बे हो गयीं। इस कारण जब आरम्भिक शब्द अपर्याप्त होने लगे तो मानव ने उन शब्दों की वृद्धि करने के बजाय अक्षरों की पद्धति का आविष्कार किया।

यह आविष्कार एक देश में हुआ अथवा कई देशों में — यह समस्या अभी तक सुलझ नहीं सकी। पक्ष तथा विपक्ष में बोलने वाले विद्वान् अभी तक एकमत नहीं हैं। कई देशों में आरम्भ होने के प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण अभी यही माना जाता है कि सर्वप्रथम इस ओर मिस्र देश के प्राचीन निवासियों ने एक २४ अक्षर वाली (व्यजंन थे, स्वर नहीं) लिपि का निर्माण ई० पू० लगभग अट्ठाइसवीं श०[1] में किया, परन्तु वह अन्य देशों द्वारा न अपनायी गयी और न उसमें आगे कोई प्रगति हुई। इस कार्य में मिस्र के पड़ोसी देश फ़िनीशिया ने इतनी सफलता पायी कि आज लगभग सभी देश (चीन, जापान, भारत आदि को छोड़कर) उसी देश की लिपि के परिवर्तित रूप का प्रयोग कर रहे हैं।

इस लिपि का जन्म लगभग ई० पू० की पन्द्रहवीं श० में हुआ, जिसे हम आज 'उत्तरी सेमिटिक लिपि' कहते हैं और जिसमें केवल २२ व्यंजन - वर्णों का निर्माण किया गया। ध्वन्यात्मक लिपि द्वारा चित्रों में ध्वनि का प्रवेश कराया गया। एक चित्र का अमुक भाग लिया तथा उस चित्र के तात्कालिक नाम की पहली अथवा बाद की ध्वनि लेकर निर्धारित कर दिया। उदाहरणार्थ इस लिपि का पहला अक्षर लीजिये, जिसका नाम अलिफ़ है। अलिफ़, अलिप या अलपू से बना, जिसका अर्थ मिस्र की भाषा (अलिप) तथा असीरिया की भाषा (अलपू) में बैल होते हैं। अब इस अलिप या अलपू के चित्र का एक भाग अर्थात् 'सिर' ले लिया तथा उस शब्द की ध्वनि का पहला उच्चारण 'अ' ले लिया, तो बैल के सिर की ध्वनि हो गयी 'अ' तथा अक्षर का नाम हो गया अलिफ़। इसी प्रकार 'बेथ' अर्थात् घर के एक भाग का चित्र (कक्ष या कमरा) ले लिया और

1. निश्चित रूप से कहना कठिन है।

चित्रों और ध्वनियों का योग = ध्वन्यात्मक

चित्र	आधु॰ नाम	प्राचीन नाम	वर्ण	ध्वनि	चित्र	आधु॰ नाम	प्राचीन नाम	वर्ण	ध्वनि
	बैल	अलिफ		अ		हथेली	कफ		क
	घर का कमरा	बेथ		ब		अंकुश	लमेद		ल
	ऊंट गर्दन	जमल गमल		ज ग		पानी	मीम		म
	द्वार	दलेथ		द		मछली सांप	नून नहन		न
	खिड़की	एइ		इ		आंख	ऐन		अ
	हुक	वाव	Y	व		मुंह	पी		प
	अहाता	हीथ		ह		सिर	रास रेश		र
	हंसिया	ज़ाजिन		ज़		दांत	शिन सिन्न	W	श
	हाथ	योध		य ज		निशान	ताव	+	त

फलक संख्या – ४

उस शब्द की पहली ध्वनि 'ब' ले ली। अब दूसरे अक्षर का नाम बेथ पड़ गया, ध्वनि 'ब' हो गयी। इस पद्धति को एक्रोफ़ोनी पद्धति (Acrophony System) कहते हैं।

इस लिपि में स्वर न होने के कारण एक शब्द को कई प्रकार से उच्चरित किया जा सकता था। जैसे यदि 'बक' लिखा जाये तो इसको बिक, बुक, बेक, बकी, बीक, बोक कितने प्रकार से पढ़ सकते हैं और हर प्रकार के पढ़ने से अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं। इसमें चाहें जितनी त्रुटियाँ हों, परन्तु प्रयास आश्चर्यजनक था। एक और बात ध्यान देने योग्य है। चित्रात्मक व भावात्मक लिपियों में चित्र या चिह्न किसी वस्तु या भाव को प्रकट करते हैं, जब कि ध्वन्यात्मक लिपि में चिह्न किसी वस्तु या भाव को न प्रकट कर केवल ध्वनि को प्रकट करते हैं और उन ध्वनियों के आधार पर किसी वस्तु या भाव का नाम लिखा जा सकता है।

इस ध्वनि - मूलक लिपि के पुनः तीन भेद किये जा सकते हैं :— अक्षरात्मक (Syllabic), वर्णात्मक (Alphabetic) और रेखाक्षरात्मक (**Logographic**)।

अक्षरात्मक लिपि

इस लिपि में चिह्न किसी अक्षर (Syllable) को व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ, नागरी लिपि को लें। यह अक्षरात्मक है, क्योंकि इसके अक्षरों में दो वर्ण मिले होते हैं; जैसे 'क' में क् + अ या 'ब' में ब् + अ अर्थात् अक्षर स्वरांत हैं। अब रोमन लिपि को लें। इसमें 'क्' की ध्वनि के लिए 'K' है, 'ब्' की ध्वनि के लिए 'B' है। यह लिपि प्रयोग में तो सामान्यतया ठीक लगती है, परन्तु भाषा - विज्ञान - वेत्ता जब ध्वनियों का विश्लेषण करते हैं तो इसकी कमी को स्पष्ट कर देते हैं।

हिन्दी में 'बल' शब्द लिखने में ज्ञात नहीं होता कि इसमें कौन से वर्ण हैं, परन्तु रोमन में लिखने से तुरन्त पता लग जाता है, जैसे 'BAL' तो इसमें तीन वर्ण हुए। इस प्रकार अरबी फ़ारसी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, तेलुगु तथा उड़िया अक्षरात्मक लिपियाँ हैं।

वर्णात्मक लिपि

लिपि की प्रथम सीढ़ी चित्रात्मक लिपि है और अन्तिम सीढ़ी वर्णात्मक लिपि है। इस लिपि में ध्वनि की प्रत्येक ईकाई के लिए पृथक् चिह्न निर्धारित किये गये हैं। भाषा – विज्ञान की दृष्टि से यह आदर्श लिपि है। रोमन लिपि इसका प्रतीक है।

रेखाक्षरात्मक लिपि

इसमें हर शब्द के लिए तथा हर ध्वनि के समावेश के लिए पृथक् रेखाचित्र निर्धारित कर दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत चीनी एवं जापानी लिपियाँ आती हैं। परन्तु जापान ने अपनी लिपि को सरल बनाने के लिए वर्णों का निर्माण किया है।

लिपि का कौटुम्बिक वर्गीकरण – जिस प्रकार मानव जाति का वर्गीकरण हुआ, भाषा का वर्गीकरण हुआ, उसी प्रकार लिपियों का वर्गीकरण भी विद्वानों ने किया है। यहाँ आई० जे० गेल्ब (I. J. GELB) द्वारा किया गया वर्गीकरण फ० सं० – ५ पर दिया गया है। इन्होंने लिपियों का मूल स्रोत सुमेर की रेखाओं को माना है, जिनका उद्भव लगभग ४००० ई० पू० के माना है। इस विचार पर बहुत से लिपि – विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं, परन्तु लिपि का उद्भव कहीं से तो मानना ही पड़ेगा। इस कारण अस्थायी रूप से इसी विचार

को मान्यता प्रदान कर दी गयी है। हो सकता है कि भविष्य में पुरातत्त्व – वेत्ताओं के सर्वेक्षण तथा अन्वेषण इस को सुलझाने में उपयोगी सिद्ध हों।

फलक संख्या – ५

पठनीय सामग्री

Astle, T. : Origin and Progress of Writing (1930).
Gelb, I. J. : A Study of Writing (1963).
Mercer, S. A. B. : Story of Writing and Alphabet (1926).

□

पुरातत्त्व

आर्कयोलॉजी (Archaeology) ग्रीक भाषा का शब्द है। ग्रीक भाषा में आर्कयास (Archaios) के अर्थ हैं 'प्राचीन' तथा आर्के (Arche) के अर्थ हैं 'आरम्भ' और लोगस (Logos) के अर्थ हैं 'वार्तालाप' इसका अर्थ हुआ 'मानव के आदिकाल के परीक्षण पर वार्तालाप' और भावार्थ हुआ 'अतीत के ज्ञान का प्रयास तथा परीक्षण'। 'पुरातत्त्व' मानव के आदि से अन्त तक के विषय में प्रकाश डालता है और उसके जीवन के परिवर्तन, विकास तथा पतन के विषय में खोज करता है।

पुरातत्त्व का इतिहास उन लुटेरों के फावड़ों से आरम्भ होता है, जो उन्होंने प्राचीन शासकों के कोषा – गारों की खोज में चलाये, जिनके विषय में उन्होंने बहुत कुछ सुन रखा था। कुछ दूसरे प्रकार के भी लुटेरे थे, जो अनोखी वस्तुओं (Curios) की खोज में पृथ्वी के वक्षस्थल को चीरा करते थे। इस प्रकार के कार्य मिस्र व मेसोपाटामिया में बहुत दिनों तक चलते रहे।

१७९८ में जब नैपोलियन का मिस्र में आगमन हुआ तो उसके एक सैनिक पदाधिकारी को नील नदी के डेल्टा में स्थित रोसेटा में एक काला शिला – खण्ड प्राप्त हुआ। इस शिला – खण्ड पर एक ही लेख तीन लिपियों में उत्कीर्ण था। यह शिलालेख रोसेटा शिला – खण्ड (Rosetta Stone) के नाम से पुरातत्त्व जगत में प्रसिद्ध हुआ। तभी से पुरातत्त्व का दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा। अब पुरातत्त्व में केवल खज़ानों व अनोखी वस्तुओं की खोज करना नहीं रहा परन्तु मानव के अतीत के विषय में खोज करना हो गया। रोसेटा के शिलालेख को एक अठारह वर्षीय फ्रांस – निवासी अध्यापक शैम्पोलियाँ (Champollion) ने देखा और उस शिलालेख के उत्कीर्ण चित्रों पर अपना शोध आरम्भ कर दिया। कई वर्षों के अथक परिश्रम करने के पश्चात् उसने केवल उस शिलालेख के गूढ़ाक्षरों का रहस्योद्घाटन ही नहीं किया वरन् उन अक्षरों का एक शब्दकोष भी तैयार किया, जो उसके भाई ने उसके मरणोपरांत प्रकाशित करवाया तत्पश्चात् संसार के विद्वानों की आँखें खुलीं। वे सब इस कार्य से बड़े प्रभावित हुए तथा इतने प्रोत्साहित हुए कि उन्होंने मानव के अन्ध – कारमय अतीत को प्रकाश में लाने का संकल्प कर लिया। भिन्न भिन्न क्षेत्रों के विद्वान् उत्खनन कार्य में जुट गये।

शनैः शनैः उत्खनन कार्य बड़े वैज्ञानिक ढंग से होने लगा। पुरातात्त्विक उत्खनित सामग्री (घरेलू वस्तुएं, हथियार, औज़ार, आभूषण, अभिलेख, सिक्के, मुद्राएं, अंकित मिट्टी के ठीकरे, पत्थर व तांबे की पाटियाँ, मिट्टी के खिलौने व बर्तन, लकड़ी का सामान, अनाज कंकाल आदि) का परीक्षण होने लगा। उन वस्तुओं पर शोध होने लगा। विभिन्न स्थानों के उत्खनित पदार्थों की समानता – असमानता पर शोध व खोज होने लगी।

इस शोध व खोज – कार्य में निम्नलिखित प्रकार के विद्वानों व विशेषज्ञों का योगदान मिलना आवश्यक होता है, जिनके सामूहिक परिश्रम द्वारा उत्खनन – कार्य की सफलता निर्भर होती है :—

१. **ऐनोटॉमिस्ट्स** (Anotomists) **एवं पैलियोन्टोलाजिस्ट्स** (Palaeontologists) : जो मानव कंकाल तथा उनके फ़ासिल्स[1] (Fossils) का परीक्षण करते हैं तत्पश्चात् उस मानव की जाति तथा अन्य सम्बन्धित ज्ञान घोषित करते हैं।

२. **पैलियोग्राफ़िस्ट्स** (Palaeographists) **और अभिलेखों को पढ़ने वाले** (Decipherers) : जो किसी भी वस्तु पर उत्कीर्ण अभिलेखों का रहस्योद्घाटन करते हैं, दूसरे स्थानों के अंकित चिह्नों से तुलना करते हैं और अपने खोज – फल को घोषित करते हैं।

३. **फ़ायलालोजिस्ट्स** (Philologists) : भाषा – विज्ञानवेत्ता प्रयोगशाला में बैठ कर यह खोज करते हैं कि अमुक अभिलेख की भाषा क्या है तथा उसका दूसरे स्थानों की भाषा से क्या सम्बन्ध है।

४. **आर्कियोलाजिस्ट्स** (Archaeologists) : जो सारे उत्खनन की योजना बनाते हैं तथा फावड़ा चलाने वालों को आदेश देते रहते हैं ताकि उत्खनित होने वाले पदार्थ नष्ट न हो जायें।

५. **इतिहासकार** (Historians) : उन अभिलेखों की भाषा के अनुवाद के आधार पर अपनी कड़ियों को जोड़ने का प्रयास करते हैं ताकि इतिहास क्रमबद्ध हो सके।

६. **विज्ञानवेत्ता** (Scientists) : अपनी प्रयोगशाला में बैठकर शोध व विश्लेपण करते हैं कि पदार्थों में क्या क्या तत्व हैं, जिनके द्वारा उत्खनित पदार्थों का निर्माण हुआ है।

अठारहवीं श० के अन्त से बीसवीं श० के मध्य तक मिस्र व पश्चिम एशिया के देशों में लगभग एक लाख से अधिक स्थानों पर उत्खनन कार्य सम्पन्न हो चुके होंगे। बहुत से टीलों के नीचे तो परतों के नीचे परतें निकलीं और अनगिनत वस्तुएं निकलीं, जिन्होंने संसार के संग्रहालयों को सुसज्जित कर दिया। पुरातत्व ने प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं की कड़ियों को जोड़ कर मानव के अन्धकारमय अतीत को प्रकाशित कर दिया। इससे मानव को ज्ञात हुआ कि वह विकास रूपी मार्ग पर कितना चल चुका है। पिछले कल के अनुभवों से मानव अपने अगले कल को सुधार सकता है।

यदि आज का मानव अपने अतीत से कुछ नहीं सीखता तो पुरातत्त्व – वेत्ताओं के अथक परिश्रम व अन्वेषण तथा उनके अन्य सहयोगियों के शोध आदि सब निष्फल सिद्ध होंगे।

पठनीय सामग्री

Bray, Warwick & Trump, David : Dictionary of Archaeology.

Claude, Jean & Marguerson : Archaeology Mundi.

Cottrell, L. : The Concise Encyclopaedia of Archaeology (1960).

□

1. यदि कोई वस्तु ज़मीन की गहराई में हज़ारों वर्षों पूर्व दब जाये तो अधिकतर वह अपना स्थान बनाकर स्वयं नष्ट हो जाती है। वह स्थान अथवा उसका निशान पत्थर की तरह सख्त हो जाता है, जिसको 'फ़ासिल' (fossil) कहा जाता है।

कार्बन – १४ द्वारा काल-निर्धारण

पौराणिक व धार्मिक घटनाओं का काल – निर्धारण, प्रमाणों पर कम और अनुमानों पर अधिक आधारित होता है तथा वैज्ञानिक काल – निर्धारण प्रमाणों पर अधिक और अनुमानां पर कम आधारित होता है परन्तु दोनों तरीक़ों से ईसा के पूर्व की घटनाओं का सही रूप नहीं निकल पाता। कभी कभी तो पुरातत्त्ववेत्ताओं के काल – निर्धारण में तथा धार्मिक पण्डितों के काल – निर्धारण में जमीन आसमान का अन्तर आ जाता है।

आख़िर कैसे मालूम हो कि यह वस्तु जो खुदाई में निकली है, कितनी प्राचीन है। नोबिल – पुरस्कार विजेता डब्ल्यु० यफ़० लिब्बी (W. F. Libby) ने इस समस्या का हल १९४९ में अपने शोध व अथक परिश्रम से निकाल ही लिया जिसका आधार है रेडियो कार्बन। इसी की एक प्रयोगशाला बम्बई के टाटा इन्स्टीट्यूट आफ़ फ़ण्डामेण्टल रिसर्च (Tata Institute of Fundamental Research)[1] में १९६१ में स्थापित हुई। इस पर लगभग २५ लाख रुपये व्यय किया गया।

यह बात विज्ञान के सभी विद्यार्थी जानते हैं कि सारे द्रव्य परमाणुओं द्वारा संरचित हैं। जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर नक्षत्र प्रदक्षिणा करते रहते हैं, उसी प्रकार से द्रव्य के सूक्ष्मतम कण परमाणु में न्युक्लियस (Nucleus) के चारों ओर इलेक्ट्रॉन (Electron) चक्कर लगाते रहते हैं। स्वयं न्युक्लियस प्रोटॉन (Protone) एवं न्यूट्रॉन (Nutron) से रचित होता है। परमाणु का समस्त भार न्युक्लियस में सीमित रहता है।

कार्बन में छः इलेक्ट्रॉन और छः प्रोटॉन होते हैं। स्थायी रूप में छः या सात न्यूट्रॉन होते हैं, परन्तु यदि दो अतिरिक्त न्यूट्रॉन पहुँचाये जायें तो प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों की संख्या चौदह हो जाती है। इस न्युक्लियस को कार्बन – १४ (Carbon – 14; C^{14}) कहा जाता है। स्थायी रूप वाला न्युक्लियस कार्बन – १२ के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक तत्त्व की रेडियो ऐक्टिविटी (Radio Activity) का रेट (rate) निश्चित है। किसी भी रेडियो – ऐक्टिव तत्त्व के प्रारम्भिक परमाणुओं के क्षय होकर आधा रह जाने के समय को उस तत्त्व की 'अर्धायु' (Half Life) कहा जाता है। रेडियो कार्बन की अर्धायु ५७३० वर्ष है।

अब यह विदित है कि हमारा वायुमण्डल तीव्र गति से चलने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों द्वारा आच्छादित है। वस्तुतः ये किरणें न्युक्लियस कण होते हैं। इन्हीं किरण रूपी कणों के वायुमण्डल में विचरण से न्यूट्रॉनों की उत्पत्ति होती है। मन्द पड़ने पर जब यह न्यूट्रॉन नाइट्रोजन (Nitrogen) के न्युक्लियस पर प्रघात करते हैं तो वायुमण्डल के ऊपरी हिस्सों में कार्बन – १४ परमाणु उत्पन्न होते हैं। कार्बन – १४ के ये परमाणु ऑक्सीजन (Oxygen) के परमाणुओं से मिलकर साधारण कार्बन की तरह ही कार्बन – डाई – आक्साइड

---

1. लेखक ने स्वयं बम्बई जाकर इन्स्टीट्यूट के कार्बन १४ विभाग के अध्यक्ष डॉ० धर्मपाल अग्रवाल से सन् १९७१ में भेंट की तथा कार्बन डेटिंग के विषय में विस्तार से समझा। उसी आधार पर यह पाठ लिखा गया है।

(Carbon – Di – Oxide) के अणुओं की रचना करते हैं। वायुमण्डल में प्रत्येक कार्बन – १४ परमाणु के लिए आठ खरब साधारण कार्बन – १२ के परमाणु मौजूद रहते हैं अर्थात् कार्बन – १४ और कार्बन – १२ का अनुपात १ और ८, ००, ००, ००, ००, ००० का है और चूँकि पौधे (और पौधों द्वारा मनुष्य व पशु) अपना भोजन इसी कार्बन – डाई – आक्साइड से प्राप्त करते हैं, इस कारण उनमें भी यही अनुपात कार्बन – १४ और कार्बन – १२ का विद्यमान रहता है।

पौधे अथवा जानवर की मृत्यु हो जाने पर उसमें कार्बन – १४ का प्रवेश नहीं हो पाता अर्थात् वायु – मण्डल से कोई सम्बन्ध न रह जाने के कारण उसमें कार्बन – १४ का पदार्पण नहीं हो पाता। इस प्रकार पौधे अथवा जानवर के अवशेषों में प्रारंभ में कार्बन – १४ और कार्बन – १२ का अनुपात वायुमण्डल के अनुपात जितना ही होता है। लेकिन रेडियो ऐक्टिविटी होने के कारण कार्बन – १४ परमाणु तुरन्त क्षय होने लगता है। अब अगर यह जानना हो कि किसी टीले के भीतर दबा चारकोल (Charcoal) या कोयला कितना पुराना है, तो हमें यह जानना होगा कि इस कोयले में कार्बन – १४ कितनी मात्रा में बच गया है। जब जीवित था, तब कार्बन – १४ की क्षय दर, जो ५७३० वर्षों में कार्बन – १४ अपनी प्रारम्भिक मात्रा का आधा रह जाता है, भी मालूम है।

अब सबसे पहले रेडियो ऐक्टिविटी का नापना है। यह बड़ा कष्ट – साध्य कार्य है। इसके लिए बहुत जटिल तकनीकों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। नमूनों को, जिनका काल निर्धारित करना होता है, मिथेन गैस में बदलना पड़ता है तथा इसके पूर्व अनुपयोगी वस्तुओं को नमूने से अलग करना पड़ता है तथा बड़ी कठिनाई एवं उपचारों से उन वस्तुओं को ब्रह्माण्ड की किरणों से बचाना पड़ता है। यदि कहीं उत्खनन कार्य करते समय वह नमूना किसी प्राणी द्वारा छू जाये तो कार्बन के अनुपात में अन्तर आ जायेगा और सारा परिश्रम बेकार हो जायेगा। इसी कारण ऐसी वस्तुओं को प्रयोगशाला भेजने से पहले बड़ी सावधानी से रखना पड़ता है।

रेडियो ऐक्टिविटी का एक बार मापन हो जाने से नमूने का काल – निर्धारण करना कठिन नहीं रह जाता। यदि आरम्भ की रेडियो ऐक्टिविटी से बाद की आधी रह जाती है तो पता लग गया कि नमूना ५७३० वर्ष पुराना है। यदि उसकी सक्रियता चौथाई रह गयी है तो २ × ५७३० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसी प्रकार सक्रियता आठवाँ भाग रह गयी है तो नमूना ४ × ५७३० वर्ष पुराना माना जायेगा।

उत्खनन द्वारा प्राप्त सामग्री में कुछ ही पदार्थ ऐसे होते हैं जिन पर परीक्षण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ चारकोल, सुरक्षित लकड़ी, सड़ी हुई लकड़ी, बाल, खाल, चमड़ा, सूती कपड़ा, सुरक्षित समुद्री घोंघे या कौड़ियों के ढांचे, हड्डियाँ और दाँत। इन नमूनों का परीक्षण इस प्रकार लिखा जाता है : १५.६±०.१ डी० पी० यम० (disintegrations per minute) जिसमें सम्भव त्रुटि ±०.१. d. p. m. हो सकती है। इसी कारण परीक्षण के पश्चात् का काल यदि ४७०० ± १५० वर्ष निर्धारित किया गया है तो इसका अर्थ यह होगा कि नमूना ४४०० और ५००० वर्ष पुराना है[1]।

काल – निर्धारण की यह वैज्ञानिक पद्धति भी आलोचना से बच न सकी। इंग्लैण्ड के कई विद्वानों ने कार्बन – १४ के कई काल – निर्धारणों की तिथियों को ग़लत सिद्ध कर दिया। फिर भी संसार के पुरातत्त्व – वेत्ताओं में कार्बन – १४ का परीक्षण सर्वमान्य है।

□

1. डॉ० धर्मपाल अग्रवाल की सौजन्यता से।

प्राचीन इतिहास

अब तक के प्राचीन इतिहास धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं के अप्रामाणिक प्रमाणों पर आधरित थे, परन्तु आज प्राचीन इतिहास को प्रामाणिक बनाने के लिए पुरातत्त्व, प्राचीन अभिलेख तथा काल – निर्धारण के लिए कार्बन – १४ उपस्थित हैं। फिर भी अनुमानों के, धार्मिक विश्वासों के, राष्ट्रीय विचारों के समावेश का स्थान इतिहासकार को मिल ही जाता है, जहाँ वह अपने पक्षपाती विचारों से प्राचीन इतिहास की सच्चाई को समाप्त कर देता है। उसको ऐसे रंग में रंग देता है, जिनसे भावी पीढ़ी के नवयुवकों में एकता व सहयोगिक वृत्ति के स्थान पर पृथकता व असहयोगिक वृत्ति पनपने लगती है और मानव कल्याण के स्थान पर अकल्याण होने लगता है।

विज्ञान की इतनी प्रगति होने पर भी प्राचीन इतिहास के लिए इतनी पर्याप्त सामग्री नहीं मिल पाती है, जिसके द्वारा इतिहासकार उसको पूरा कर सके। प्राचीन इतिहास में मतभेद के निम्नलिखित कारण हैं :—

१. शिलालेखों, सिक्कों, मुद्राओं तथा अन्य अभिलेखों के रहस्योद्घाटनों में, उनके लिप्यन्तरणों में तथा भाषान्तरणों में अंतर हो जाता है, क्योंकि यह कार्य भिन्न – भिन्न देशों में भिन्न – भिन्न भाषा – भाषी करते हैं। इस अंतर के कारण इतिहास की दिशा ही परिवर्तित हो जाती है और वह तथ्य से दूर चला जाता है।

२. प्राचीन अभिलेख श्रृंखला – बद्ध नहीं होते।

३. प्राचीन अभिलेखों में घटनाओं की तिथियों को पढ़ने में तथा उनको ईसवी संवत् में परिवर्तन करने में, जो विभिन्न विद्वानों द्वारा किया जाता है, अन्तर पड़ जाता है।

४. प्राचीन नामों व अर्वाचीन नामों में अन्तर पड़ने से मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं।

५. कार्बन – १४ के परीक्षण में त्रुटि के कारण या नमूने की भले प्रकार सुरक्षा न होने के कारण काल-निर्धारण में बड़ा अंतर पड़ने से इतिहास के विद्वानों में मतभेद हो जाता है।

प्राचीन इतिहासकार को संकीर्ण विचारों से दूर होकर अपने हृदय को विशाल तथा मस्तिष्क को व्यापक रखना चाहिए ताकि वह न केवल उस देश का, जिसका वह निवासी हो, वरन् विश्व का भला कर सके।

□ □ □

अध्याय : २

दक्षिण एशियाई देशों की लेखन कला का इतिहास

सिन्धु घाटी

पुरातत्त्व विज्ञान का सूर्योदय होने से पूर्व भारत का प्राचीन इतिहास धार्मिक कथाओं तथा पौराणिक वंशावलियों पर निर्भर करता था। धर्म को, प्रमाण नहीं, विश्वास की आवश्यकता होती है। विश्वास को तर्क की नहीं, धर्म – शास्त्रों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। रामायण व महाभारत, वेद व उपनिषद् आदि ग्रन्थों का काल आज तक पुरातत्त्व – वेत्ता तथा इतिहासकार, प्रमाणों के अभाव में, निर्धारित नहीं कर सके। भारतवासियों को उनकी ऐतिहासिकता का प्रमाण नहीं, अपितु उनकी दार्शनिकता का ज्ञान चाहिए जो उनके जीवन को आनन्द तथा आत्मा को मोक्ष प्रदान करता है, परन्तु विज्ञान को प्रमाण चाहिए। यही कारण था कि हमारा प्रमाणित प्राचीन इतिहास ई० पू० की छठी शताब्दी के पूर्व ज्ञात नहीं हो सका।

ऐतिहासिक घटना

मोहेंजो – दड़ो के पुरातात्त्विक महत्त्व का ज्ञान अकस्मात ही हुआ। पुरातत्त्व के उच्च – पदाधिकारी स्व० राखल दास बनर्जी पाँच वर्षों से उन बारह स्तम्भों की खोज में घूम रहे थे जो सिकन्दर ने भारत से प्रस्थान करते समय अपनी कीर्ति के लिए यहाँ स्थापित करवाये थे। १९२२ के शीतकाल में घोड़े पर शिकार खेलते समय रास्ता भूल जाने के कारण वे एक टीले पर जा पहुँचे। दैवयोग से उनको एक चकमक पत्थर (**Flint**) दिखाई पड़ा। उन्होंने अनुमान लगाया कि इस भू – गर्भ में कुछ प्राचीनता अवश्य दबी पड़ी है। वहीं पर कुषाण – कालीन बौद्ध स्तूप भी था। उत्खनन करने पर एक प्राचीन नगर की एक नहीं, सात परतें निकलीं तथा जो सामग्री मिली वह पूर्णतया नये प्रकार की थी। सर जॉन मार्शल के निरीक्षण में यह उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ तदनन्तर ई० जे० एच० मैके के निदेशन में १९३२ तक यह कार्य चलता रहा। यह सिन्धु नदी के पश्चिम की ओर सिन्ध प्रांत के लारकाना ज़िले (वर्तमान पाकिस्तान) में स्थित है। इस नगर का नाम मोहेंजो – दड़ो अर्थात् 'मुर्दों की समाधि' अथवा 'मुर्दों का नगर' था।

मोहेंजो – दड़ो से लगभग ४०० मील उत्तर, रावी के पूर्वी किनारे पर मॉन्टगुमरी ज़िले (पाकिस्तान) में पुरातत्त्व विभाग के उप – निदेशक स्व० दयाराम साहनी ने १९२१ में उत्खनन कार्य आरम्भ किया तदनन्तर माधव स्वरूप वत्स ने भी किया। इस प्राचीन नगर का आधुनिक नाम हड़प्पा था। इसका प्राचीन नाम हरीयुपा (हरीत = स्वर्ण; युपा = स्तम्भ अर्थात् स्वर्ण स्तम्भों का नगर) जिससे हरप्पा तथा हड़प्पा हुआ।

इन दो प्राचीन नगरों के अतिरिक्त कुलिल (बलूचिस्तान – पाकिस्तान), कालीबंगन (राज०), लोथल व रंगपुर (गुजरात), आलमगीर पुर (उत्तर प्रदेश) तथा अन्य कई स्थानों में उत्खनन कार्य सम्पन्न हुए।

केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व निदेशक श्री बी. बी. लाल के कथनानुसार सिन्धु – घाटी की सभ्यता केवल दो नगरों तक ही सीमित न थी अपितु सारे पश्चिमी भारत व दक्षिण–पश्चिमी भारत में विद्यमान थी ।

इतिहास

इन स्थानों के उत्खनन से कई प्रकार के ताम्रपत्र, मिट्टी के चित्रांकित बर्तन, स्वर्णाभूषण, मूर्तियाँ, अस्त्र–शस्त्र, वस्त्र, मानव – कंकाल, मुद्राएँ तथा अन्य विविध पुरातात्त्विक सामग्री प्राप्त हुई, जिसने संसार को आश्चर्य – चकित कर दिया । खुदाई से इस बात का भी पता लगा कि इन नगरों में मकान पक्की ईंटों के दो–मंज़िले बने थे तथा इन में पक्की सड़कें, स्नानागार, अनाज रखने की कोठियाँ, शिक्षालय आदि भी बने थे ।

इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप देश – विदेश के विभिन्न विद्वानों को एक असीम प्रेरणा मिली, जिससे उन्होंने सिन्धु – घाटी – सभ्यता के विषय में अपने अपने क्षेत्रों (इतिहास, मानव – विज्ञान, कला, लिपि, संस्कृति आदि) में शोध व खोज करना आरम्भ कर दिया । विद्वान् अब भी उसी तत्परता से अपने कार्य में संलग्न हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि सिन्धु – घाटी के लोग कौन थे, कहाँ से आये जो आज से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व असभ्यता के युग में भी इतने सभ्य थे । इतिहासकारों ने तथा अन्य क्षेत्रों के खोजकर्त्ताओं ने सुई की नोक के समान सांकेतिक प्रमाण मिलने पर फावड़े के समान अपने अनुमान मिला कर वक्तव्य दे डाले । पर्याप्त प्रमाण न मिलने पर अनुमानों के पहाड़ खड़े हो जाते हैं । व्यक्तिगत अनुमान कदापि स्वतंत्र और निर्पेक्ष नहीं होते । वे तो अपने अपने राष्ट्रीय, धार्मिक व सामाजिक विचारों तथा पढ़ी हुई पुस्तकों से बनी धारणाओं व मान्यताओं पर आधारित होते हैं । उस पर भी वे कट्टरता से सराबोर होते हैं अथवा कभी उदारता से । इन्हीं कारणों से इस सभ्यता के विषय में विद्वानों में इतने मतभेद हैं कि स्वप्न में भी उन के एकमत होने की सम्भावना दिखाई नहीं देती ।

पुस्तकों के (जो प्राचीन इतिहास के स्नातकों को पढ़ायी जाती हैं) आधार पर अब एक धारणा पन–पती जा रही है कि भारत की मूल असभ्य जातियाँ, कोल आदि, जो इस क्षेत्र में निवास करती थीं, द्रविड़ जाति के आने से जंगलों व पहाड़ों की ओर चली गयीं । द्रविड़ जाति के लोग भारत के मूल – सभ्य – निवासी थे, जिन्होंने सिन्धु – घाटी की सभ्यता को जन्म दिया । क्योंकि इनके साथ अन्य जातियों के शनैः शनैः आगमन से शनैः शनैः मिश्रण हुआ और इस मिश्रण से एक नये प्रकार की संस्कृति का विकास हुआ । फिर विदेशी आक्रमणकारी जातियों का आगमन आरम्भ हुआ, युद्ध हुए, नगर नष्ट – भ्रष्ट हुए, फिर निर्माण हुए और यह क्रम कई शताब्दियों के अंतर से क्रमानुसार चलता रहा, जिसके कारण एक के ऊपर एक नगर बसते चले गये । अंत में एक पर्यटनशील जाति आयी, जिसके व्यक्ति आर्य कहलाते थे (आर्य जाति नहीं क्योंकि "आर्य" का शब्द जाति के साथ जुड़ा हुआ कहीं वैदिक साहित्य में नहीं मिलता । यह केवल पाश्चात्य विद्वानों की देन है जिसे हम भी मानने लगे) और जिसने इस द्रविड़ सभ्यता को लगभग ई० पू० की १५ वीं श० में सदैव के लिए नष्ट कर दिया । क्या इस धारणा को मान्यता प्राप्त हो गयी ? क्या इस विचार से सब विद्वान् एकमत हो गये ? नहीं । न हुए हैं और न होंगे, उस समय तक जब तक कोई प्रमाण प्राप्त न हो जाये, जिस प्रकार से मिस्र में तीन – लिपि – अंकित एक काला शिलाखण्ड रोसेटा से प्राप्त हुआ या ईरान में तीन – भाषा – अंकित एक शिलालेख बिसीतून से प्राप्त हुआ । इन्हीं प्रमाणों के आधार पर मिस्र व ईरान के प्राचीन इतिहास का रहस्योद्घाटन हुआ और वह संसार के सब विद्वानों को मान्य हुआ ।

लिपि

इस घाटी के उत्खनन् से लगभग तीन सहस्र मुद्राएँ व उनकी छापें प्राप्त हुई, जिन पर चित्र, चित्र व चिह्न तथा केवल चिह्न अंकित हैं, जो उस सभ्यता में विकसित लिपि का होना सिद्ध करते हैं।

किसी भी गूढ़ लिपि का रहस्योद्घाटन करने के लिए उसकी भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य है। यदि लिपि का ज्ञान हो तो भाषा समझी जा सकती है परन्तु यदि शोधकर्ता भाषा व लिपि दोनों से ही अनभिज्ञ है तो अभिलेखों का पढ़ना असम्भव है। इसी कारण कितने ही भारतीय एवं अन्य देशवासी लिपि – विशेषज्ञों ने मुद्राओं के रहस्योद्घाटन करने का दावा किया है परन्तु वह अभी तक सर्वमान्य नहीं हो सका। इसी प्रकार इतिहासकारों ने अपने विचार भी रखे कि सिन्धु – घाटी की सभ्यता का रहस्य खुल जाये परन्तु इस पर भी विद्वान् एकमत न हो सके। कुछ के मत निम्नलिखित हैं :— जॉन मार्शल कहते हैं कि यहाँ की संस्कृति वैदिक संस्कृति से सर्वथा भिन्न है। श्री नीलकण्ठ शास्त्री का मत है कि वे जैन थे, क्योंकि एक शब्द है 'वृषभ' (ऋषभ) तीर्थंकर का नाम मिलता है तथा योगेश्वर की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। कुछ का मत है वे आर्य थे तथा कुछ का द्रविड़। केदारनाथ शास्त्री कहते हैं कि इनकी सभ्यता सुमेर – निवासियों से बहुत कुछ मिलती है तथा यहाँ के निवासी एकेश्वरवादी थे। कुछ कहते हैं कि सुमेर – सभ्यता इसकी जन्मदाता है और कुछ का मत है कि सिंधु – घाटी – सभ्यता उसकी जन्मदाता है। मानव – विज्ञान – वेत्ताओं (ऐन्थ्रोपॉलोजिस्ट्स) का मत है कि यह सभ्यता चार जातियों का सम्मिश्रण है।
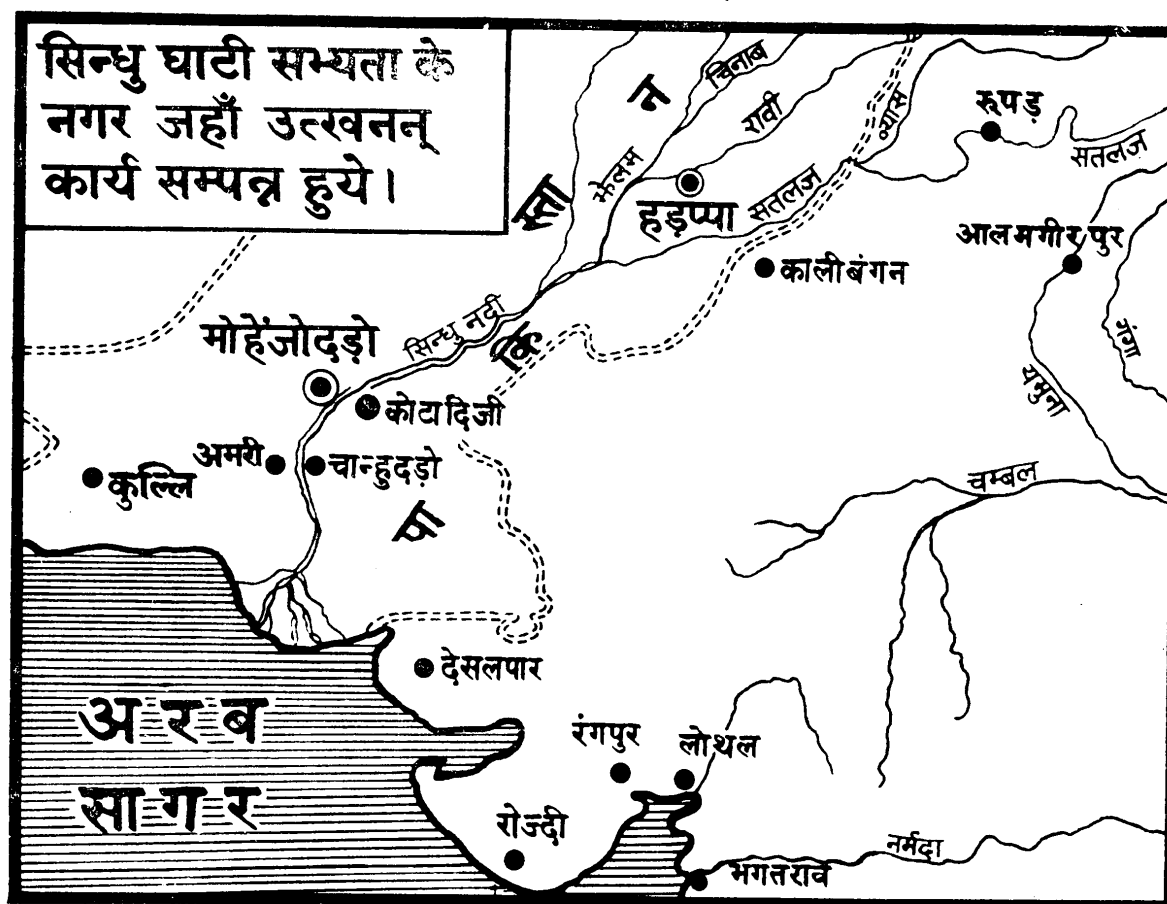
फलक संख्या – ६

किन किन विद्वानों ने किस किस प्रकार से यहाँ की गूढ़ लिपि का रहस्योद्घाटन करने का प्रयास किया हैं तथा यहाँ की सस्कृति के विषय में या निवासियों के विषय में क्या क्या विचार रखे हैं, अगले पृष्ठों पर संक्षिप्त में दिये गये हैं। विद्वानों के शोध – कार्य से कोई भी विद्यार्थी या ज्ञान की खोज का उत्सुक पाठक किसी प्रकार का निश्चित परिणाम नहीं निकाल सकता। वह तो ऐसी भूल – भुलइयों में फंस जायेगा, जिनसे निकलना असम्भव हो जायेगा। इसका मुख्य कारण है विद्वानों के निष्कर्षों की भिन्नता।

सिन्धु–घाटी–क्षेत्र में लगभग १०० स्थानों पर उत्खनन कार्य किये जा चुके हैं, जिनमें से लगभग ६० स्थानों से सिन्धु–घाटी–सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उत्खनित सामग्री में अनेक प्रकार की मुद्राएँ (Seals) भी प्राप्त हुईं, जिन पर चित्र व चिह्न (एक प्रकार के वर्ण Characters) उत्कीर्ण थे। उन्हीं चित्रों व चिह्नों के रहस्योद्घाटनार्थ संसार के अनेक विद्वानों ने प्रयास किये, जिनमें मुख्य के नाम नीचे दिये गये हैं। (फ० सं० ६)

सिन्धु–घाटी–लिपि के रहस्योद्घाटन का प्रयास करने वाले विद्वानों की तालिका :—

१—श्री एल० ए० वड्डेल (L. A. Waddell)
२—प्रो० डबल्यू० यम० फ़िलण्डर्स पेट्री (Sir W. M. Flinders Petrie)
३—डा० जी० आर० हन्टर (Dr. G. R. Hunter)
४—रेवरेण्ड यच० हेरास (Rev. H. Heras)
५—श्री सुधांशु कुमार रे
६—डा० प्राण नाथ
७—श्री राज मोहन नाथ
८—स्वामी शंकरानन्द
९—हर पी० मेरेग्गी (Herr P. Meriggi)
१०—एस्को परपोला, सीमो परपोला, कोसकेन्निमी एवं पी० आल्टो (Asko Parpola, Simo Parpola, Kos Kenniemi, P. Aalto)[1]
११—डा० फ़तेह सिंह
१२—श्री एस० आर० राव
१३—श्री यम० वी० एन० कृष्णाराव
१४—श्री यल० यस० वाकणकर
१५—श्री डी० यम० बरुआ
१६—श्री यस० पर्णवितान
१७—श्री एरस्ट डब्लोफ़र और हेवेसी (Erust Doblhofer and Hevesy)
१८—श्री बांके बिहारी चक्रवर्ती
१९—श्री शंकर हाज़रा
२०—रूसी विद्वान
२१—बी० हरोज़्नी
२२—श्री जॉन न्यूबेरी (John Newberry) आदि।

1. ये विद्वान 'स्कैण्डिनेवियन इन्स्टीट्यूट आफ़ एशियन स्टडीज़ — कोपेनहेगन (डेनमार्क)' के हैं।

एल० ए० वड्डेल

एल० ए० वड्डेल[1] ने १९२५ में सुमेर की लिपि के चिह्नों के आधार पर सिन्धु-घाटी की मुद्राओं को पढ़ने का प्रयास किया है। मुद्राओं में अधिकतर बैल या भैंसा दिखाया गया है, जो सम्भवतः मानव आवश्यकताओं का प्रमुख मूल कारण हो। कुछ समानताएँ दिखाई हैं, जैसे सुमेरियन भाषा में मोहेंजो के अर्थ भैंस हैं तथा संस्कृत में महिशा के अर्थ हैं भैंसा। सुमेरियन में दुरू के अर्थ सागर, संस्कृत में द्वर के अर्थ सागर हैं तथा फ़ारसी में दरिया के अर्थ सागर हैं। इस प्रकार दड़ो के अर्थ भी सागर हुए अर्थात् मोहेंजो-दड़ो के अर्थ हुए 'भैंसों का सागर'। फ० सं० – ७ की मुद्रा को दायेंसे बायें पढ़ा है।

आपने अपनी पुस्तकों में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सिन्धु-घाटी, सुमेर तथा फ़िनीशिया के मूल निवासी आर्य थे।

प्रो० विलियम मैथिउ फ़्लिण्डर्स पेट्री

प्रोफ़ेसर पेट्री[2] ने कुछ चित्रों का रहस्योद्घाटन करने का प्रयत्न किया, जिनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है तथा वे फ० सं० – ८ पर दिये गये हैं। आपने उन चिह्नों को शब्द माना है।

M D—४० एवं ४१ : पानी वाला कन्धों पर चमड़े के थैलों में पानी ले जा रहा है। उनके सिर ढकने के लिए बड़ी टोपियां लगी हैं।

MD—४७ : पानी वाला नहर से पानी ले जा रहा है।

MD—५१ : पानी विभाग का एक पदाधिकारी।

MD—५३ : नहर का कांटा।

MD—५४ : सड़क निरीक्षक की मुद्रा।

MD—४६ : १. गायन शास्त्री; २. राजदरबार; ३. पदाधिकारी।

डा० जी० आर० हण्टर

डा० हण्टर[3] ने सिन्धु-घाटी लिपि का गहन अध्ययन किया है। उसको हर दिशा से समझने का प्रयत्न किया है। आप ने लगभग ७५० मुद्राओं के चिह्नों को पढ़ने का प्रयत्न किया है और २३४ मौलिक चिह्नों को निर्धारित किया है। एक वर्णमाला भी तैयार की है, जो फ० सं० – ९ क (पृष्ठ ३२-३३) पर दी गयी है। परन्तु आपने मुद्राओं का रहस्योद्घाटन नहीं किया।

आपने चित्रों का विश्लेषण इस प्रकार दिया है :—

१-तीर कमान सहित एक योद्धा। २-ताल में बत्तख। ३-अनाज के कोठे।

तीनों चित्र पृष्ठ ३४ पर फ० सं० – ९ ख में दिये गये हैं।

---

1. आप पहले इंग्लैण्ड के विद्वान् हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम सिन्धुघाटी लिपि को पढ़ने का प्रयास किया तथा आर्यों की संस्कृति को पश्चिम-एशिया की प्राचीन संस्कृतियों का जन्मदाता माना है।

2. प्रो० पेट्री मिस्र के पुरातत्त्ववेत्ता थे। विविध प्रकार की पुरातात्विक सामग्री जो आपने उत्खनन् द्वारा प्राप्त की, लन्दन के संग्रहालय में सुरक्षित है। जन्म १८५३, स्वर्गवास १९४२।

3. डा० जी० आर० हन्टर ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अपना शोध-कार्य सिन्धु-घाटी-लिपि पर किया (१९२९)।

एल० ए० वड्डेल
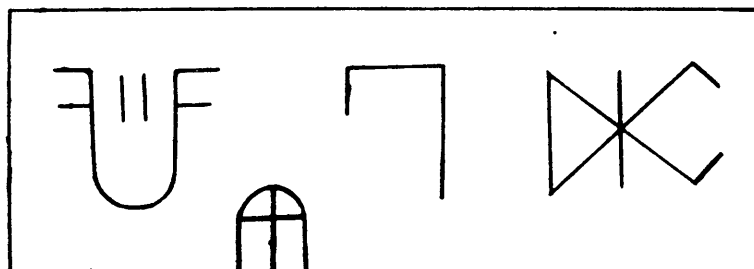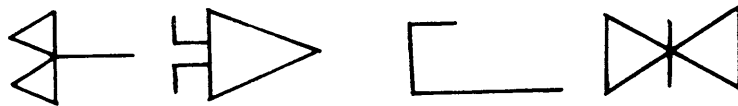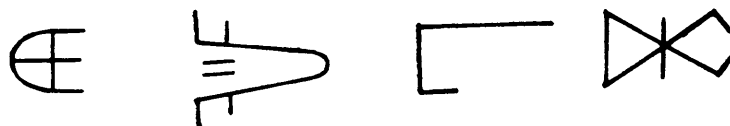
फलक संख्या – ७

प्रो० पेट्री

फलक संख्या – ८

डा० जी० आर० हन्टर

फलक संख्या – ९

डा० जी० आर० हण्टर

थ द ध न

नी नु नू ब म म

मि मे मी मो य र

ल व

वी वृ श स

ह हा ही हू

फलक संख्या – ९ क

डा० जी० आर० हण्टर
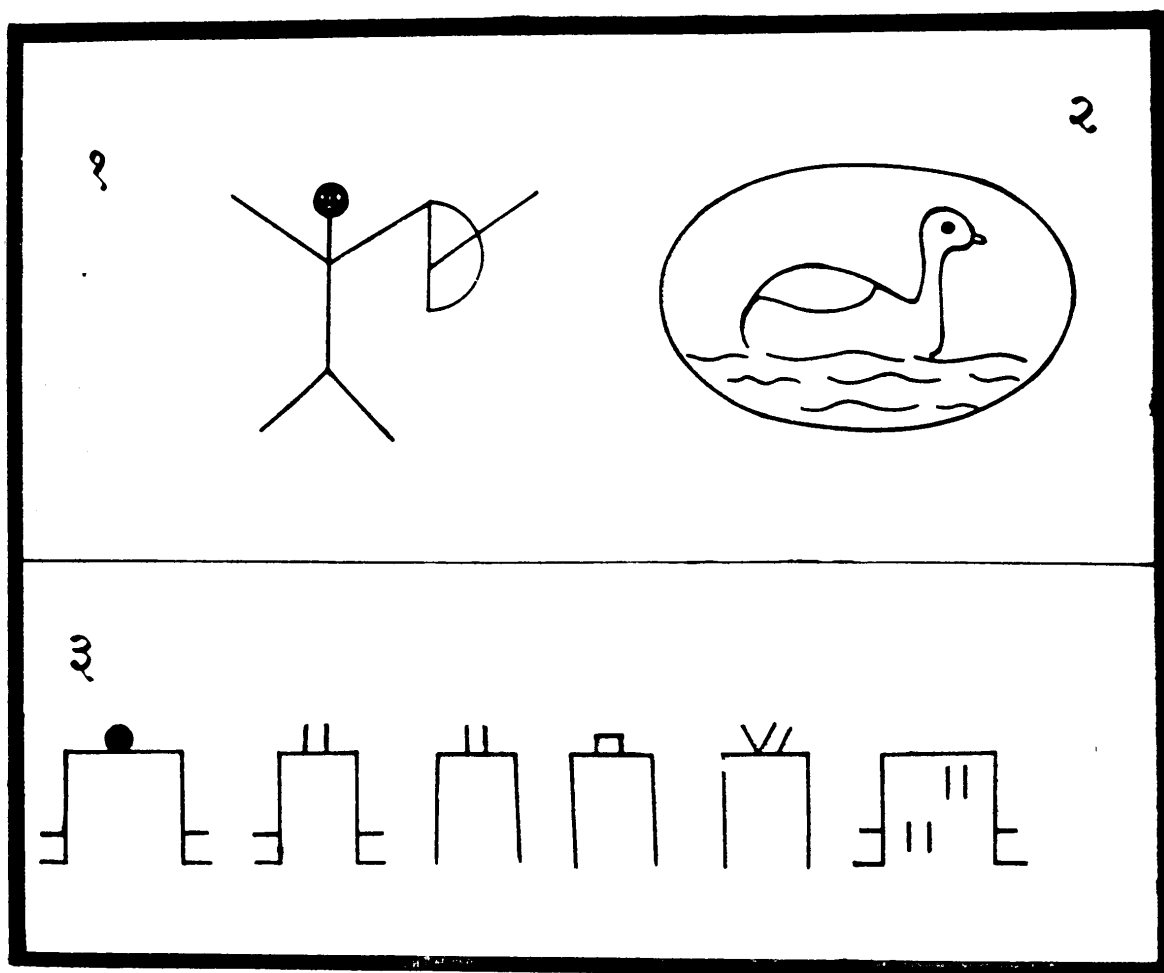
फलक संख्या – ९ ख
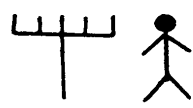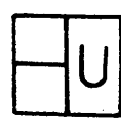
फ़ादर यच० हेरास

हेरास[1] ने मोहेंजो–दड़ो की लगभग १८०० मुद्राओं (Seals) के गूढ़–रहस्यात्मक चिह्नों को पढ़ने का प्रयास किया है। आप ने २९० संश्लिष्ट चिह्नों को पृथक् किया। भाषा व संस्कृति के विषय में आपका पूर्ण विश्वास है कि सिन्धु–घाटी के निवासी द्रविड़ थे तथा उनकी भाषा भी द्रविड़ थी। आर्यों ने इस द्रविड़ संस्कृति को कई बार नष्ट किया। १५०० ई० पू० में आर्यों के अन्तिम आक्रमण ने इसको सदैव के लिए नष्ट कर दिया, जो फिर कभी जीवित न हो सकी। उसी विश्वास के आधार पर आपने चिह्नों का स्पष्टीकरण (पृष्ठ ३५–३८) किया है, जो 'फ० सं० – १०' पर दिया गया है। हेरास का यह रहस्योद्घाटन १९३७ में प्रकाशित हुआ[2]। चार मुद्राओं के रहस्योद्घाटन का निम्नलिखित विवरण है जो 'फ० सं० – १० क' पर दिया गया है :—

1. फ़ादर हेरास, भूतपूर्व निदेशक, इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट, सेन्ट जेवियर्स कालेज, बम्बई—१
2. Published in "INDIAN CULTURE"—Vol. III (1937)
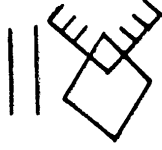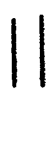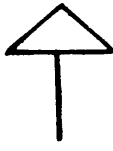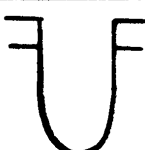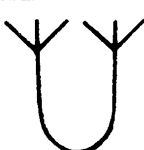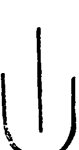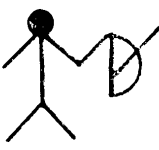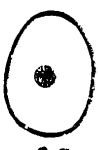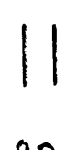
फादर यच० हेरास

मिश्रित	पृथक	द्राविड़ भाषा	अर्थ
		विलाला	विलाल जाति का मनुष्य
		पिराल	प्रमुख व्यक्ति
		रूरुअल	शिक्षक
		वलिल	दुर्ग
		रूवल	मनोरंजन

इल = घर | इलइल = घर में

उर = नगर | उरिल = नगर में

मीन = मछली | मीनिल = मछली में

उर = नगर | उरवेलि = नगर के बाहर

फलक संख्या – १०

हेरास
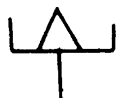
फलक संख्या – १० क

हेरास

फलक संख्या – १० ख

हेरास

मीनावन	=	धोबी
मुनेन	=	त्रिमूर्ति
मुन मेला	=	त्रिपर्वत
कल	=	पत्थर खोदना
कन	=	आंख (देखना)
निलः	=	भूमि
पक	=	भाग देना
मल	=	वर्षा
कोन	=	राजा
मग	=	पुत्र
पगल	=	दिन
नाडू	=	मध्य
एन	=	विचार करना
उइर	=	जीवन

फलक संख्या – १० ग

मुद्रा का क्रमांक	लिप्यन्तर	अर्थ
मार्शल MD–१६९	पकीलल।	व्यक्ति कष्ट में।
मार्शल MD–२१७	सेर अडु।	यह कैदी है।
	१–इर।	
	२–तलालिलिल।	
मार्शल; हड़प्पा–४४	३–इर।	मछली दो आँखों से पहचानी गयी
(दाये से बायें पढ़िये)	४–कन।	जो दो घरों में थीं।
	५–अरि।	भावार्थ :—वेधशाला जिसके द्वारा नक्षत्रों
	६–मीन।	का अध्ययन किया जाता है।

क्रम २७१ की मुद्रा का लिप्यन्तर : १–उइरइ; २–इर; ३–मीनन; ४–मीन; ५–मीन; ६–कन; ७–आइर; ८–इर; ९–एन; १०–तेन; ११; अदु; १२–मुन; १३–पाकिल; १४–अस्प; १५–विलान; १६–वेतु; १७–रिल; १८–आ; अर्थ : "वेलूर की गायों ने दो मछली की आंख वाले दक्षिण निवासी ग्वालों के तीन बिल्वासों को जो मीनों के थे तथा तप्ती धूप में खड़े थे, नष्ट कर दिया।"

फ़ादर हेरास ने इस लिपि से २४१ ऐसे चिह्न पृथक् किये हैं जो चित्रात्मक लिपि की तरह प्रयोग में लाये गये हैं। उनमें कुछ फ० सं०–१० ख (पृष्ठ ३७) पर दिये गये हैं तथा उनका विवरण इस प्रकार है :—

क्रमांक	चित्र-विवरण	द्रविड़	अर्थ
१	एक मनुष्य है–जिसके चार हाथ हैं।	कडावुल	देवता
२	एक मनुष्य।	आल	मनुष्य
३	एक मनुष्य जिसके पूँछ है।	कुडागू	बन्दर (जाति के)
४	एक मनुष्य ढोल बजा रहा है।	परियन	ढोल वाला
५	एक मनुष्य कुछ उठा रहा है।	टुकान	मजदूर
६	एक मनुष्य तीर कमान के साथ।	विलन	धनुष-धारी
७	समाधि या स्तूप जिसके नीचे गड़ा हुआ मनुष्य।	का	मृत्यु
८	मकान का मानचित्र।	इल	घर
९	चार मकान जिनके चारों ओर चार-दिवारी बनी हुई है।	पली	नगर
१०	कमरे या उसके उप-भाग।	नालवीड	चार घर
११	एक नगर या देश।	उर	नगर-देश
१२	नगर के चारों ओर का देश अर्थात् नगर राज्य।	कलाकुर	देश-संघ

आपने लगभग १८५ मिश्रित ध्वन्यात्मक चिह्न को निर्धारित किया है। उनमें से कुछ उदाहरणार्थ 'फ० स० – १० ग' (पृष्ठ ३८) पर उनकी मूल भाषा व अर्थ दिये गये हैं।

सुधांशु कुमार रे

श्री सु० कु० रे[1] ने अपने एक विभागीय उच्चपदाधिकारी के कहने पर सिन्धु – घाटी की कला, शिल्पव लिपि का अध्ययन १९३५ में आरम्भ किया।

---

1. भूतपूर्व जूनियर फ़ील्ड अफ़सर, क्राफ़्टस म्यूज़ियम, आल इण्डिया हैण्डी क्रैफ्ट्स बोर्ड, नयी दिल्ली।

श्री रे द्वारा ब्राह्मी लिपि के १३ चिह्नों की सिन्धु घाटी लिपि के चिह्नों से तुलना

ब्राह्मी	ग	च	त	द	ध	न	ट
सि॰ घा॰							
ब्राह्मी	ड	प	ब	भ	म	स	
सि॰ घा॰							

फलक संख्या – ११

१९६२ तक अर्थात् लगभग सत्ताइस वर्ष आपने गम्भीर खोज की। सैकड़ों चार्ट बनाये और बिगाड़। अनगिनत विद्वानों (जैसे डा. सी. जे. गैड, डा. आर. ई. फ़ोकनर, डा. आई. ई. यस. एडवर्ड्स आदि) से आपने परामर्श लिये, परन्तु किसी सर्वमान्य निष्कर्ष पर न पहुँच सके।

सत्ताइस वर्ष की खोज तथा महान् विद्वानों के परामर्श ने आपके मन में कुछ धारणाएँ व मान्यताएँ दृढ़ कर दीं, जिनके आधार पर आप का कहना है कि यहां के निवासी आर्य थे तथा उनकी भाषा प्राकृत थी। उन्होंने यह भी माना है कि यहाँ की लिपि ब्राह्मी तथा भारत की अन्य लिपियों की पूर्वज है। अब आगे बढ़ने के लिए अर्थात् शोध व खोज करने के लिए श्री रे ने एक निश्चित पथ का निर्माण कर लिया।

आपके कथनानुसार यहां की लिपि में २८८ चिह्न हैं। तेरह चिह्न आप ने ब्राह्मी के आधार पर पढ़े हैं (फ॰ सं॰ – ११)। आरम्भ में यहां की लिपि में चित्र नहीं हैं परन्तु न समझने के कारण तात्कालिक विद्वानों ने लिपि – चिह्नों के साथ चित्र भी जो लिपि का साम्य रखते थे बनाना आरम्भ कर दिये।

इस सभ्यता व लिपि का अंतिम काल १५०० ई॰ पू॰ सर्वमान्य बन गया है। पुनः ४०० ई॰ पू॰ में एक विकसित लिपि दृष्टिगोचर होती है। इसके अर्थ हैं कि प्राचीन लिपि का अंत और नवीन लिपि का आरम्भ का अन्तर लगभग ११ सौ वर्ष हो जाता है। अंत–आरम्भ की कड़ियों को कैसे जोड़ा जाये। आप

सुधांशु कुमार रे

FEM Pl. XCII No. 5.

म अ र र च न मग

गमनाचर्रामि = घूमने के लिये जा रहे

MIC SEAL No. 11.

इ क्क़ र अ त म त व र ऐ ब (व)

वै-रा-व-त-मा-त-अ-रक्की

वैरावत माता रक्की = ऐरावत मात्य रक्षी =

ऐरावत हाथी का पालक

फलक संख्या – ११ क

सुधांशु कुमार रे

MIC - 111. (चित्रात्मक)

मेज़ पदाधिकारी अनाज

आफिसर मेस के लिए अनाज

MIC - 337.

सि॰ घाटी चिन्ह |

मिस्त्र लिपिचिन्ह |

म ख अह ध स प

पसधाखम = गाय-बैलों के स्वामी

फलक संख्या – ११ ख

सुधांशु कुमार रे
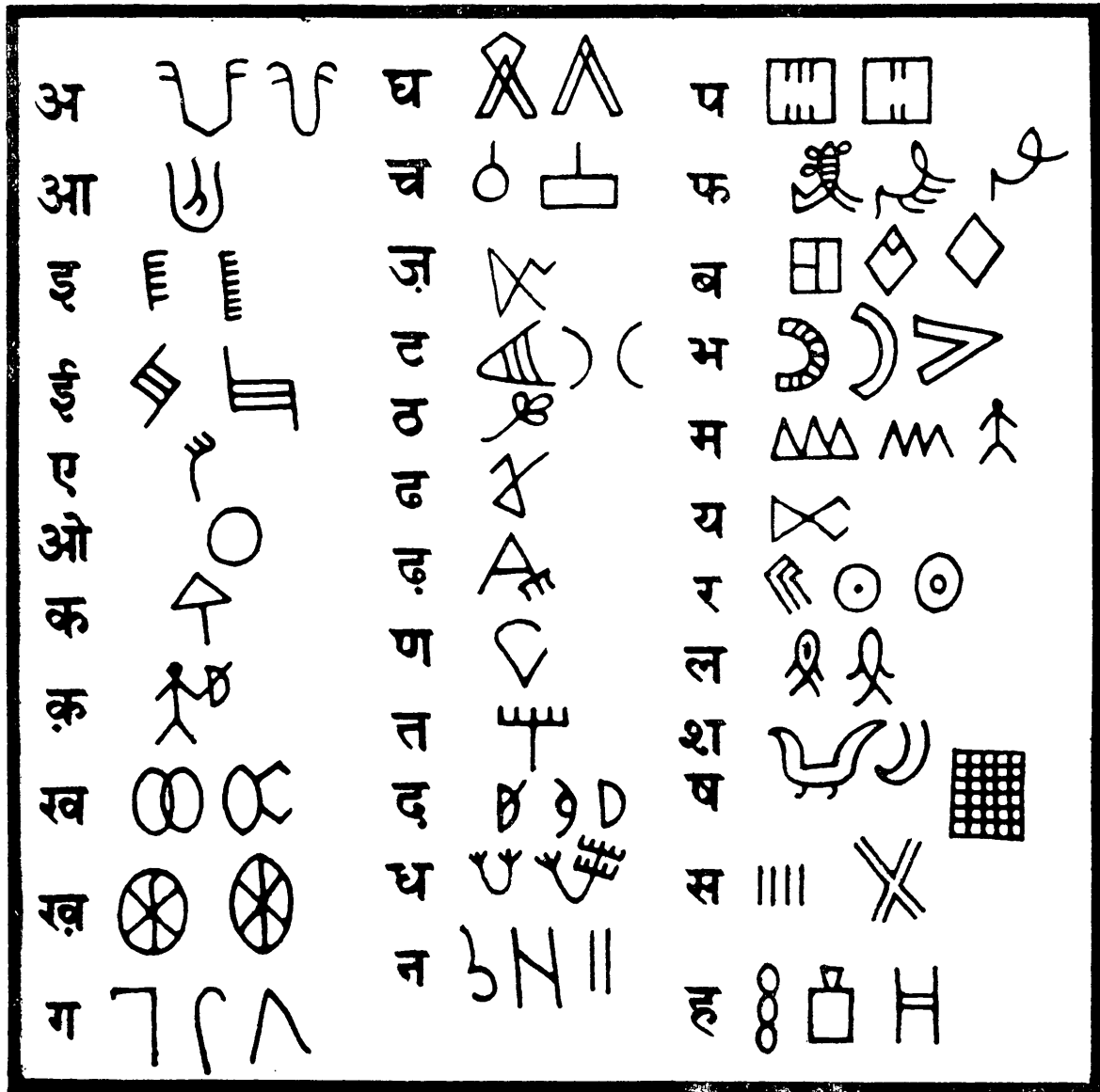
फलक संख्या – ११ ग

के मतानुसार कठिनता यह है कि जो विद्वान् सुमेर व असीरिया तथा मिस्र के विशेषज्ञ हैं, वे भारत के ज्ञाता नहीं हैं अथवा जो भारत के विशेषज्ञ (इण्डोलॉजिस्ट्स) हैं वे उन देशों से अनभिज्ञ हैं या कम ज्ञान रखते हैं। यदि ये सब विद्वान् परस्पर मिलकर शोध कार्य करते तो सम्भवतः सिन्धु – घाटी की समस्या कुछ सुलझ जाती।

आप ने कुछ मुद्राओं का लिप्यन्तरण तथा साथ में अनुवाद भी किया है। आप ने मुद्राओं को दायें से बायें की ओर पढ़ा है (फ० सं० – ११ क, ११ ख)। मोहेंजो – दड़ो के चिह्न सिलेबिक (अक्षरात्मक) तथा हड़प्पा के ऐल्फ़ाबेटिक (वर्णात्मक) हैं। आपने एक वर्णमाला भी बनायी है (फ० सं० – ११ ग)।

डा० प्राणनाथ विद्यालंकार

डा० नाथ[1] का कहना है सिन्धु – घाटी – लिपि के चिह्नों का रहस्योद्घाटन करने के लिए सुमेर तथा मिस्र की लिपियों का ज्ञान होना आवश्यक है। आप ने कुछ तांत्रिक चिह्नों के आधार पर एक वर्णमाला तैयार की है जो 'फ० सं० – १२' पर दी गयी है। आपने ७८ अभिलेख[2] पढ़े। यहां के लोगों को आपने आर्य माना है।

श्री राजमोहन नाथ

श्री नाथ[3] का मत है कि आर्यों ने (ऋग्वेद के अनुसार) दस्युओं के विरुद्ध दो महायुद्ध किये और उनके दो नगर नष्ट भ्रष्ट हो गये। युद्ध का स्थान हड़प्पा था। सिन्धु – घाटी के निवासी दस्यु थे। आप ने मोहेंजों – दड़ों की परिभाषा इस प्रकार की है। महा – इंजदड़ो; महा = महान्; इंज या इंग = संकेत देना अथवा नियंत्रित करना; दड़ो = दुर्ग अर्थात् संकेत देने वाला बड़ा किला अर्थात् सैनिक मुख्यालय। आप ने कई मुद्राओं को पढ़ा तथा एक वर्णमाला भी तैयार की जो 'फ० सं० १३' पर दी गयी है।

मुद्रा-प्लेट I.MD सील नं० २४.CIV—जो श्री नाथ जी ने बाँयें से दायें इस प्रकार पढ़ा 'वरशिखा (देवता) तथा उनकी फौज'। इस मुद्रा में एक सींग वाला पशु भी चित्रित है।

स्वामी शंकरानन्द

स्वामी शंकरानन्द जी[4] की धारणा है कि यहां की संस्कृति वैदिक थी तथा उन आर्यों से भिन्न थी जो आक्रमणकारी थे। पर्यटनशील जाति इतने महान् ग्रन्थ (वेद) की रचना कर ही नहीं सकती। आप यह भी मानते हैं कि वेद पुजारियों के ग्रन्थ थे, जिसमें समाज के एक भाग का वर्णन है। इसके अतरिक्त वेदों में दुखों व कठिनाइयों का वर्णन है जिसस सिद्ध होता है कि सिंधु – घाटी के निवासी विजेता नहीं अपितु पराजित व्यक्ति थे।

भाषा व लिपि पर स्वामी जी ने बड़ा गम्भीर शोध किया है। प्राचीन पश्चिमी–एशिया के अनेक देशों की लिपियों का अध्ययन किया तथा तुलनात्मक खोज करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि सिन्धु–घाटी–लिपि ही पश्चिमी–एशिया के देशों की लिपियों की जन्मदाता है, क्योंकि उनमें यहाँ की लिपि के बहुत से चिह्न पाये जाते हैं। आप के कथनानुसार इस लिपि में लगभग ४०० चिह्न हैं, ११८ संश्लिष्ट वर्ण हैं तथा ४६९ शब्द हैं (फ० सं० – १४, १४ क, १४ ख, १४ ग)।

आप ने कुछ मुद्राओं का रहस्योद्घाटन तो तंत्राभिधान (तांत्रिक शब्दकोश) द्वारा किया तथा कुछ वर्षों पश्चात् एक वर्णमाला प्रस्तुत की (फ० सं० – १४ क)। उर (मेसोपोटामिया) से प्राप्त एक मुद्रा को, जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है तथा जिसका क्रमांक १२२९४६ है, स्वामी जी ने पढ़ा है।

---

1. आप गुरुकुल की उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर लन्दन चले गये तथा वहां से आ.कर सनातन धर्म कालेज, कानपुर तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में १९३० में अध्यापक रहे। आप का स्वर्गवास हो गया।
2. Journal of Royal Asiatic Society, London (1931).
3. गौहाटी विश्वविद्यालय में प्रवक्ता रहे। आपने अपना सिन्धु – घाटी – लिपि पर शोध – कार्य 'भारतीय इतिहास कांग्रेस' के बाइसवें अधिवेशन में प्रस्तुत किया। यह अधिवेशन गौहाटी में २९ दिसम्बर १९५९ को सम्पन्न हुआ।
4. रामकृष्णा मिशन, वेदांत मठ २९ बी, राजा किशन स्ट्रीट, कलकत्ता।

डा० प्राण नाथ द्वारा प्रस्तुत की गई वर्णमाला

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
ओ	औ	अं	अः	क	कि	क्या	ख
ग	गो	गौ	घ	घो	घौ	ङ	च
छ	ज	जा	ट	टा	ठ	ड	ढ
ण	णा	त	द	ध	न	प	पा
पी	पै	पो	ब	भ	म	मा	य या
यो	र	ल ला	व	वा	स	ह	हा

फलक संख्या – १२

श्री राजमोहन नाथ

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ

क ख ग घ ङ च छ ज झ

ट ठ ड ण त थ द

ध न प फ ब

भ म य र ल व श

ष स ह

व र श ख बग बं ता

फलक संख्या – १३

स्वामी शंकरानन्द

अ आ इ

ई उ ऊ ए

ऐ ओऔ क ख

ग घ ङ च

छ ज झ ट

ठ ड ण

फलक संख्या – १४

स्वामी शंकरानन्द

त थ

द ध

न प फ

ब भ म

य र

ल व

फलक संख्या – १४ क

स्वामी शंकरानन्द

फलक संख्या – १४ ख

हर पी० मेरिग्गी

मेरिग्गी[1] ने सिन्धु – घाटी की लिपि के चिह्नों की तुलना हिटायट के चिह्नों से की है। चिह्न 'फ० सं० – २३' पर दिये हैं तथा उनका विवरण निम्नलिखित है :—

१ – पहाड़। २ – राजा। ३ – नगर। ४ – मुख्य नगर।
५ – मेज़। ६ – अनाज। ७ – मन्दिर। ८ – मनुष्य।
९ – घोड़ा। १० – सामान ढोने वाला। ११ – खरल व बट्टा। (आगे पृष्ठ ५१ के नीचे)

एस्को परपोला, सीमो परपोला आदि

परपोला[2] आदि विद्वानों ने सिन्धु – घाटी – सभ्यता को द्रविड़ माना है और चिह्नों को उसी भाषा को आधार बनाकर पढ़ने का प्रयास किया है जिसका विवरण नीचे दिया गया है :—

१ – उटई = अपना; २ – कोटु = देना; ३ – अन = दास या मनुष्य; ४ – पेन्टी = स्त्री; ५ – आल = राज्य करना; ६ – वेल्लि = सफ़ेद; ७ – वल = सत्ता; ८ – मीन = तारा या मंगल तारा; ९ – मई = काला; १० – माटी = सस्कार; ११ – टणटा = टैक्स या दण्ड; १२ – अय्या = पिता; १३ – अम्मा = माता (देवी)।

मुद्रा (क्रमसंख्या – २५१८) के अर्थ हैं 'रानी का सेवक'। इसके नीचे अंक दिये गये हैं :—

१ – अ; २ – इरू; ३ – मूड़ू; ४ – नालकू; ५ – ऐदु; ६ – आरू; ७ – यलू; ८ – एड्; ९ – अनपत्तु; १० – पत्तु।

डा० फ़तेह सिंह

डा० फ़तेह सिंह[3] का पूर्ण विश्वास है कि यहाँ की संस्कृति वैदिक थी। यहाँ की मुद्रायें मुहरें (लगाने के लिए) नहीं हैं अपितु दर्शन व धर्म पर पुस्तकों के मुद्रण के लिए बने पृष्ठ हैं। आपके कथनानुसार 'मेंने अभी तक लगभग दो सहस्त्र मुद्राओं का रहस्योद्घाटन कर लिया है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी भाषा संस्कृत है तथा विचार ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के सदृश्य हैं।'

आप ने वैदिक साहित्य व दर्शन का बड़ा गहन अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त आप ने संसार की अन्य प्राचीन संस्कृतियों का भी भले प्रकार तुलनात्मक अध्ययन किया है। मुद्राओं पर अधिकांश वैदिक देवताओं के नाम — अग्नि, इन्द्र, इन्दु — मिलते हैं। इन्द्र के साथ वरुण तथा कुछ देवियों के नाम भी मिलते हैं; जैसे उमा, इन्द्रा, परा, ससंतत्पा आदि। मुद्राओं पर पशुओं के मुख अधिकतर दायीं ओर हैं, बहुत कम बायीं ओर मिलेंगे। आप का मत है कि दायीं ओर मुंह वाले पशु देवताओं से सम्बन्धित हैं तथा बायीं ओर मुंह वाले पशु असुरों से सम्बन्धित हैं। (देखिये — पृष्ठ ५३ के नीचे)

---

1. हर पी०. मेरिग्गी एक जर्मन विद्वान् थे। आपने अपनी पुस्तक "Zur Indus Schrift" (१९५९ में) सिन्धु – घाटी लिपि का रहस्योद्घाटन किया है।
2. यह विद्वान् स्कैन्डिनेवियन इंस्टीट्यूट आफ़ एशियन स्टडीज़ डेनमार्क के हैं। इनका स्पेशल पब्लीकेशन 'नं० – 3' है :— 'Further Progress in the Indus Script Decipherment,' Copenhagen - Denmark (1969),
3, भूतपूर्व निदेशक, प्राच्य भाषा प्रतिष्ठान, जोधपुर (राजस्थान)। लेखक की आप से एक भेंट, २० अक्टूबर १९६० को हुई!

हर पी० मेरिग्गी
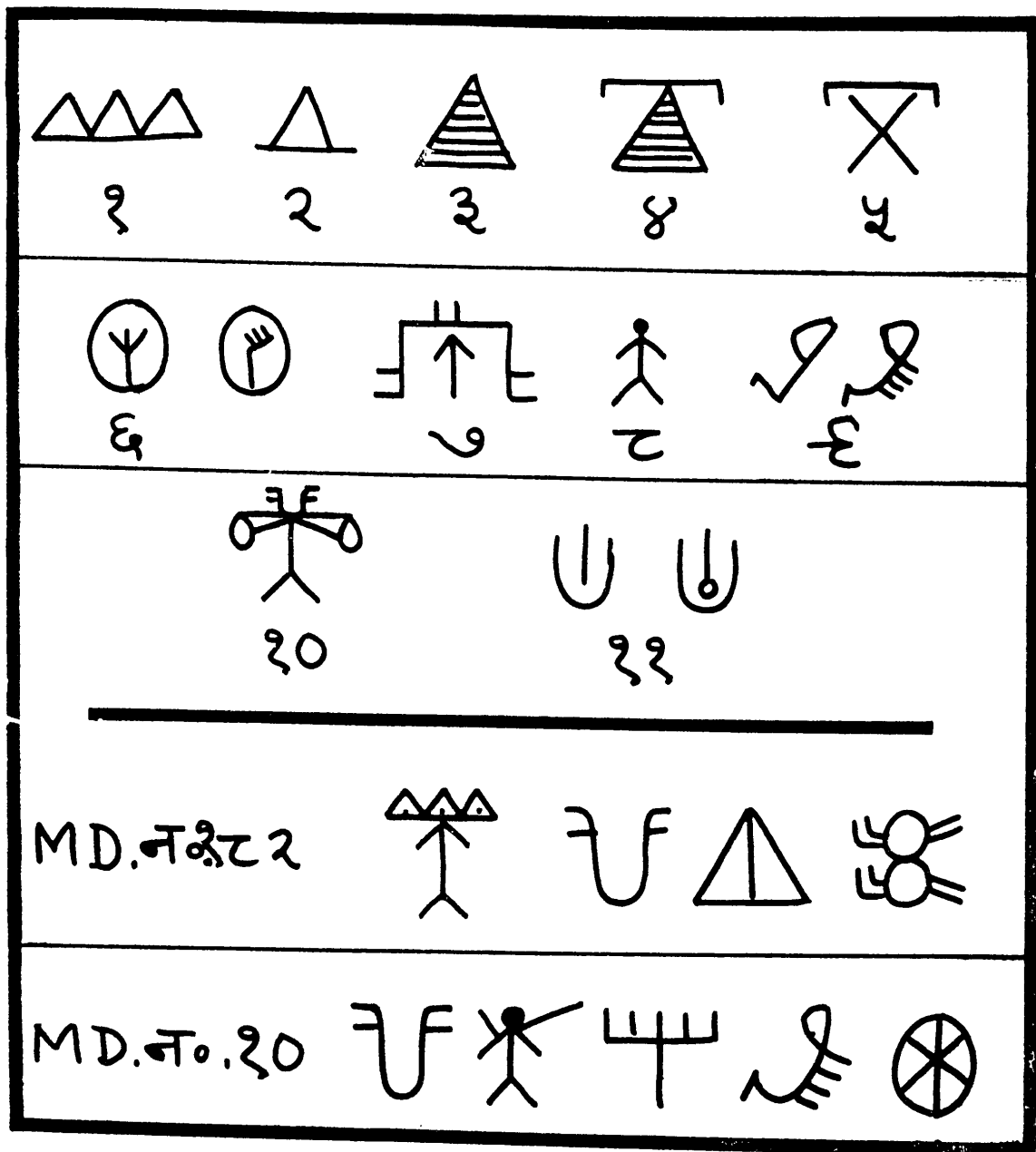
फलक संख्या – १५

पृष्ठ – ५० से (पांचवीं पंक्ति के आगे से)..........

दो मुद्राओं को इस प्रकार पढ़ा :—

ऊपर वाली : राजा का छत्र पकड़ने वाला।

नीचे वाली : घोड़ों पर छाप लगाने की मुद्रा तथा कांटा।

परपोला

फलक संख्या – १६

आपके अनुसार पाँच गायों के चित्र भी मिलते हैं, जो सृष्टिकर्ता की नारी शक्तियां हैं। एक सींग वाले भैंसे या बैल के विषय में आप का कथन है कि वह एक काल्पनिक अंज (अजन्मा, आदिकाल से) है, जो पशुओं व मनुष्यों का लाक्षणिक संकेत हैं। आपने अपने कथन को सिद्ध करने के लिए वैदिक कल्पना का सहारा लिया है, जिसमें एक सींग की गायों तथा घोड़ों का वर्णन है। वैदिक साहित्य में अग्नि, इन्द्र व सोम को भी एक सींग का बतलाया गया हैं।

आप का कथन है कि मुद्राओं पर चार प्रकार की लिपियाँ मिलती हैं, जिनमें से तीन बायें से दायें तथा एक दायें से बायें को ओर हैं। मुद्राओं में अन्य देशों के नाम भी मिलते हैं, जैसे हिन्धु (पश्चिम), इरा (पूर्व) अर्थात् सिन्धु से लेकर इरावती तक, अनदमा (अण्डमन द्वीप) तथा वृम (बर्मा) आदि। ये मुद्राएं वृक्षों की छालों पर, कपड़े तथा पशुओं की खालों पर छापने के लिए बनायीं जातीं थीं, क्योंकि यहाँ के निवासी मुद्रण की कला में प्रवीण थे। आप ने एक वर्णमाला प्रस्तुत की है तथा कुछ संश्लिष्ट वर्ण व अर्थ भी दिये हैं (फ० सं० – १७; १७ क; १७ ख)।

श्री एस० आर० राव

लेखक के कुछ प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री राव[1] ने अपने निम्नलिखित विचार स्पष्ट किये :—

उनके विचार से सिन्धु – घाटी के निवासी भारोपीय (इण्डो योरोपियन) भाषा भाषी थे और पूर्व – वैदिक – काल के थे।

उनके कथनानुसार यह तो कहना कठिन है कि यहां के मूल निवासी कहाँ से आये परन्तु मानव – विज्ञान (ऐन्थ्रापॉलोजी) की खोजों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि उनकी संस्कृति ईरान के प्राचीन निवासियों से मिलती है, क्योंकि आर्यों की तरह वे यज्ञ, बलि, अग्नि-पूजा आदि के रीति – रिवाज़ों का पालन करते थे तथा उनके देवी देवता भी उसी प्रकार के थे।

उनका कहना है इस संस्कृति का विकसित काल ई० पू० २५०० से १९०० तक तथा उत्तर काल १९०० से २६०० ई० पू० तक माना जाता है। यह बात C^{14} परख (कार्बन १४ – टेस्ट) द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। उसकी लिपि व भाषा अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है, फिर भी अभी तक बहुत से विद्वानों ने अपनी अपनी कसौटी बनाकर उन मुद्राओं को पढ़ने का प्रयत्न किया है जो सर्वमान्य न हो सका।

आरम्भ में विद्वानों ने प्रत्येक चिह्न को चित्रात्मक व भावात्मक शब्द मान लिया परन्तु कोई व्यंजन या स्वर नहीं माना, पर वड्डेल ने इस ओर सर्वप्रथम प्रयास किया, जिसका आधार था सुमेर भाषा।

पूर्व – विकसित – काल के लगभग ३९० चिह्नों को उत्तर-काल में घटा कर २० मौलिक चिह्न निर्धारित किये गये। फ़िनीशिया में तो लिपि का सरल बनाने के क्रम ने एक अक्षरात्मक रूप प्रदान कर दिया।

श्री राव के रहस्योद्घाटन के कुछ वर्ण तथा दो मुद्राओं के वर्ण 'फ० सं० – १८' पर दिये गये हैं।

लोथल मुद्रा : बायें से दायें पढ़ी जायेगी। शब्द हैं, "तारक महा"। अर्थ हैं, "एक असुर"।

मोहेंजो – दड़ो मुद्रा[2] : दायें से बायें पढ़ी जायेगी। शब्द हैं, "(एक) त्रिला – अप – पार"। अर्थ हैं, "सरक्षक"।

1. आर्कॆयोलाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया से सम्बन्धित हैं। आप भारत के एक प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता हैं, कई उत्खनन कार्य सम्पन्न किये हैं। (लेखक की १३ दिसम्बर १९७२ को आप से औरंगाबाद में भेंट हुई। कुछ वर्ष पूर्व आप ने लोथल का उत्खनन किया है।

2. The Jou.nal of "Andhra Historical Research Society", Vol. XXXIII, Part I (1972-73)

डा० फ़तेह सिंह

अ इ ई उ ऊ ए ओ :

ऋ क ख ग घ च

ज ण त द

ध न

प भ ब म

फलक संख्या – १७

डा० फ़तेह सिह

य र व स

श ह त्र

कुछ संश्लिष्ट वर्ण व अर्थ

| + Λ = ⅄ अन = अंतरात्मा

O + Λ = O अन = मध्यात्मा

O + ⬭ = O अप = ज्ञान

| + □ = □ अम = ज्येष्ठ प्राण

| + □ + □ = □ अम्म = अम्बा माता

फलक संख्या – १७ क

डा० फ़तेह सिंह

□ + Λ = ◇ मन, J + Λ = ✓ जन
| + □ + □ + | + □ + □ + | = ⊢⊢⊣ माता मही अम्भाम्भा
V + ⁊ + F = ⁊∪F वृत्र = वृत्रासुर
ↄ + E = यश = प्रकाश, ज्ञान
⊂⊃ +) + | + Λ = प्राण, | + E + V = अश्व
| + Λ + (+ > = इन्द्र, Ψ + Λ = ज्ञान
O + ⊓ + Λ + | = अग्नि
| + Λ + Λ + || = ⋈ अन्ना
◐ + Λ + Λ + | = ⊛ अन्ना = सूक्ष्म अन्न
8 + | + Λ + U + D = हिन्धु = सिन्धु
U + □ + | = उमा O + U + ||| = ⓤ||| ॐ

फलक संख्या, – १७ ख

श्री एम० वी० एन० कृष्णा राव

श्री कृष्णाराव[1] के अनुसार सिन्धु-घाटी से लगभग २६०० मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, जिनमें से वे लगभग १६७५ मुद्राओं के चिह्नों का रहस्योद्घाटन करने का दावा करते हैं। इनमें लगभग चार सौ चिह्न हैं, जो चित्रात्मक, चिह्नात्मक, कुछ मूल तथा मिश्रित चिह्न हैं और जो दायें से बायें की ओर पढ़े जायेंगे। कुछ लोगों का विचार है कि मुद्राओं से चाक – मिट्टी की छापें (Sealings) तैयार करने में दिशा परिवर्तित हो जाती है परन्तु मिट्टी के बर्तनों पर तथा धातु के बर्तनों व अस्त्रों पर भी चिह्न दायें से बायें ही दिये हुए हैं।

आपने इस लिपि का रहस्योद्घाटन कार्य १९६८ के जनवरी मास से आरम्भ किया था और सबसे पहली मुद्रा 'पशुपति वाली' पढ़ी थी। चार वर्ष शोध – कार्य करने के पश्चात् कार्य स्थगित कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ काल के चित्रों व चिह्नों में लिपि को सरल बनाने के प्रयत्न का क्रमिक विकास हुआ है।

सिन्धु घाटी की संस्कृति मिश्रित – वैदिक है, जिसमें प्राकृत व संस्कृत भाषाएं मिलती हैं। यहाँ के निवासी फन्नी, असुर तथा आर्य थे। वरुण, इसन, पवन, सयोन आदि देवताओं के नाम मिलते हैं।

इनका अपना दृढ़ विश्वास है कि सिन्धु – घाटी के मूल निवासी मारी (पश्चिम मेसोपोटामिया का एक मुख्य नगर) से आकर यहां बस गये। इनको बेबीलोन, मिस्र व असीरिया के लोगों ने परास्त किया। इस प्रकार यहाँ के निवासी एक मिश्रित जाति के हो गये।

आपने इस लिपि के रहस्योद्घाटन में ऐक्रोफ़ोनी पद्धति अपनायी है, जिसमें उस चित्र के नाम का पहला या अंतिम अक्षर ले लिया जाता है। जिस प्रकार फ़िनीशिया के निवासियों ने अपने अक्षरों के निर्माणार्थ ऐक्रफ़ोनी पद्धति अपनायी है। आपकी निर्धारित की हुई वर्णमाला 'फ० सं० – १९; १९ क' पर दी गई है।

श्री एल० एस० वाकणकर

श्री वाकणकर[2] ने इस लिपि को पढ़ने का प्रयास किया है। कुछ चिह्नों का ध्वनि निर्धारित की है, जो 'फ० सं० – २०' पर दी गयी है।

एरस्ट डब्लोफ़र एवं एम० जी० डी० हेवेसी

इन विद्वानों ने ईस्टर द्वीप की लिपि का अध्ययन करके उसकी समानता दिखायी है कि वह सिन्धु – घाटी लिपि से मिलती है (फ० सं० – २१)।

श्री बाँके बिहारी चक्रवर्ती

श्री बाँके बिहारी चक्रवर्ती[3] ने ५११ मुद्राओं को पढ़ने का प्रयत्न किया है। आपके कथनानुसार मुद्राओं पर केवल नाम खुदे हुए हैं। आपका शोध १९७५ में 'डेसीफ़र्मेण्ट आफ़ इण्डस वैली स्क्रिप्ट (Decipherment of Indus – Valley Script)' के नाम से प्रकाशित हुआ (फ० सं० – २२)।

1. टेक्नीकल असिस्टैण्ट, आरकेयोलाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया, (औरंगाबाद, महाराष्ट्र), (लेखक ने श्री कृष्णाराव से औरंगाबाद में २० दिसम्बर १९७२ को भेंट की।)
2. श्री एल० एस० वाकणकर से लेखक की भेंट २२ दिसम्बर १९७२ को बम्बई में हुई। आप स्क्रिप्ट स्टडी ग्रूप – बम्बई (Script Study Group of Bombay) के एक शोधकर्ता रहे हैं।
3. श्री बांके बिहारी जी कलकत्ता – विश्वविद्यालय के प्रवक्ता हैं। आपको यू० जी० सी० (युनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन) ने आर्थिक सहायता प्रदान की, ताकि आप सिन्धु – घाटी – लिपि पर शोध – कार्य कर सकें।

श्री कृष्णा राव

आ = इ = उ =

ए = ओ = क = ख =

व =

व = न =

य = र =

र = त =

स्त = ह = म = प =

पू = म = ड =

फलक संख्या – १९

श्री कृष्णा राव

स =

श = ष =

द = ध =

ज = झ =

ल = ग = ब =
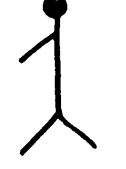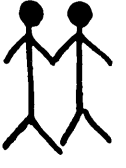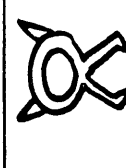
फलक संख्या – १९ क

श्री एल० एस० वाकणकर

क	ग	ण	प
न	थ	श्री	य्य
म	घू	इ	व
स	श	र	
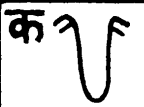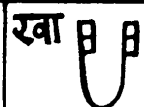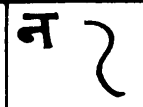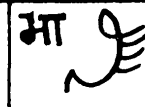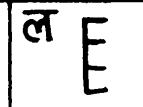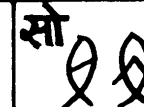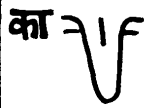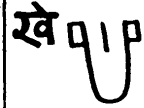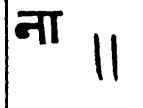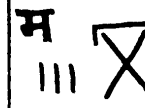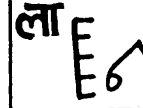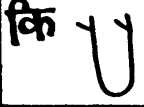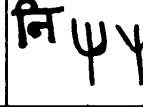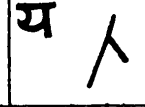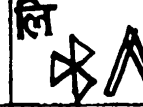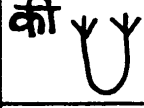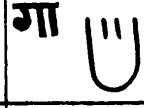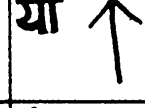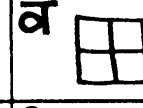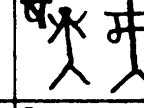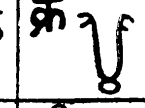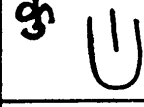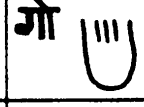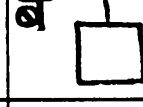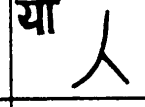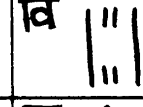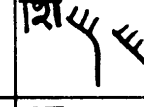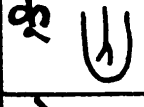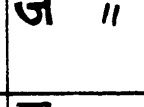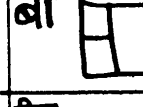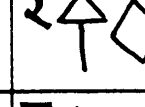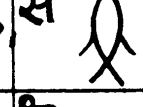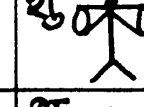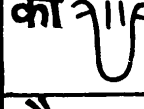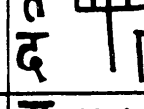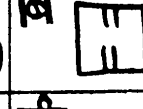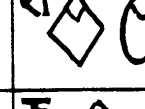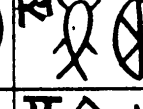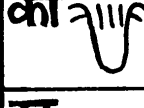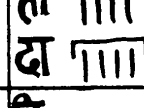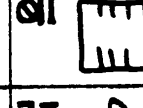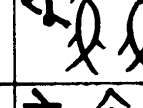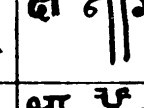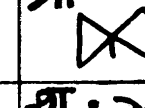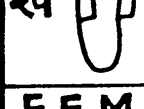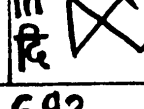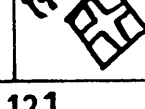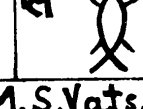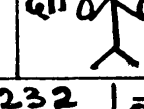
फलक संख्या – २०

बांके बिहारी चक्रवर्ती

क	खा	न	भा	ल	सो	यृश
का	खे	ना	म	ला	श	ल्स
कि	ग	नि	य	लि	श शा	त्श
की	गा	प	या	व	ष	क्र
कु	गो	ब	यो	वि	शि	श्री
कू	ज	बा	र	स	शु	न्ता
को	त द	बि	रा	सि	शू	स्रा
कौ	ता दा	बी	रु	सू	क्ष	त्रा
ख	ति दि	भ	रू	से	क्षा	न्श

F.E.M. 692	F.E.M. 121	M.S.Vats. 232	बाएं से दाएं पढ़िये
क सिसि	क ला यृश य	ला क स द ज रा	

फलक संख्या – २२

श्री जॉन न्यूबेरी

श्री जॉन न्यूबेरी[1] ने सिन्धु – घाटी के निवासियों को शमन (Shaman)[2] माना है, जो जादू टोना आदि करते थे। पेड़ों व नदियों के पुजारी थे। तंत्र विद्या के ज्ञानी थे। आपने दो पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं (फ० सं० – २३)।

शंकर हाजरा द्वारा रहस्योद्घाटन

श्री हाजरा[3] ने सिन्धु – घाटी के निवासियों को आर्य माना है। उन्होंने कुछ चिह्नों[4] के रूप – भेद दिये हैं और उनकी ध्वनियाँ भी दी हैं। उन्होंने तीन मुद्राओं को इस प्रकार पढ़ा है :—(फ० सं० – २४)

१. धर्म्मनाग – किसी शासक का नाम है।
२. अनार्यज[5] – किसी अनार्य द्वारा बनाया हुआ।
३. धरध[6] – एक शब्द है (उसके अर्थ स्पष्ट नहीं किये)।
तीनों मुद्राओं की क्रम-संख्या भी दी गयी है।

ह्रोज़्नी द्वारा रहस्योद्घाटन

जेकोस्लावाकिया निवासी विद्वान् ह्रोज़्नी[7] ने हित्ती लिपि से तुलना करके इसको पढ़ने का प्रयास किया, जिसको टॉमस (E. J. Thomas)[8] ने प्रकाशित करवाया।

(मुद्राओं को सीधी ओर से पढ़ा जायेगा)
उन्होंने ऐसी चार मुद्राओं को पढ़ा :—
१. कुसी की मुद्रा।
२. संता के मन्दिर की मुद्रा।
३. कुश (नगर) की मुद्रा।
४. अक्काद (नगर) की मुद्रा (फ० सं० – २५)।

---

1. Mr. John Newberry कनाडा के एक विद्वान हैं।
2. Newberry, J. : 'The Shamans of Indus and Their Script' (1981) – Two Handouts.
3. शंकर हाजरा कलकत्ता के एक विद्वान् हैं, जिन्होंने सिन्धु – घाटी – लिपि को पढ़ने का प्रयास किया तथा अपनी खोज का विवरण अपनी पुस्तक :—
   Sankar Hajra : The Decipherment of the Inscriptions of the Seals of Harappa and Mohenjo-daro [Cal. 1974] में प्रकाशित कराया।
4. Ibid — P. ˀ4.
5. Ibid — P 39.
6. Ibid — P. 43.
7. बी० ह्रोज़्नी ने हित्ती लिपि [कीलाकार] के अनेक अभिलेखों का, जो बोगज़कुई (हत्तुशा) से उत्खनन में प्राप्त हुए, १९१७ में रहस्योद्घाटन किया।
8. Thomas, E. J. : Indian History Quarterly, Vol. XVI [Dec. 1940]
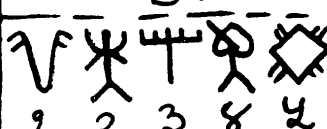
जॉन न्यूबेरी

दौड़ रहा है	एक स्त्री दोनों हाथों के साथ	गर्म देशों की मछली
शिकार कर रहा है	दो स्त्रियां जो पीपल पूजती हैं	दिशा बोधक चिन्ह
धनुष धारी	स्त्री जो पीपल की रीतियों वाली है	एक सींग वाला पशु
तीर कमान	प्रेम करना	एक सींग वाला पशु खड़ा है
फेंक रहा है	देवता का चढ़ावा	गेण्डा
शुभ कामनायें दे रहा है	नदी का मोड़	पानी ले जाने वाला
सीने से लगाना	नदी का पानी	नदी किनारा
धार्मिक रीतियां करने वाला	पीने का पानी	उत्तर दिशा
स्त्री के साथ पुरुष	वृक्ष	दक्षिण
स्त्री	सभापतित्व कर रहा है	पूरब पश्चिम
स्त्री का हाथ	मछली	पांच उंगलियां
एक मुद्रा १ २ ३ ४ ५	१= पश्चिम. २=सभापतित्व करने वाला ३= पांच उंगलियों वाला. हाथ. ४= स्त्री (पीपल) ५= दिशा	अर्थ= पशुपति, स्त्रियां और पीपल सिर पर रखे शमन पश्चिम का सभापतित्व कर रहा है अपने हाथों के साथ
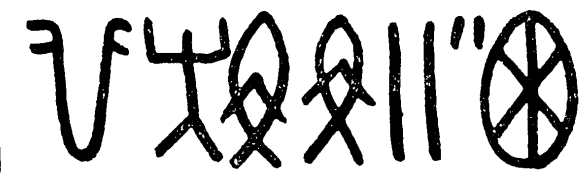
फलक संख्या – २३

हरोज़्नी द्वारा रहस्योद्‌घाटन

फलक संख्या – २५

रूसी विद्वानों द्वारा रहस्योद्‌घाटन

फलक संख्या – २५ क

रूसी विद्वानों द्वारा रहस्योद्घाटन

इन विद्वानों ने अपने निष्कर्ष एक पुस्तक[1] में प्रकाशित कराये ।

'फ० सं० – २५ क' पर चिह्नों[2] के नीचे क्रम-संख्या दी गयी है, जिसके अनुसार उनका निम्नलिखित स्पष्टीकरण किया है :—

१ – मनुष्य ।

२ – हरकारा ।

३ – एक स्त्री ऊपर हाथ उठाये है, उसके वक्ष बहुत बड़े हैं ।

४ – मनुष्य, भाला पकड़े है ।

५ – मनुष्य, धनुष लिए ।

६ – मनुष्य, पात्र लिए हुए ।

७ – पक्षी ।

८ – मछली ।

९ – मछली (विशेष प्रकार) ।

१० – कर्क (केंकड़ा) ।

११ – हाथ ।

१२ – अश्वत्थ वृक्ष ।

१३ – ताड़ का वृक्ष ।

१४ – पर्वत ।

१५ – पात्र ।

१६ – वीणा ।

१७ – मुट्ठी-भर ।

१८ – बोझ ढोने वाला ।

मुद्रा[3], जो 'फ० सं० – २५ क' पर दी गई है,

का स्पष्टीकरण :—

(i) मछली,

(ii) देवी,

(iii) कुट – २,

(iv) वेल,

अनुवाद[4] :—'जो वह दीप्तिमान देवी, हमसे दिलवाई है, दो बलिदान,'

भावार्थ[5] :—दीप्तिमानदेवी ने हमसे दो बलिदान दिलवाये,

---

1. Zide, Arlene, R. K., Zvelebil, Kamil, V. : The Soviet Decipherment of the Indus Valley Script (Hague – 1976).
2. Ibid-p. 105.
3. Ibid-p. 133.
4. 'That which the shining (celestial, beautiful) Goddess, made us give (her, is equal to) two offerings.'
5. 'Two offerings which 'shining (beautiful) Goddess made us give her.'

पशुपति – मुद्रा के विविध स्पष्टीकरण (फ० सं० – २६) :

सुधांशु कुमार रे : दायें से बायें–य. ग. अ. ल. अ. म 'योगालयम्' – मध्य में योगी बैठा है।

स्वामी शंकरानन्द : दायें से ऊपर को चलकर बायें को फिर नीचे-
भैंसा = ज; गेण्डा = ल; मनुष्य = : क ;
शेर = त ; जार = म ; मछली = ध ;
मनुष्य = क; हाथी = श; चीता = न ;
नीचे का बकरा = ए ;
लिप्यन्तरण = जल: (पथ) ततम् शकुनै।
भाषान्तर = पानी की चिड़ियों ने सारे पानी के स्रोतों को ढँक लिया है।

एम० वी० एन० कृष्णा राव : ऐक्रोफ़ोनी पद्धति से दायें से बायें–
महिशा (भैंसा) = म; खडग (गेंडा) = ख;
नर (मनुष्य) = न; सद्री (हाथी) = स;
नर = न
लिप्यन्तरण = मख नसन,
भाषान्तरण = मख नाशन,
अर्थ = मखासुरों का नाश करने वाला,

एस्को परपोला : भगवान् शिव:–(सितारे का मनुष्य).

डी० एम० बरुआ : दायें से बायें –– (केवल चिह्नों के अर्थ लगा कर पढ़ा है, चित्रों को छोड़ दिया है) इस प्रकार ऽ––
'अ – ज – ल – उ – प – स'
लिप्यन्तरण : अजल उपास
भाषान्तर : अकल उपास्य
अर्थ : पूजने योग्य पहाड़

राज मोहन नाथ : दायें से बायें––पीडा भाकम अर्थात् बेकर (Baker – रोटी बनाने वाला)

फ़तेह सिंह : दायें से बायें पढ़ा है।
लिप्यन्तरण : वृत्रा ग्निशुनौ प्राणा नौन्द्रेन्दु।
भाषान्तरण : इन्द्र और चन्द्र स्वरूप वृत्र और अग्नि शुन जीव के प्रदाता हैं।

'फ० सं० – २६' पर नीचे दी गई मुद्रा इस प्रकार पढ़ी गई

स्वामी शंकरानन्द : बायें से दायें – प. ण. या = पाणियाँ = वाणियाँ (पन्नी जाति वैदिक काल में व्यापारी थी)

कृष्णा राव : दायें से बायें – का. व. त = तौका = –का पुत्र

सां० जे० गैड : बायें से दायें – प. त्र. य = पुत्र

फ़तेह सिंह : दायें से बायें – अत्रि. त्रि. उमा = ऐसी उमा[1] जो अत्रि भी है और त्रै भी है।

एस० पर्णवितान : दायें से बायें – य. त्रि. न = यात्रा

1. उमा – ओइम् की शक्ति का नाम है।

पशुपति – मुद्रा के विविध स्पष्टीकरण
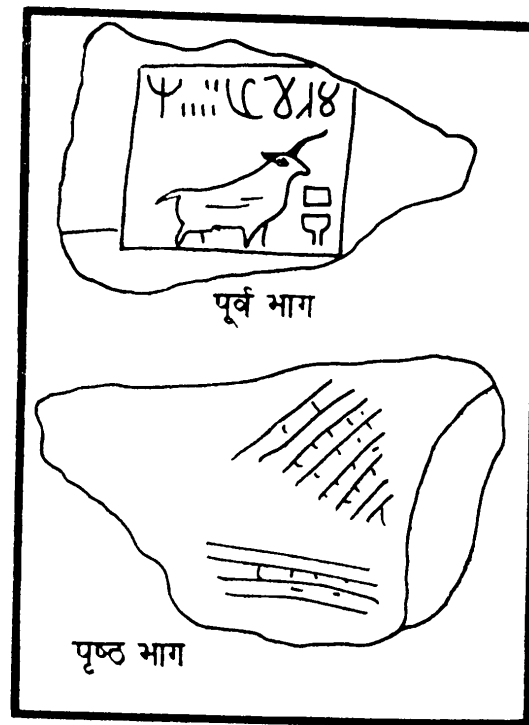
फलक संख्या – २६

सुमेर की मुद्रा

फलक संख्या – २७

सुमेर की मुद्रा

यह मुद्रा जो 'फ० सं० – २७' पर दी गई है, टेल जोखा (प्राचीन उम्मा) से पुरातत्त्ववेत्ता एस० लैंग्डन (S. Langdon) द्वारा उत्खनन कार्य, जो उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य किया था, से प्राप्त हुई और सर्वप्रथम प्रो० शील (Prof. Scheil) द्वारा प्रकाशित[1] हुई और पुन: जान मार्शल द्वारा प्रकाशित[2] हुई, जिसका काल विद्वानों ने० ई० पू० २८००के लगभग माना है। यह मुद्रा भारत में डा० वी० एस० वाकणकर द्वारा भारत लाई गई। इसके चिह्न सिन्धु – घाटी – लिपि तथा ब्राह्मी से मिलते हैं। इसको विद्वानों ने इस प्रकार पढ़ा है :–

एल० एस० वाकणकर तथा वालवालकर : दायें से बायें – ब्राह्मी के चार अक्षर = मरूमाल ६ के अंक हैं – छे फिर त्रिशूल। मरू = मारी नगर; माल = पश्चिम[3] (मेसोपोटामिया के पास का) इस नगर को वस्त्र जाते थे, क्योंकि मुद्रा के दूसरी ओर कपड़े के चिह्न हैं।

सुधांशु कुमार रे : दायें से बायें – म ग ध स ए ण ए

डा० फ़तेह सिंह : दायें से बायें – ज्ञानन्, न यजत्र तपन. अर्थ = ज्ञान ही तप है न कि यज्ञ।

---

1. Review de Assyriologie, Val. XXII—page 56.
2. Mohenjo – Daro and Indus Civilizatian, Vol. II – page 414.
3. संस्कृत भाषा में।

सिन्धु - घाटी - लिपि के चिह्न
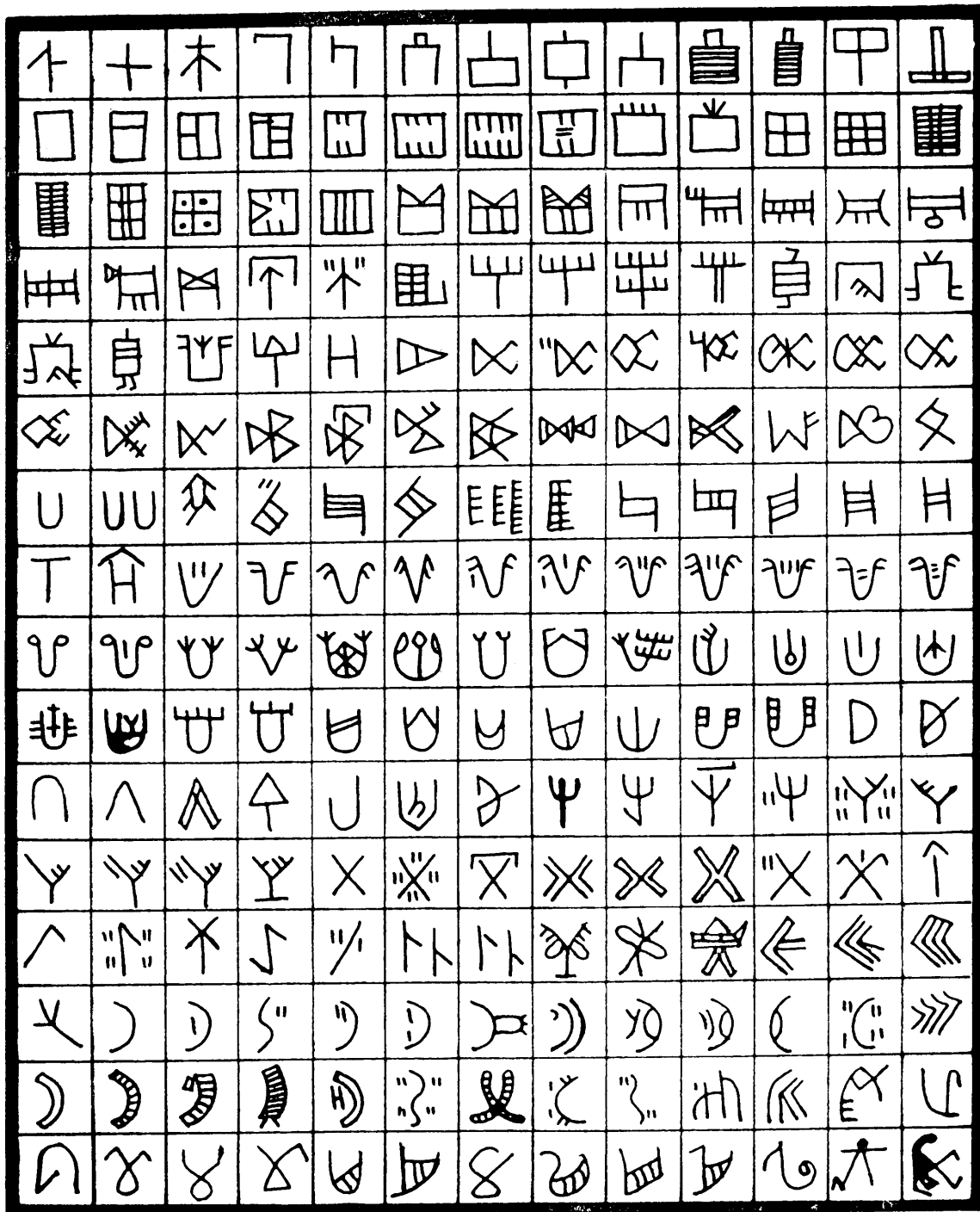
फलक संख्या – २८

सिन्धु -- घाटी -- लिपि के चिह्न
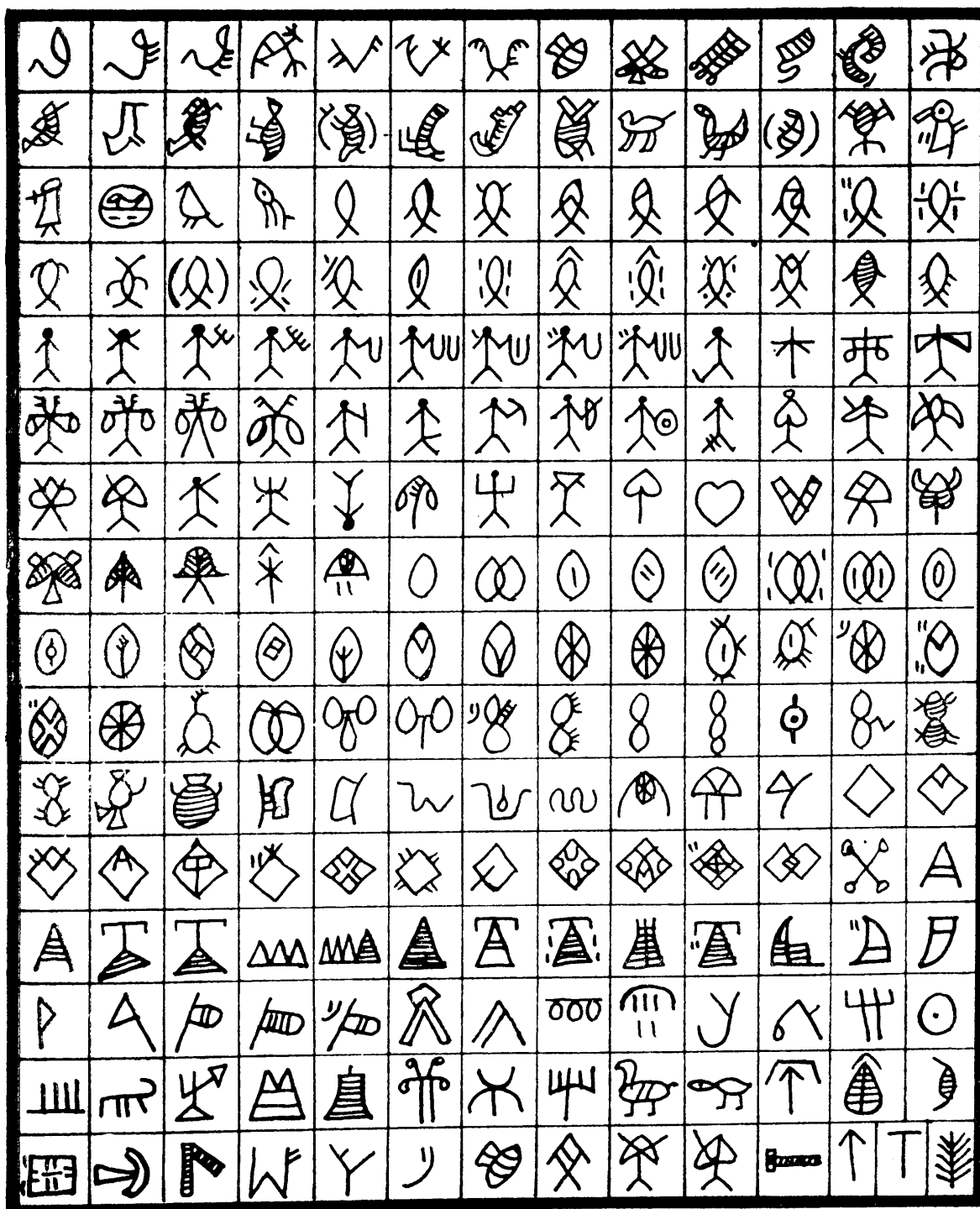
फलक संख्या – २८ क

अभिलेखों तथा मुद्राओं का विवरण

डेनमार्क के परपोला ने तथा अन्य विद्वानों ने भी कुछ विवरण सिन्धु – घाटी – लिपि व सभ्यता के विषय में दिये हैं परन्तु उनको इतनी मान्यता प्राप्त नहीं हुई जितनी निम्नलिखित विवरण[1] को प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण है कम्प्यूटर, जिसके द्वारा यह विवरण ज्ञात हुये :—

कहाँ से प्राप्त	मुद्राओं की संख्या (Seals)	मुद्राओं के सांचों की सख्या (Sealings)	कुछ अन्य वस्तुएँ (Objects)	कुल (Total)
मो० दड़ो	१२३९	११९	१८२	१५४०
हड़प्पा	३५०	२८८	३४७	९८५
अन्य स्थानों से	२३२	१०४	४५	३८१
	१८२१	५११	५७४	२९०६

लिपि के चिह्नों की कुल संख्या – ४१७[2];　　दायें से बायें – पंक्तियों की संख्या – २९७४
अभिलेखों की कुल पंक्तियाँ – ३५७३;　　बायें से दायें – पंक्तियों की संख्या – २३५
एक अभिलेख में अधिक से अधिक पंक्तियों की संख्या – ७; ऊपर से नीचे लिखी गई पंक्तियाँ – ७
एक अभिलेख में अधिक से अधिक चिह्नों की संख्या – २६

सिन्धु – घाटी के विषय में कुछ अन्य बातें :—

१ — ऐसा प्रतीत होता है कि दो मुख्य नगर (मोहेंजो – दड़ो; हड़प्पा) सात बार नष्ट हुये तथा पुनः बसाये गये। नष्ट होने के कारण सम्भवतः बाढ़, महामारी तथा विदेशी आक्रमण थे।

२ — इसका क्षेत्रफल लगभग १२ लाख वर्ग किलो मीटर है।

३ — इस सभ्यता के मुख्य केन्द्र :—

क – मोहेंजोदड़ो; ख – हड़प्पा (दोनों में ७०० कि० मी० की दूरी है); ग – कालीबंगन (दिल्ली से उत्तर – पश्चिम की ओर ३१० कि० मी०); घ – लोथल[3] – अहमदाबाद से दक्षिण – पश्चिम की ओर ८० कि० मी० पर स्थित है। उत्खनन से यह सिद्ध हुआ है कि लोथल एक समुद्र – द्वार था जहाँ से सुमेर, मिस्र आदि से व्यापार होता था। च – सुर्कोटाडा – भुज (कच्छ, गुजरात) से उत्तर – पश्चिम की ओर १६० कि० मी० है। इसके अतिरिक्त भी इस सभ्यता के अन्य कई केन्द्र उत्खनन द्वारा ज्ञात हुये हैं।

४ — सिन्धु – घाटी – लिपि[4] का रहस्योद्घाटन उस समय तक प्रमाणित सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कोई द्विभाषिक अथवा त्रैभाषिक अभिलेख प्राप्त नहीं हो जाता।

1. इसका आधार श्री महादेवन द्वारा कम्पयूटर पद्धति से निकाले आंकड़ों पर है जिसको १९७७ में भारत के पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, नयी दिल्ली ने प्रकाशित किया।
2. ४१७ चिन्ह 'फ० सं० – २८, २८ क' पर दिये गये हैं, जो महादेवन की तथा जॉन मार्शल की पुस्तकों से लिये गये हैं।
3. इसका उत्खनन श्री एस० आर० राव ने कुछ वर्ष पूर्व किया तथा 'लोथल' नाम की एक पुस्तक भी लिखी है।
4. इसको हड़प्पा – लिपि के नाम से भी सम्बोधित किया जाने लगा है।

पठनीय सामग्री

Barua, D M. : Indus Script and Tantric Code.
Chakravorty, B. B. : Decipherment of Indus Script (1975).
Doblhofer, E. : Voices in Stone – The Decipherment of Ancient Scripts and Writings (1961).
Gadd, C. J. : Mohenjo – Daro and Indus Culture.
Heras, Rev H. : Studies in Proto – Indo – Mediterranean Culture.
Hunter, Dr. G. R. : Script of Harappa and Mohenjo – Daro.
Mackay, E. J. H. : Further Excavations at Mohenjo – Daro.
Marshall, Sir John : Mohenjo – Daro And Indus Civilization. (Vol. I and II).
Meriggi, Herr P. : Zur Indus Schrift (1959).
Nath, Rajmohan : Civilization of the Indus Valley.
Newberry, John : Shamans of Indus Valley (1981).
Parpola, S. K. : Decipherment of Indus – Valley Script. Journal of S. I. A. S. (1969).
Pran Nath, Dr. : Indus Script – J. R. A. S. (1931).
Rao, S. R. : Harappan Script – Journal of "Andhra Historical Research Society – Vol. 33. Part I (1972 – 73).
Ray, S. K. : Indus Script Memos (Three).
Sankaranand, Swami : Last Days of Mohenjo – Daro.
,, ,, : Indus People Speak.
,, ,, : Introduction to the Decipherment of the Ancient Pictographic Script.
,, ,, : उत्खनित इतिहास
Singh, Dr. Fateh : सिन्धुघाटी लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक (संस्कृत) ।
Shastri, N. K. : New Light On Indus Civilization.
Vats, M. S. : Excavations at Harappa.
Waddell, L. A. : Aryan Origin of the Alphabet.
,, ,, : Indo-Sumerian Seals Deciphered.
Wheeler, M. : Civilization of the Indus Valley.

□

भारत का इतिहास

परिचय

भारत का इतिहास इतना प्राचीन है कि उसका काल निर्धारण सरल नहीं है। भारत में धर्म, दर्शन, कला, शिल्प, स्वास्थ्य विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि का उद्गम देवताओं द्वारा माना जाता है, जिनकी कथाएँ धार्मिक ग्रन्थों में विस्तार से दी गयी हैं। रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य भी भारत में ऐतिहासिक ग्रन्थ मान लिये गये हैं। धार्मिक विश्वास को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

इस वैज्ञानिक युग में किसी बात को सिद्ध करने के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है, विश्वास की नहीं। इसी कारण आज के वैज्ञानिक युग में भारत का प्रामाणिक इतिहास ईसा पूर्व की लगभग छठीं शताब्दी से माना जाता है। इस युग को इतिहासकारों ने 'क्रान्ति का युग' माना है, जिसने संसार के सभी मुख्य देशों को प्रभावित किया।

क्रान्ति युग

शनैः शनैः परिवर्तन को विकास परन्तु शीघ्र परिवर्तन को क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है। इस युग में तीनों प्रकार की — धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक — क्रान्तियाँ हुईं। उदाहरणार्थ :—

१. ग्रीस में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आन्दोलन हुए। कृषकों तथा श्रमजीवियों पर सामन्तों के अत्याचार इतने बढ़े कि उनके विरुद्ध क्रान्ति आरम्भ हुई, जिसके फलस्वरूप साम्राज्यवाद का उन्मूलन हुआ और लोकतन्त्र की स्थापना हुई। इस क्रान्ति का नेता हिरेक्लीटस (Heraclitus) था।

२. इसी ई० पू० की छठीं शताब्दी में ईरान में भी एक धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति हुई। मागी – पुजारियों ने कर्मकाण्ड (बलि, यज्ञ आदि) व मूर्ति पूजा आदि के द्वारा जनसाधारण का शोषण आरम्भ कर दिया। दुःखी जनता और दुःखी होने लगी। इस कर्मकाण्ड के विरुद्ध एक धर्म-प्रवर्तक व सुधारक ज़ारथूस्त्र (Zoroaster) ने आन्दोलन किया तथा अनेकेश्वरवाद के स्थान पर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। सत्य, ज्ञान व न्याय को प्रधानता दी।

३. चीन में भी राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक क्रान्ति सामन्तों के अन्याय के विरुद्ध की गयी जिसके नेता लाउत्सी तथा, कनफ़्यूशस थे जिन्होंने नैतिकता को प्रधान बताकर मानव को अच्छे कर्मों की ओर प्रेरित किया।

४. भारत में धार्मिक कर्म काण्ड के कारण जनता दुःखी थी। जीवन – मरण के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए अर्थात् मोक्ष (भारतीय दर्शन की आधार शिला) को प्राप्त करने के लिए कर्मकाण्डों को सम्पन्न करवाना। इसके लिए पुजारी नियुक्त थे। अब रीतियों के स्थान पर कुरीतियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इन परिस्थितियों में दो राजवंशों से दो राजकुमार, दो धर्मों के प्रवर्तक बन कर आये। एक महात्मा

बुद्ध हुए तथा दूसरे महावीर तीर्थंकर हुए। दोनों ने ही उस पुजारीवाद को मिटाने के लिए भगवान के अस्तित्व को भी नहीं माना। अच्छे कर्मों की प्रधानता पर बल दिया तथा प्रचार किया।

मौर्य वंश

चन्द्रगुप्त का जन्म ३४५ ई० पू० में मगध में ही हुआ। बड़े होने पर उसने राजा नन्द के यहाँ नौकरी कर ली और एक दिन वह सेनापति के पद पर पहुँच गया; परन्तु पदच्युत कर दिया गया। उधर चाणक्य भी राजा नन्द का विरोधी था। चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य एक लक्ष्य होने के कारण मिल गये तथा सहयोगी बन गये। चन्द्रगुप्त ने कुछ सैनिक जमा करके मगध राज्य के कुछ भू – भागों पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् मगध को भी परास्त कर एक साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त का २९८ ई० पू० में स्वर्गवास हो गया। बिम्बसार सिंहासनारूढ़ हुआ और २७३ में परलोक सिधार गया।

अशोक उस समय उज्जैन का सूबेदार था। चार वर्ष के संघर्ष के पश्चात् २६९ ई० पू० में उसका राज्याभिषेक हुआ। उसने अपने राज्य का विस्तार कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। इसके लिए बड़ा नरसंहार हुआ। कलिंग के युद्ध ने तो अशोक के जीवन को ही परिवर्तित कर दिया। वह बौद्ध हो गया। भारत का वह प्रथम सम्राट था, जिसने शिलालेखों की नींव डाली, जिनके कारण आज प्राचीन काल का वृत्तान्त मिलता है। यदि शिलाएँ उत्कीर्ण न करवायी जातीं तो आज की पीढ़ी को ब्राह्मी देखने को न मिलती। सम्भव है यह पद्धति अशोक ने ईरान व मिस्र के देशों द्वारा अपनायी हो। उसने नैतिक उत्थान तथा कीर्ति के लिए कई स्तम्भ भी स्थापित करवाये। बौद्ध होने के कारण इस काल के शिला एवं स्तम्भ – लेख पाली-प्राकृत में ही मिलते हैं, जो संस्कृत[1] से विकसित की गयीं। २३२ ई० पू० में अशोक का स्वर्गवास हो गया।

शुंग वंश

मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ, जो १८७ ई० पू० में राजसिंहासन पर बैठा तथा सेनाध्यक्ष पुष्यमित्र शुंग ने अपने सम्राट की १८० ई० पू० में हत्या कर दी और मगध का सिंहासन प्राप्त कर लिया। इसने साम्राज्य का संगठन आरम्भ कर दिया। राज्य विद्रोहियों को दण्ड दिया तथा इधर उधर आक्रमण करके कई राजाओं को नतमस्तक करवाया। यह ब्राह्मण-धर्म का कट्टर पालक था। इसने उसी धर्म को प्रोत्साहित किया तथा बौद्धों का दमन किया, विहारों को जलवाया तथा श्रमणों का वध करवाया। १४८ ई० पू० में इसका स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् इस वंश में ९ और शासक हुए, जिन्होंने ८० वर्ष राज्य किया तथा कई स्तूपों का निर्माण किया।

काण्व वंश

शुंग वंश का अंतिम नरेश देवभूति ७८ ई० पू० में सिंहासन पर बैठा। विलासी और लम्पट होने के कारण ६८ ई० पू० में अपने अमात्य वसुदेव काण्व द्वारा मारा गया। इसी ने काण्व वंश की नींव डाली, जिसमें चार राजा हुए। इसके अंतिम राजा सुशर्मा की २७ ई० पू० में, इसके एक आन्ध्र – वंशी सेवक सिमुक ने, हत्या कर दी तथा स्वयं राजा बन गया। इसी ने आन्ध्र के सातवाहन वंश की नींव डाली।

1. कुछ विद्वानों का मत है कि प्राकृत से संस्कृत भाषा का उद्भव हुआ।

आन्ध्र सातवाहन वंश

आन्ध्र राज्य मौर्य साम्राज्य का प्रांत था, परन्तु जब यह साम्राज्य पतनोन्मुख होने लगा तो आन्ध्र भी स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगा। सिमुक (शिशुक या सिंधुक) ने सिंहासन पर बैठ कर साम्राज्य का पुनर्गठन किया। इस वंश में कई प्रतापी राजा हुए, जिन्होंने राज्य का विस्तार किया और कई राज्यों को नतमस्तक किया। इस वंश का अंतिम प्रतापी राजा यज्ञ श्री शातकर्णि था (१६५ से १९४ ई० तक)। इसके बाद नाममात्र के शासक हुए, जो इस साम्राज्य के अध:पतन को रोक न सके और २२७ ई० में इस वंश का अंत हो गया। इसका अंतिम नरेश पुलोमावि तृतीय था।

शक वंश

शक एक पर्यटन – शील जाति थी जो मूलतः दक्षिण – पश्चिम चीन की निवासी थी। वह अन्य जातियों से संघर्ष करती हुई सिन्ध प्रदेश, जिसका नाम शकद्वीप था (आधुनिक पाकिस्तान), में पहुँची और अपने राज्य एवं वंश की स्थापना की। ११५ ई० पू० के पश्चात् इस वंश के शासकों ने मथुरा व विदिशा तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। दूर दूर शासन करने के लिए क्षत्रप नियुक्त किये। इस वंश का प्रथम नरेश मोअ (मौएस) था तथा अंतिम शासक अय द्वितीय था, जिसको पह्लव नरेश गुदफ़र्न ने परास्त कर दिया।

पह्लव वंश

पह्लव लोग ईरान के पार्थिया प्रदेश के निवासी थे। उन्होंने अंतिम यवन राजा हर्मियस से काबुल घाटी को तथा अंतिम शक राजा अय द्वितीय से पंजाब को जीत लिया। इस वश का संस्थापक विन्दफ़र्न था तथा अंतिम राजा गुदफ़र्न था। इसने सेण्ट टॉमस द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। गुदफ़र्न की मृत्यु ईसा की प्रथम श० के मध्य में हो गई।

कुषाण वंश

चीन के फ़ान्सू प्रदेश में यूची नामक एक जाति रहती थी। १६५ ई० पू० में एक पड़ोसी जाति हूण के विरोध के कारण युची जाति ने स्थानांतर कर लिया। इसने शकों से सर दरिया की घाटी छीन ली। पुन. युद्ध होने के कारण युची जाति के लोगों ने बैक्ट्रिया को अपने अधीन कर लिया। इस जाति के पाँच कुल थे, जिनमें से एक का नाम कुइशांग अथवा कुषाण था। इस कुषाण जाति का एक नेता कुजूल कदफ़िस था, जिसने अन्य चार शाखाओं पर अपना आधिपत्य जमा लिया और प्रथम नरेश बन बैठा। इसने गदफ़र्न की मृत्यु के पश्चात् काबुल व गान्धार जीत लिया और राज्य का विस्तार किया। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा कनिष्क था, जिसने ७८ ई० से १०२ ई० तक राज्य किया। बौद्ध धर्म को ग्रहण किया। इसने अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया (फ.० ० – २९)। दो राजधानियां रखीं। एक पुष्पपुर (आ० पेशावर) तथा दूसरी मथुरा। अपनी युद्धप्रियता के कारण कुछ मन्त्रियों ने इसका वध उस समय करवा डाला, जब वह रोग शय्या पर पड़ा था। इस वंश का अंतिम नरेश हुविष्क का पुत्र वासुदेव राजसिंहासन पर बैठा। सम्भवत: इसकी मृत्यु १७५[1] ई० में हुई। तत्पश्चात् कुषाण साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत पुनः अनेक छोटे बड़े राज्यों में विभाजित हो गया।

1. कुछ विद्वान् १६५ ईसवी मानते हैं।

कुषाण साम्राज्य
ईसा की दूसरी श०
खोतान
कपीक
गान्धार
कश्मीर
पुरुषपुर
तक्षशिला
मेरठ
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
मरु
सिन्ध पश्चिमी
क्षत्रप
अवन्ती
उज्जैन
साँची
सारनाथ
पाटलिपुत्र
काशी
मगध
ब्रह्मपुत्र नदी
सौराष्ट्र
जूनागढ़
नर्मदा नदी
ताप्ती नदी
आन्ध्र
राज्य
महानदी
कलिंग
बंगाल की
खाड़ी
कृष्णा नदी
कावेरी नदी
चोल
अरब सागर
संकेत:-
कुषाण साम्राज्य
आन्ध्र राज्य
पश्चिमी क्षत्रप

फलक संख्या – २९
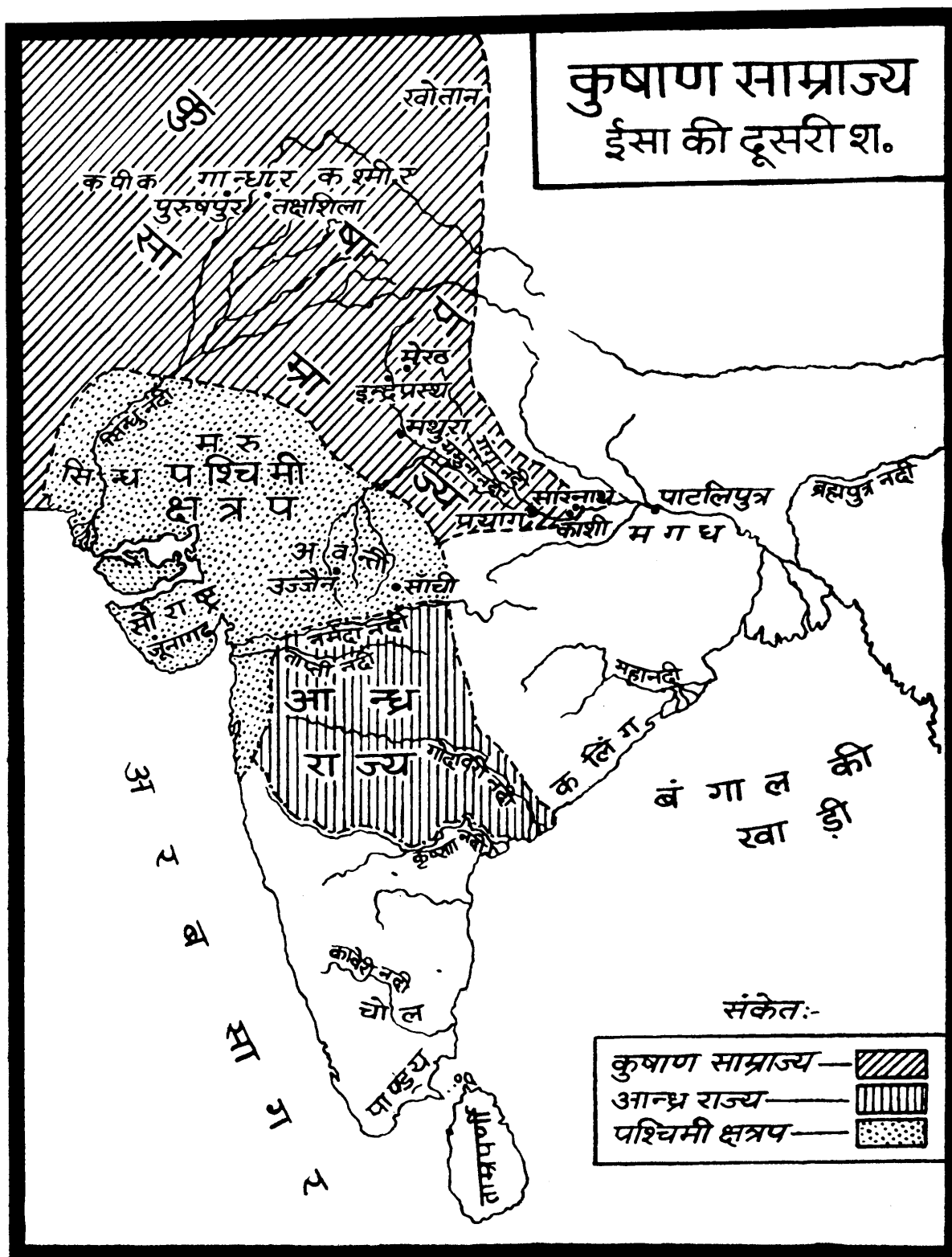
गुप्त वंश

इस वंश का प्रथम नरेश तथा संस्थापक श्रीगुप्त था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। इसने २७५ से ३०० ई०[1] तक राज्य किया। श्रीगुप्त का पौत्र चन्द्रगुप्त सामाज्य का वास्तविक संस्थापक था। इसके मरणोपरांत समुद्रगुप्त राजसिंहासनारूढ़ हुआ। इसने ३२५ से ३७५ ई० तक राज्य किया। तदनन्तर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य राजगद्दी पर बैठा। इसने शक नरेशों को परास्त कर पश्चिमी भारत के राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया (फ० सं० – ३०)। इसी के राज्य काल में विश्व विख्यात कवि कालिदास हुआ तथा चीनीं यात्री फ़ाह्यान भारत आया और उसने भारत की दशा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अनेक मूल्यों को स्वर्ण – मुद्रायें प्रचलित कीं। इसने ३७५ से ४२५ तक शासन किया। तदनन्तर कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि ने राज्य किया। स्कन्दगुप्त ने राज्य का विस्तार किया तथा हूणों से युद्ध किया। इस साम्राज्य का अतिम सम्राट विष्णुगुप्त था। विदेशीय आक्रमण, प्रान्तीय शासकों के विद्रोह तथा राज्यपरिवार के झगड़ों ने इस विशाल साम्राज्य का ५७० ई० से पतन होने लगा। इसके पश्चात् सम्भव है नाम मात्र को रहा हो परन्तु साम्राज्य की सत्ता समाप्त हो चुकी थी।

मैत्रक वंश

गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने पर सौराष्ट्र में सेनापति भटार्क द्वारा, जो पांचवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में गुप्त सम्राट की ओर से वलभी का नियन्ता नियुक्त हुआ था, मैत्रक वंश की स्थापना हुई। इस वंश का प्रथम स्वतंत्र नरेश सम्भवतः गुहसेन था जिसने ५५६ से ५६७ ई० तक शासन किया। ध्रुवसेन द्वितीय सम्राट हर्षवर्धन का समकालीन था। इस वंश का दूसरा नाम वलभी भी था।

गुर्जर वंश

कुछ विद्वानों के अनुसार गुर्जर लोग विदेशी थे जो छठी श० में भारत आये। आधुनिक गुर्जर इन्हीं के वंशज हैं। सर्व प्रथम ये लोग पंजाब से आकर बस गये जहाँ अब भी गुजरानवाला, गुजरात और गूजर खां नामक स्थान पाये जाते हैं तदनन्तर दक्षिण पश्चिम में जाकर बसे जिसके कारण वह भूभाग गुजरात कहलाने लगा। इस वंश का संस्थापक हरिचन्द्र ब्राह्मण था। इसकी पत्नी गुर्जर थी इस कारण उससे उत्पन्न वंशज गुर्जर प्रतिहार कहलाये। इनकी राजधानी माण्डव्यपुर (आ० मण्डौर, जोधपुर से पाँच मील उत्तर की ओर) थी।

गुहिलोत वंश

गुप्त वंश के पतन के पश्चात् मेवाड़ प्रदेश में गुहदत्त ने एक नये वंश की स्थापना की। इस वंश के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

मौखरि वंश

यह वंश बहुत प्राचीन है। पाणिनी ने इसका उल्लेख किया है। गुप्त काल के अन्त में मौखरि वंश अधिक प्रकाश में आया। इस वंश का नाम किसी 'मुखर' नाम के पूर्वज पर पड़ा। इस वंश की सबसे प्रसिद्ध

1. इन तिथियों के प्रमाण नहीं मिलते इस कारण मतभेद होता है।

चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य का साम्राज्य
३७६से ४१४ई० तक
पुरुषपुर
तक्षशिला
थानेश्वर
इन्द्रप्रस्थ
कन्नौज
नेपाल
अयोध्या
वैशाली
कामरूप
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
उज्जयिनी
सांची
वलभी
वाकाटक
महेन्द्रगिरि
पिष्टपुर
अमरावती
कांची

फलक संख्या – ३०

शाखा कन्नौज की थी। इस वंश के तीन राजा गुप्त नरेशों के अधीनस्थ थे परन्तु चौथे राजा ईशान वर्मा ने स्वतत्रता प्राप्त कर के महाराजाधिराज का पद धारण किया। ५५४ ई० में यह वर्तमान था। इस वंश का अंतिम राजा ग्रहवर्मा था जो मालव नरेश देवगुप्त द्वारा मारा गया।

वर्धन वंश

बाण के हर्ष चरित के अनुसार पुष्यभूति नामक राजा ने श्रीकण्ठ जनपद में एक राज्य की स्थापना की जिसकी राजधानी सरस्वती नदी के पास स्थानेश्वर (आ० थानेश्वर) नामक नगर थी। अभिलेखों से अनेक राजाओं के नाम मिलते हैं जिनके अन्त में 'वर्धन' शब्द भी मिलता है। सम्भवतः इसी कारण इस वंश का नाम वर्धन वंश पड़ा। इसका पहला महाराजा नरवर्धन आठवीं शताब्दी के आरम्भ में थानेश्वर का राजा था।

इस वंश के एक प्रतापी राजा प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन थे और एक पुत्री राज्यश्री थी। दोनों भाई हूणों के आक्रमण को दमन करने गये तो पिता की मृत्यु हो गई। हर्षवर्धन शीघ्र लौट आया। इसके पश्चात् दोनों भाइयों को समाचार मिला कि मालव नरेश देवगुप्त ने उनके बहनोई ग्रहवर्मा को मार डाला और बहन को कारागार में डाल दिया है। पिता के शोक को साथ लेकर वे दोनों भाई निकल पड़े। बड़े भाई राज्यवर्धन का धोखे से शशांक ने वध कर दिया। हर्षवर्धन अपनी बहन की खोज में निकल गया और उस समय उसको अपनी बहन मिली जब वह चिता में जाकर अपने शरीर का अंत करने जा रही थी।

इसका बहनोई ग्रहवर्मा कन्नोज का राजा था। इसके कोई पुत्र न था। इस कारण हर्ष को ही कन्नौज राज्य का मुकुट धारण करना पड़ा। १८ वर्ष की आयु में ६०६ ई० में यह राजसिंहासनारूढ़ हुआ। इसने अपनी विजय पताका प्रत्येक दिशा में फहराई। इसने नर्मदा तक अपने साम्राज्य (फ० सं० – ३१) को स्थापित किया। हर्ष, शिव, सूर्य तथा बुद्ध तीनों का उपासक था। राज्य में उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता थी। ६४८ में इस प्रभावशाली उदार शासक का परलोकवास हो गया। पुत्र तथा उत्तराधिकारी न होने के कारण राज्य छिन्न भिन्न हो गया और नये नये राज्यों का निर्माण होने लगा।

उत्तर भारत के राजपूत वंश

राजपूतों के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। उनकी उत्पत्ति मिश्रित क्षत्रियों से मानी जाती है। उनके मुख्य राजनैतिक वंश निम्नलिखित हैं :–

१. **प्रतिहार वंश** : इस वंश का संस्थापक राजा नागभट्ट प्रथम (७३० से ७५६ तक) था जिसने जोधपुर को राजधानी बनाया परन्तु नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज के राजा चक्रायुद्ध को ८०७ ई० में परास्त कर उसको अपनी राजधानी बनाया। यशपाल इस वंश का अंतिम नरेश था जो १०८५ में एक आक्रमण में मारा गया (फ० सं० – ३२)।

२. **गहड़वाल वंश** : इसबंश का संस्थापक चन्द्रदेव था जिसने यशपाल को परास्त कर दिया और वाराणसी से अपनी राजधानी कन्नौज बना ली। इस वंश ने कई युद्ध किये। इस वंश का मुख्य राजा जयचन्द्र ११९४ में मुहम्मद गोरी द्वारा मारा गया। १२२५ में इस वंश का अंतिम राजा हरिश्चन्द्र अलतमश द्वारा मारा गया।

हर्ष वर्धन का साम्राज्य
६०६ से ६४६ ई. तक
कश्मीर
नेपाल
गुर्जर
सिंधु
प्रयाग
उज्जैन
सांची
काशी
पाटलिपुत्र
वैशाली
वलभी
चालुक्य
कलिंग
पल्लव
वातापी
कांची
चोल
पांड्य
सिंहल

फलक संख्या – ३१

३. चौहान वंश : इस वंश का संस्थापक वासुदेव था इसने एक राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी शाकम्भरी (साँभर) थी। इस वंश के प्रारम्भिक राजा प्रतिहारों के सामन्त थे। तदनन्तर यह अपनी शक्ति बढ़ाते रहे तथा राज्य का विस्तार करते रहे। ११५३ में विग्रहराज चतुर्थ सिंहासन पर बैठा। उसने दिल्ली के तोमर नरेश को हराकर दिल्ली का राज्य ले लिया। ११७७ में सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज तृतीय गद्दी पर बैठा। यह इस वंश का सर्व महान् राजा था। ११९१ में गोरी हार गया परन्तु अगले वर्ष उसने पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बना लिया।

४. पाल वंश : ७५० ई० में बंगाल की जनता ने एक वीर युवक गोपाल को राजा चुन लिया जो इस वंश का संस्थापक हो गया। इसका अंतिम शासक रामपाल था। बाद में कुछ शासक नाममात्र को बने जो पतन को न रोक सके।

५. सेन वंश : सेन मूलतः मैसूर निवासी थे। इसकी नींव सामान्त सेन ने डाली। इसके उत्तराधिकार १२६० ई० तक बंगाल में शासन करते रहे।

६. कलचुरी वंश : इस वंश का दूसरा नाम हैहय वंश था। इसकी नींव ८७५ में कोवकल्ल ने डाली जो सम्भवतः जबलपुर के आसपास राज्य करता था। उसकी राजधानी त्रिपुरी थी। इसका अन्तिम नाम मात्र नरेश गयाकर्ण चंदेल नरेश मदन वर्मा से युद्ध में हार गया और अपना राज्य खो बैठा।

७. चन्देल वंश : इस वंश का संस्थापक नन्नुक अथवा नन्तुक था तथा प्रथम प्रभावशाली राजा यशोवर्मन था। इसकी राजधानी खर्जुर वाहक (आधु० खजुराहो) थी। ९२५ से ९५० तक राज्य किया। इसके पुत्र धंग ने खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण किया। परमार्दी अथवा परमल इस वंश का अंतिम राजा था। १२०३ में इस वंश का अन्त कुतुबुद्दीन ऐबक ने कर दिया परन्तु बुन्देलखण्ड में इस वंश के राजा सोलहवीं शताब्दी तक राज्य करते रहे।

८. परमार वंश : इस वंश का संस्थापक कृष्णराज (उपेन्द्र) था जिसने नवीं शताब्दी के आरम्भ में आबू पर्वत के निकट मालवा में अपना राज्य स्थापित किया। यह राजा राष्ट्रकूट नरेशों का सामन्त था। राजा सीयक द्वितीय, जिसको हर्ष भी कहते थे, इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। इस वंश का अंतिम नरेश नरवर्मा का पुत्र यशोवर्मा ११३३ में राजगद्दी पर बैठा परन्तु सिद्धराज जयसिंह ने उसको वन्दी वना लिया।

९. सोलंकी वंश : इस वंश को चौलुक्य वंश भी कहते थे। इसके संस्थापक मूलराज ने अपने मामा के कुल का अन्त करके ९४१ में अन्हिलवाड़ में इस वंश की स्थापना की। ११९७ में ऐबक ने, इसके अन्तिमनरेश भीम द्वितीय को परास्त कर, अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार बारहवीं श० के अन्त तक राजपूतों के स्वतंत्र वंश परतंत्र होने लगे। कुछ वंश नाममात्र को बच गये।

गुर्जर - प्रतिहार वंश का साम्राज्य
ई० स० आठवीं - नवीं श०

फलक संख्या - ३२

दक्षिण भारत के वंश

जिस प्रकार उत्तर भारत में भिन्न-भिन्न वंशों ने अपने अपने राज्य स्थापित करके राज्य किया उसी प्रकार दक्षिण में भी विभिन्न वंशों ने राज्य किया, जो निम्नलिखित हैं :—

१. विष्णु कुण्डी वंश : माधव वर्मन ने ४४० ई० में इस वंश की स्थापना की। इस वंश के अंतिम नरेश माधव वर्मन द्वितीय ने ५५६ से ६१६ ई० तक शासन किया।

२. वाकाटक वंश : विंध्यशक्ति ने २५४ ई० में इस वंश की नींव डाली। बरार इसकी राजधानी थी। प्रवर सेन प्रथम के बाद वाकाटक साम्राज्य बँट गया। इसके एक पुत्र सर्व सेन ने अकोला जिले के एक ग्राम में, जिसका प्राचीन नाम वत्सगुल्म था, एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। इस वंश में भी कई नरेश हुये। दोनों शाखाओं के संघर्ष के फलस्वरूप छठी शताब्दी के आरम्भ में वाकाटकों की शक्ति का सर्वथा लोप हो गया।

३. पल्लव वंश : पल्लवों का मूल विवादग्रस्त है। सातवाहनों के पतन के पश्चात् तृतीय शताब्दी के अन्त में स्वतंत्र रूप से स्थापित हुआ। इस वंश का प्रथम राजा सिंह वर्मा था। इसकी राजधानी कांची थी। ५७४ ई० में सिंह वर्मा तृतीय का पुत्र सिंह विष्णु कांची के पल्लव सिंहासन पर बैठा। ऐतिहासिक दृष्टि से पल्लव के राजवंश का यही संस्थापक था। पाण्ड्य नरेशों से इस वंश के साथ युद्ध होते रहते थे। पल्लव वंश के अंतिम शासक अपराजित वर्मा ने पाण्ड्यों की शक्ति नष्ट की। इसका लाभ सुदूर दक्षिण के अन्य राज्यों ने उठाया और चोल नरेश आदित्य प्रथम ने अपराजित को नवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में पराजित कर पल्लव प्रदेश पर अधिकार कर लिया तदनन्तर पल्लव वंश छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो गया।

४. चालुक्य वंश : इस वंश की तीन निम्नलिखित शाखायें थीं :—

(क) **वातापी के चालुक्य :** इस वंश के प्रथम राजा जय सिंह और रणराग थे जिन्होंने बीजापुर जिले के आसपास अपना राज्य स्थापित किया। रणराग का पुत्र पुलकेशी प्रथम ५३५ ई० में गद्दी पर बैठा और उसने वातापी (आ० बादामी) को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश के शासकों ने राज्य का विस्तार करने के लिये अनेकों युद्ध किये। कीर्तिवर्मा इस वंश का अन्तिम महान् शासक था। इसके मरणोपरांत यह राज्य क्षीण होने लगा और आठवीं शताब्दी के मध्य में राष्ट्रकूट वंशीय दन्तिदुर्ग ने उनपर आक्रमण कर पराजित कर दिया।

(ख) **कल्याणी के चालुक्य :** वातापी चालुक्य के एक वंशज तैलप ने राष्ट्रकूट नरेश कर्क द्वितीय को पराजित कर, चालुक्य राज्य की पुनः स्थापना की। इसने ९७३ से ९९७ ई० तक राज्य किया। इसकी राजधानी कल्याणी[1] हो गई थी। इस वंश ने भी अनेक युद्ध किये। इस वंश का अन्तिम नरेश सोमेश्वर चतुर्थ था। ११८९ ई० में यादव भिल्लम ने इसको परास्त कर दिया और वंश का अन्त कर दिया।

1. १०२८ के अभिलेखों से पता चलता है।

(ग) **वेंगी के चालुक्य** : दक्षिणापथ के अन्य छोटे छोटे राज्यों में से एक वेंगी का राज्य भी था जो आन्ध्र देश में स्थित था। इस वंश का मूल पुरुष चालुक्य सम्राट पुलकेशी द्वितीय का भाई कुब्ज विष्णुवर्धन था। १०६० ई० में राजराज नरेश के भाई विजयादित्य ने राज राज से गद्दी छीन ली। राजराज का पुत्र १०७० ई० में कुलोत्तुंग नाम से चोल देश का राजा हो गया। उसी ने अपने चाचा विजयादित्य से राज्य छीन कर चोल राज्य में मिला लिया। इस प्रकार इस वंश का अन्त हो गया।

५. राष्ट्रकूट वंश : इनका मूल निवास स्थान कर्णाटक था। ६२५ के लगभग ये बरार की एलिचपुर नामक बस्ती में आकर चालुक्य नरेशों के सामन्तों के रूप में रहने लगे। इस कुल का सर्वप्रथम नरेश दन्ति वर्मा था परन्तु राष्ट्रकूट साम्राज्य की नींव डालने वाला दन्तिदुर्ग था। इसने ७५२ से ७५६[1] ई० तक राज्य किया। ९६५ में कृष्ण इस वंश का अन्तिम महान् नरेश था। उसने पूर्ण दक्षिणापथ पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। इस वंश का अन्तिम राजा कर्क द्वितीय था। ९७३ में इस राज्य के एक सामन्त तैलप ने उसको हरा कर दक्षिणापथ पर कब्जा कर लिया।

६. चोल वंश : चोल राज्य बहुत प्राचीन राज्य था। इसका उल्लेख रामायण, महाभारत तथा अशोक के अभिलेखों में मिलता है। सम्भवतः ८५७ ई० में विजयालय नामक चोल राजकुमार ने पल्लव नरेश के सामन्त के रूप में उरैयुर के निकट शासन आरम्भ किया। इसने तंजावूर (तंजौर) को जीत कर उसको अपनी राजधानी बनाया। इस वंश के नरेशों ने अपने राज्य का विस्तार कर विशाल साम्राज्य का रूप दिया। इस वंश का अन्तिम नरेश राजेन्द्र तृतीय १२४६ई० में गद्दी पर बैठा। जटावर्मा सुन्दर पाण्ड्य ने इसको परास्त कर दिया और १२८९ तक राजेन्द्र ने सामन्त के रूप में राज्य किया। राजेन्द्र के मरणोपरान्त चोल राज्य पाण्ड्य साम्राज्य में मिला लिया गया।

७. पाण्ड्य वंश : यह वंश भी बहुत प्राचीन है तथापि उसका क्रमबद्ध इतिहास सातवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता। कडुंगोन ने कलभ्रों को पराजित कर पाण्ड्य राजवंश की नींव लगभग सातवीं श० के आरम्भ में डाली। इसकी राजधानी मधुरा अथवा मदुरा (मथुरा के नाम पर) थी। इस वंश के शासकों का चालुक्य तथा पल्लव वंशों के नरेशों से निरन्तर युद्ध होता रहा। इस वंश का अन्तिम शक्तिशाली राजा मार वर्मा था जिसने १२६८ से १३१० ई० तक राज्य किया। इसी के काल में वेनिस – यात्री मार्को पोलो यहाँ आया था। उसके पुत्रों में इतनी कलह हो गयी कि अलाउद्दीन खिलजी के सेना नायक मलिक काफ़ूर ने मदुरा पर आक्रमण करके सारी सम्पत्ति लूट ली और राज्य का अन्त कर दिया।

८. गंग वंश : छठी शताब्दी के मध्य गंगावड़ी के सिंहासन पर बैठ कर सम्भवतः दुर्विनीत ने इस वंश की नींव डाली। उसने कई युद्ध किये और राज्य का विस्तार किया। इस राज वंश का अन्तिम नरेश शिवमार प्रथम था। यह वंश कर्णाटक का था। छठी शताब्दी में इसी वंश के इन्द्रवर्मा ने कलिंग देश में गंग वंश की स्थापना की और कलिंग नगर को

1. तिथियों के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं।

राजधानी बनाया। १०७८ ई० में अनन्त वर्मा चोड गंग ने राजमुकुट धारण किया। इस वंश का अन्तिम नरेश अनंग भीम का पुत्र नरसिंह था जिसको १२५५ में बंगाल के शासक ने पराजित कर दिया। इसके एक नरेश अनन्त वर्मा ने ११४५ में पुरी का मन्दिर बनवाया तथा नरसिंह ने कोणार्क का सूर्य मन्दिर बनवाया।

९. कदम्ब वंश : कर्णाटक अथवा मैसूर का उत्तरी भाग प्राचीन काल में कुन्तल कहलाता था। इस वंश की स्थापना मयूर शर्मा नामक एक ब्राह्मण ने की। वैजयन्ती अथवा बनवासी को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश का नाम उस कदम्ब के वृक्ष के नाम से पड़ा जो मयूर शर्मा के पैतृक भवन के समक्ष खड़ा था। इसका अन्तिम नरेश हरि वर्मा था जिसके एक सामन्त पुलकेशी ने स्वतन्त्र होकर चालुक्य वंश की नींव डाली।

१० यादव वंश : इस वंश का संस्थापक भिल्लम यादव था जिसने चालुक्य नरेश सोमेश्वर चतुर्थ को ११८९ में हरा कर एक नया राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी देवगिरि थी। रामचन्द्र इस वंश का अन्तिम नरेश था। मलिक काफ़ूर ने इसके पुत्र को मार कर इस वंश का अन्त कर दिया। इसी काल में सन्त ज्ञानेश्वर ने भगवद् गीता पर अपनी प्रसिद्ध मराठी टीका लिखी।

११. काकतीय वंश : काकतीय पहले चालुक्यों के सामन्त थे। परन्तु उनके पतन के बाद तेलंगाने के स्वतन्त्र शासक हो गये। इस वंश का संस्थापक बेट्टा प्रथम था। इस वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक गणपति ११९८ में राजगद्दी पर बैठा। उसने शनैः शनैः गोदावरी ज़िले से कांचीपुरम् तक का भूभाग अपने अधीन कर लिया। इसकी राजधानी हनमकोण्डा (वारंगल) थी। इस वंश का अन्तिम शासक प्रताप रुद्र द्वितीय था।

मुसलमानों का आगमन

७११ ई० में सर्वप्रथम आक्रमण १७ वर्षीय मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध पर किया परन्तु राज्य स्थायी न रख सका वह ख़लीफ़ा द्वारा वापस बुला लिया गया।

गज़नी वंश : इस वंश के शासक सुबुक्तगीन ने जयपाल को ९९१ में हराकर पेशावर पर अधिकार कर लिया। ९९७ में महमूद ग़ज़नवी गज़नी के सिंहासम पर बैठा। इसने भारत पर लगभग १७ बार आक्रमण किये और लूट का माल अपने देश ले गया। इस वंश के अंतिम शासक बहराम शाह की मृत्यु के पश्चात् ११५२ ई० में तुर्कों ने ले लिया।

ग़ोर वंश : इस वंश का प्रथम शक्तिशाली व्यक्ति सैफ़ुद्दीन था। ग़ोर एक छोटासा राज्य गज़नी के पश्चिम उत्तर में स्थित था जिसमें सूर जाति के अफ़गान रहते थे। ११७३ में गज़नी पर इनका अधिकार हो गया और मुइजुद्दीन अर्थात गोहम्मद ग़ोरी इसका प्रथम शासक बना। इसने भारत पर कई विध्वंसक आक्रमण किये। १२०६ में ग़ोरी की मृत्यु के साथ इस वंश का भी अन्त हो गया। ग़यासुद्दीन नाममात्र का उत्तरा – धिकारी था।

दास वंश : कुतुबुद्दीन ऐबक जो मोहम्मद ग़ोरी का प्रांतपति था अब दास वंश का प्रथम संस्थापक तथा भारत का प्रथम सुल्तान बन गया। इस वंश में कुल दस शासक हुये। इस वंश का अंतिम अल्प वयस्क शासक कैमूर्स को १२९० में उसके संरक्षक जलालुद्दीन ने कारागार में डाल कर वह स्वयं सुल्तान बन गया।

अकबर का साम्राज्य
१५५६ से १६०६ ई० तक
काबुल
कन्दहार
लाहौर
मुलतान
पानीपत
दिल्ली
राजपूत
राज्य
आगरा
अजमेर
ग्वालियर
इलाहाबाद
पटना
बंगाल
ब्रह्मपुत्र नदी
मालवा
गुजरात
नर्मदा नदी
खान्देश
गंडवाना
महानदी
दियू
दमन
बेरार
अहमदनगर
गोदावरी
गोलकुंडा
बंगाल की
खाड़ी
बीजापुर
कृष्णा नदी
गोआ
विजयनगर
राज्य
कालीकट
कावेरी नदी
कोचीन
अरब सागर
पुर्तगाली कोठियाँ
१ गोआ २ दमन ३ दियू
४ कालीकट ५ कोचीन
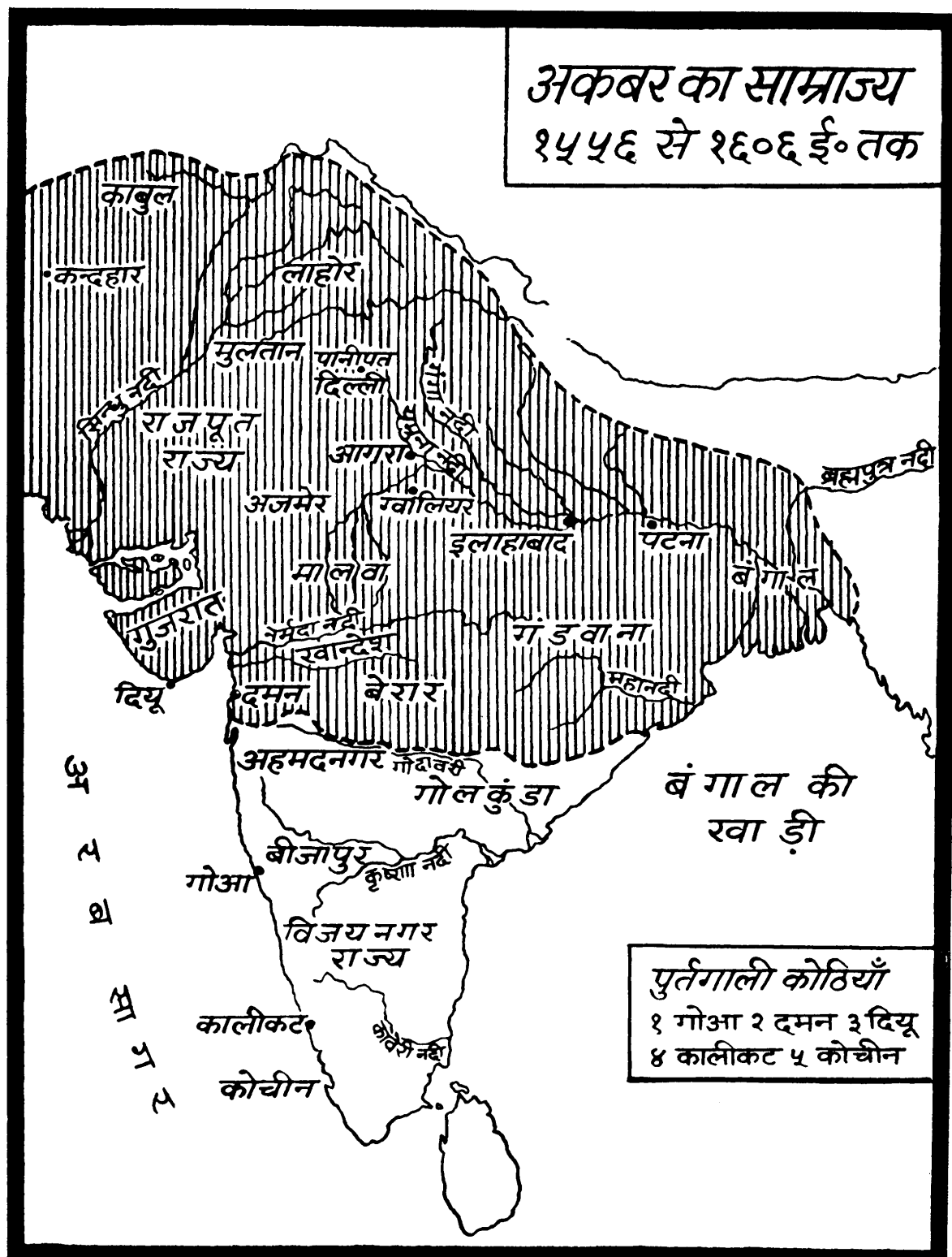
फलक संख्या – ३२

खिलजी वंश : इसका संस्थापक जलालुद्दीन खिलजी था जो १२९० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके भतीजे व दामाद अलाउद्दीन ने विश्वासघात करके जलालुद्दीन का वध करवाकर स्वयं १२९६ में दिल्ली का सुल्तान बन गया। उसने लगभग सारे भारत को अपने अधीन कर लिया। इस वंश का अन्तिम शासक मुबारक खिलजी था जो खुसरो द्वारा मारा गया। अंत में खुसरो को १३२० में ग़ाज़ी तुग़लक ने परास्त किया।

तुग़लक वंश : इस वंश का संस्थापक गाज़ी तुग़लक था जो गयासुद्दीन तुग़लक के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। इस वंश का प्रसिद्ध व्यक्ति जूना खां १३२५ में मोहम्मद तुग़लक के नाम से सुल्तान बना। इसकी महान् योजनाओं के सफल न होने के कारण जनता में असंतोष फैला। इसके कारण यह सुल्तान अपयश का भागी बना। इस वंश का अंतिम सुल्तान महमूद शाह था। १४१३ में इसकी मृत्यु के साथ वंश का भी अन्त हो गया।

सैयद वंश : १३९८ में तैमूर ने ९० हज़ार सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण किया और कई प्रदेशों को परास्त करता हुआ दिल्ली पहुंचा। तैमूर बहुत सा धन लेकर वापस चला गया और खिज्र खाँ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर गया। दिल्ली का सुल्तान महमूद शाह भाग गया। ख़िज्र खां १४१४ में दिल्ली का सुल्तान तथा सैयद वंश का संस्थापक बन गया। इस वंश के अंतिम सुल्तान अलाउद्दीन आलम शाह के वज़ीर हमीद ख़ां ने उसके जीवन में ही बहलोल लोदी को १४५१ में दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया। सुल्तान शान्तिमय जीवन बिताने बदायुं चला गया।

लोदी वंश : बहलोल लोदी, जो सरहिन्द का स्वतंत्र गवर्नर था, इस वंश का संस्थापक तथा प्रथम सुल्तान बना। इस वंश के अंतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी को बाबर ने १५२६ के युद्ध में परास्त किया। वह लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुआ।

मुग़ल वंश : बाबर का जन्म का नाम ज़हीरुद्दीन मुहम्मद था। इसका पिता तुर्क तथा माता मंगोल थी। इसके आक्रमण के समय भारत छिन्न भिन्न हो रहा था। प्रातपति स्वतंत्र हो गये थे। दिल्ली का राज्य एक प्रांत बन कर रह गया था। ऐसे समय में बाबर दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। इस वंश में पन्द्रह शासक हुये जिनमें से मुख्य अकबर था। इसने सब धर्मों की एकता पर बड़ा परिश्रम किया और अपना एक 'दीन इलाहीं' धर्म चलाया। भारत को एक सूत्र में बाँध दिया। विशाल साम्राज्य का सम्राट हुआ। इसने १५५६ से १६०५ ई० तक शासन किया।

दूसरे प्रसिद्ध सम्राट शाहजहां ने अपने प्रेम की स्मृति में एक ताजमहल का निर्माण करवाया जो सारे संसार में विख्यात हुआ। इसने १६२८ से १६५९ तक राज्य किया परन्तु अपने पुत्र औरंगज़ेब द्वारा कारागार में डाल दिया गया। १६६६ में इसका स्वर्गवास हो गया। १६५९ में औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा। इसका जीवन युद्ध करने तथा विद्रोह दमन करने में ही बीता।

इस वंश का अंतिम सम्राट बहादुर शाह था जिसने १८३७ से १८५७ तक नाम मात्र राज्य किया। १८५७ की असफल क्रान्ति के पश्चात् इसको अंग्रेजों ने बन्दी बना लिया और रंगून के कारागार में डाल दिया जहाँ १८६२ में इसकी मृत्यु हो गई।

मरहठों का उत्थान

मरहठा शब्द महा + रट्ठ से बना जिसके अर्थ होते हैं। महाराष्ट्र बिगड़ कर मरहट्ठ तथा मरहठा हो गया। यह लोग सिसोदिया वंश के थे। जब अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तब यह लोग दक्षिण में आ बसे।

शाहजी का जन्म १५८४ में हुआ। बड़े होने पर इसने कई जगह नौकरी की। १६३६ में बीजापुर के सुल्तान के यहाँ नौकरी की। प्रसन्न होकर उसने पूना की जागीर देदी।

शिवाजी का जन्म १९ फरवरी १६३० को शिवनेर के दुर्ग में हुआ। बड़े होने पर मुगल बादशाह औरंगज़ेब से युद्ध चलता रहा। १६६३ में उसने शाइस्ता खाँ को मार डालन का प्रयत्न किया परन्तु बचगया। उसने बड़ी बहादुरी से मुगलों की सेना से लोहा लिया। ५ अप्रैल १६८० को उसका स्वर्गवास हो गया। शम्भा जी ने १६८० से ८९ तक राज्य किया तत्पश्चात् उसका सौतेला भाई राजाराम सिहासन पर बैठा और १७०० तक राज्य किया। १७०० से १७०७ तक उसका अल्प वयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय के नाम से ताराबाई की संरक्षकता में राज्य किया। शम्भा जी का पुत्र शाहू, औरंगज़ेब के मरणोपरांत, कारागार से मुक्त कर दिया गया और शाहू सतारा के राजसिंहासन पर बैठा दिया गया। १७५० में उसका स्वर्गवास हो गया। राज्य की शक्ति प्रधान मंत्री अथवा पेशवा के हाथों में चली गई। कुछ दिन पेशवाओं ने राज्य भी किया परन्तु बाद में मरहठा राज्य छिन्न भिन्न हो गया। उसकी जगह पर सिन्धिया, होल्कर, भोंसला तथा गायकवाड़ अपने राज्य स्थापित करने में लग गये।

सिक्ख

सिक्ख शब्द शिष्य से शिख्य तथा सिक्ख बना अर्थात् चेला। गुरु गोविन्द सिंह ने एक विशेष प्रकार की वेशभूषा बनवाई, क्योंकि धर्म - रक्षा के लिए योद्धा का वेष धारण करवाया।

इनके गुरु गुरुनानक का जन्म २५ अप्रैल १४६९ को तलबन्दी नामक स्थान पर (आधु० नानकाना – पाकिस्तान) हुआ। २७ वर्ष की आयु में नौकरी छोड़ कर वैराग्य ले लिया। इस धर्म में दस गुरु हुये। अंतिम गुरु गोविन्द सिंह का वध एक अफगान ने कर दिया।

विदेशियों का आगमन

पुर्तगालियों का आगमन : भारत में वास्कोडिगामा १४९८ मे कालीकट के उत्तर में अपने चार जहाज़ों के साथ उतरा। उसके बाद कई पुर्तगाली पदाधिकारी भारत आये और पश्चिमी किनारे पर अपना अधिकार जमाते रहे। १५३० में गोआ में उनका राज्य भी स्थापित हो गया।

अंग्रेजों का आगमन : कुछ अंग्रेज़ व्यापारियों ने मिलकर एक कम्पनी बनाई जिसका नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी था। इंगलैण्ड की रानी एलिज़ाबेथ ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने की अनुमति दे दी। १६१३ में उनको जहांगीर से सूरत में एक कोठी बनाने की अनुमति मिल गई। १६११ में मछलीपट्टम (आन्ध्र) में तथा १६५१ में हुगली (कलकत्ता) में कोठी बनाने की आज्ञा मिल गई। १६६८ में इगलैण्ड के नरेश चार्ल्स द्वितीय का विवाह पुर्तगाल की राजकुमारी कैथरीन से सम्पन्न हो गया जिसके कारण बम्बई अंग्रेज़ों को दहेज़ मे मिल गया। शनैः शनैः बम्बई, मद्रास, हुगली कम्पनी के मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन गये। एक नई कम्पनी को भी व्यापार करने की अनुमति मिल गई। १७०९ में यह दोनों कम्पनियां मिल गईं।

फ्रांसीसियों का आगमन : १६६८ में यह लोग सूरत आये, कोठी बनाई। फिर पाण्डीचेरी में पैर जमा लिये। तत्पश्चात् इनकी नीति बदल गई। राज्य स्थापित करना दृष्टिकोण बन गया। इसके फलस्वरूप फ्रांसी – सियों व अंग्रेजों में संघर्ष आरम्भ हो गये। धीरे धीरे अपने अपने क्षेत्र स्थापित हो गये।

भारत - १७६३ ई. सन् में
मरहठा राज्य
हैदराबाद राज्य
मैसूर राज्य
भावलपूर
दिल्ली
बरेली
सिं
ध
अजमेर
लखनऊ
कलकत्ता
सतारा
विशिखापटनम
हैदराबाद
गोआ
मैसूर
ट्रावनकोर
लंका
मुग़ल राज्य
अंग्रेज़ी राज्य
अवध राज्य
राजपूती राज्य
रुहेली राज्य

फलक संख्या – ३४

भारत – १८५६ में
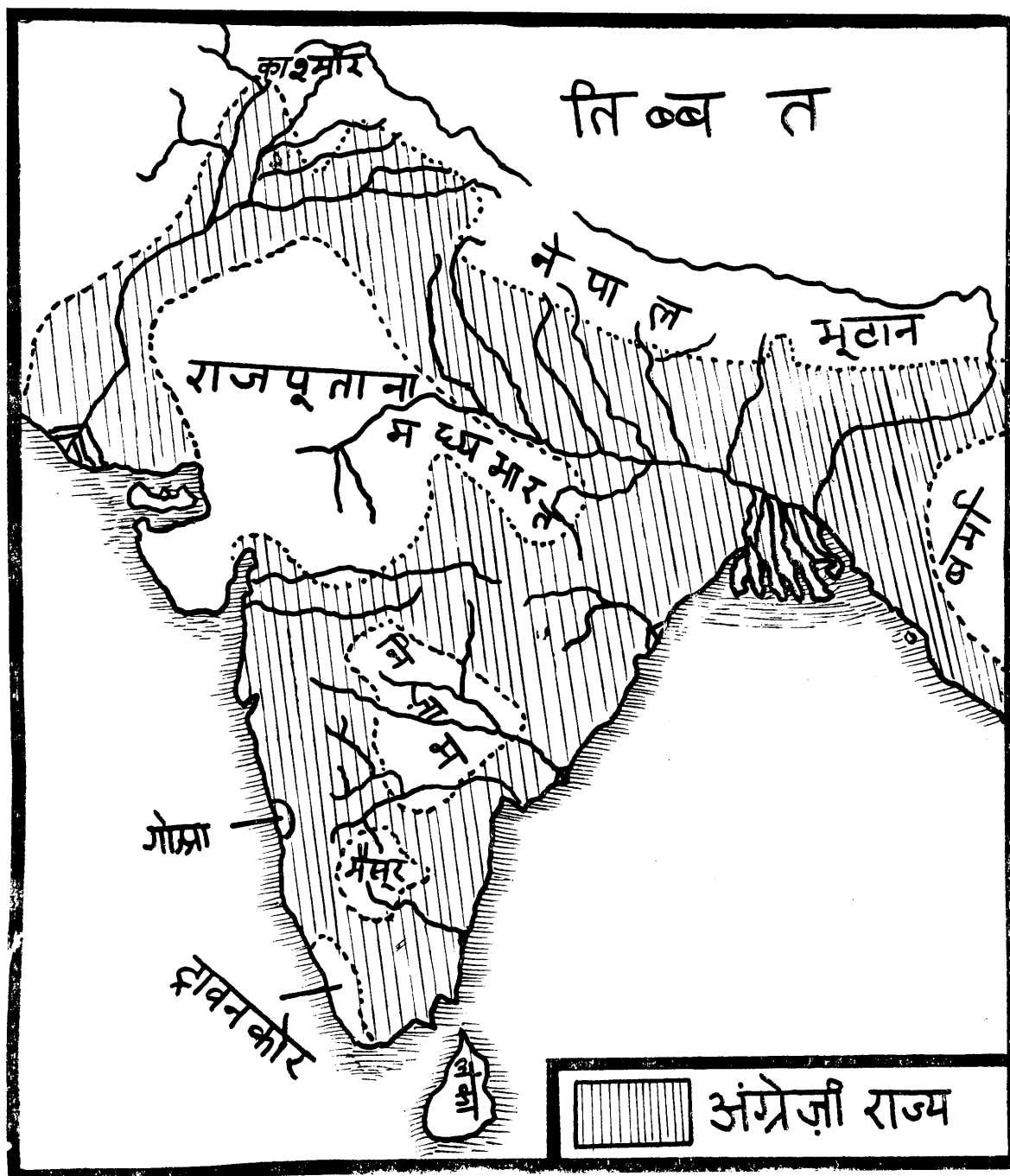
फलक संख्या – ३५

२३ जून १७५७ को प्लासी के मैदान में क्लाइव तथा नवाब की सेना में घमासान युद्ध हुआ। विश्वासघात के कारण क्लाइव की जीत हुई। अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी केवल व्यापारिक संस्था ही नहीं अपितु एक राजकीय संस्था भी हो गई और छोटे छोटे राजाओं को साम, दाम, दण्ड, भेद से अपनी ओर मिलाती गई। अपने प्रांतपति (गवर्नर) नियुक्त करती रही। शनैः शनैः असंतोष बढ़ता रहा जिसके फलस्वरूप १८५७ की क्रान्ति हो गई। बहुत से अंग्रेज़ मारे गये। अब राज्य कम्पनी के हाथों से निकल कर इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया के हाथों में आ गया। भारत को दमन नीति से कुछ अंशों में छुटकारा मिला परन्तु अब भारत का अंग्रेज़ीकरण होना आरम्भ हो गया।

इससे लाभ यह अवश्य हुआ कि भारतियों में भारत के लिये जागृति उत्पन्न हुई। हर व्यक्ति अपने को भारतीय मानने लगा और स्वतंत्र होने के सपने देखने लगा। अपने अधिकारों की रक्षा के लिये १८८५ में एक इण्डियन नेशनल कांग्रेस स्थापित हुई जिसका पहला अधिवेशन बम्बई में हुआ। तत्पश्चात् 'होमरूल' की आवाज़ उठाई गई। १९०७ में इसमें दो दल नर्म तथा गर्म हो गये। उधर अंग्रेजों की घोर दमन नीति आरम्भ हो गई। १९११ में दिल्ली राजधानी बना दी गई।

जब इस दमन चक्र को रोकने के लिए महात्मा गान्धी मैदान में आये, तब सर्व प्रथम सत्याग्रह (हड़ताल) ६, अप्रैल १९१९ को की गई; जो सारे देश में सफल रही तदनन्तर भारत में जागृति की भावना प्रबल होती गई जिसके फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ को भारत विभाजित होकर स्वतंत्र हो गया। एक भाग पाकिस्तान और दूसरा भारत कहा जाने लगा। देश ने महा बलिदान दिये और स्वतंत्रता को रक्त से सींचा। सम्भव है हमारी आज की निर्बलतायें भावी पीढ़ी के लिये शिक्षाप्रद सिद्ध हों।

पठनीय सामग्री

Kashyap, A. C. : आदि भारत
Majumdar, R. C. : An Advanced History of India.
Mirashi V V. : वाकाटक राजवंश का इतिहास।
Munsht, K. M. : The History and Culture of the Indian People.
Pandey, C. B, : आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास।
Puri, B. N. : India Under Kushanas.
Rao, M. R. : Glimpses of Deccan History.
Rawlinson, H. G. : A Concise History of the Indian people.
Shastri, N. K : History of South India.
,, ,, : Ancient India, Its Language and Religion.
Smith, Vincent : The Early History of India.
Tripathi, Dr. R. S. : प्राचीन भारत का इतिहास।
Yazdani, G, : The Early History of Deccan.

□

भारत की लिपियाँ

ऐसे प्राचीन देश मे, जिसमें सहस्रों वर्ष पूर्व वेद, ब्रा ण, आरण्यक, उपनिषद् रामायण, महाभारत, गीता आदि जैसे दार्शनिक व धार्मिक विस्तीर्ण ग्रन्थों का प्रादुर्भाव हुआ हो, और वह भी एक ऐसी वैज्ञानिक भाषा संस्कृत में जो विश्व के कई देशों की भाषाओं की जन्मदात्री बन गई, कितने आश्चर्य व दुर्भाग्य की बात है कि उसी देश को आज तक यह ज्ञात न हो सका कि वे ग्रन्थ कब लिपि – बद्ध किये गये। उनका प्रामाणिक निर्माण काल भी निर्धारित न हो सका। ग्रन्थों के काल व लिपि के प्रश्न पर संसार के विद्वानों में इतना मतभेद है कि वे प्रमाणों के अभाव में केवल अनुमानों के भण्डार से एकमत होने के किसी एक सिद्धान्त को सर्वमान्य बनाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

फिर प्रश्न उठता है कि क्या इतने विस्तीर्ण ग्रन्थों को कई सहस्र वर्षों तक पीढ़ी दर पीढ़ी, केवल कंठस्थ करके, सुरक्षित रखा जा सकता है ? नहीं, तो फिर किसी न किसी प्रकार की लिपि का वर्तमान होना अनिवार्य है। यह भी सम्भव है कि तात्कालिक विद्वानों ने इन विशाल ग्रन्थों को वृक्षों की छालों, पशुओं को खालों, भोज व ताड़ पत्रों पर लिखा हो, जो हमारे युग तक सुरक्षित न रह सके हों। इस प्रकार की शंकाओं का समाधान होना कि कौन सा लिपि कब आई — न केवल असम्भव है अपितु आज के विद्वान् अपने विकसित मस्तिष्क से नवीन प्रकार की शंकाओं को उपस्थित करके समाधान को क्षितिज की ओर ढकेल देते हैं। इस कारण इस विषय पर उस समय तक जितना चुप रहा जाये उतना ही अच्छा है, जब तक कि पुरातत्व वेत्ताओं के उत्खनन् से भू – गर्भ में दबी कोई पुरातात्विक सामग्री प्राप्त न हो जाये जो इन प्रश्नों पर प्रामाणित प्रकाश डाल सके, अन्यथा नवीन शंकायें, नये खोज व शोध, शोध कर्ताओं की ज्ञान – वृद्धि के बजाय उनको ऐसी भूल – भुलइयों में जा छोड़ेंगी जिनके बाहर वे कदापि बाहर न निकल सकेंगे और शंका समाधान की उत्सुकता व प्रेरणा की ओर उदासीन हो जायेंगे।

भारत की प्राचीनतम सिन्धु – घाटी – लिपि का वर्णन तो पीछे दिया जा चुका है जिसका रहस्यो – द्घाटन अनेक विद्वानों ने इतने प्रकार से किया है कि उसके रहस्य का सर्वमान्य उद्घाटन आज तक हो ही नहीं सका। इस लिपि का अन्त उस सभ्यता के साथ ही १५०० ई० पू० में अन्त हो गया। तदोपरांत ई० पू० की सातवीं व छठीं शताब्दी में लिपि का वर्तमान होता सिद्ध करने वाले निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं :—

- पाणिनि जिसने लगभग ई० पू० की पाँचवीं शताब्दी में (विद्वानों में पाणिनि के काल में मतभेद है) एक अपूर्व, सर्वमान्य अष्टाध्यायी व्याकरण लिखी जिसमें उसने अपने से पूर्व काल के कई वैयाकरणों के नाम दिये हैं।

- पाणिनि के पूर्व यास्क ने निरूक्त लिखा और उसमें अनेक वैयाकरणों के नाम तथा उनके मतों का उल्लेख किया है।

- छांदोग्य उपनिषद में 'अक्षर' शब्द मिलता है।
- तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्ण और मात्राओं का उल्लेख मिलता है।
- जैन व बौद्ध ग्रन्थों में अनेकों लिपियों के नाम मिलते हैं।

लिपि के वर्तमान होने के प्रमाण संशयात्मक हैं प्रामाणिक प्रमाण तो हमें अशोक के शिलालेखों से मिलते हैं जिनकी लिपि ब्राह्मी के नाम से प्रसिद्ध है। भारत के लिपि इतिहास में १५०० ई० पू० से ४०० ई० पू० तक, लगभग ग्यारह सौ वर्ष का काल अन्धकारमय है। इस अंधकारमय काल के दो सिरों — सिन्धु – घाटी – लिपि का अंत तथा ब्राह्मी का प्रारम्भ — को विद्वानों ने मिलाने की चेष्टा की है। साथ साथ इस प्रश्न का भी उत्तर देने का प्रयास किया है कि ऐसी वैज्ञानिक लिपि कहाँ से अकस्मात दृष्टिगोचर होने लगी जो सारे भारत व दक्षिण – पूर्व – एशिया के देशों की लिपियों की जन्मदात्री बन गई। इस ब्राह्मी के उद्भव के विषय में विद्वानों के निम्मलिखित विचार हैं :—

ऐल्फ्रेड : "सिकन्दर के साथ यूनानी आये थे उनसे भारतियों ने लिपि सीखी।"

प्रिन्सेप सेनार्ट : "यूनानी लिपि से ब्राह्मी का जन्म हुआ।"

विल्सन : "युनानी तथा फ़िनीशिया की लिपियों से विकास हुआ।"

हेल्वी : "यह मिश्रित लिपि है जो अरमायक, यूनानी तथा खरोष्टी से मिलकर बनी।"

कस्ट : "फ़िनीशिया के निवासियों से भारतीयों के सम्बन्ध रहे हैं। उन्हीं लोगों से ई० पू० की आठवीं शताब्दी में भारतीयों ने लिखना सीखकर ब्राह्मी को जन्म दिया।"

सर विलियम जोन्स तथा लेप्सियस : "सेसिटिक लिपि से तैयार की गई।"

बेवर, बेनफ़ी, पॉट, वेस्टरगार्ड, मैक्समूलर, फ्रेड्रिखमूलर, सेसी, ह्विट्ने आदि : ने भी सन्देह के साथ विलियम जोन्स के सिद्धांत का समर्थन किया।

स्टीवेन्सन : "फ़िनीशिया तथा मिस्र की लिपियों से बनी।"

बरनेल : "फ़िनीशियन द्वारा ब्राह्मी का उद्भव हुआ।"

लेलोरमॉन्ट : "फ़िनीशियन तथा हेमिरायट लिपि से।"

डिकी : "असीरिया की कीलाकार व किसी दक्षिणी सेमिटिक लिपि से बनी।"

एडवर्ड क्लाड : "सेबियन लिपि द्वारा।"

आयज़क टेलर : "किसी अज्ञात दक्षिणी सेमेटिक लिपि से।"

डा० राइस डेविड्ज : "सुमेर के रेखा चित्रों से।"

रैप्सन : "मोआब के लेख से।"

कुछ का मत है : कि सिन्धु – घाटी – सभ्यता के अंतिम चरण में जब कि चित्रात्मक व भावात्मक लिपि से वर्णात्मक बन चुकी थी उसी को शनैः शनैः आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर के ब्राह्मी बनी।

कुछ का विचार है : कि यह फ़िनीशियन तथा सिन्धु – घाटी – लिपि द्वारा विकसित हुई।

कुछ का कहना है : कि भारत में ब्राह्मणों ने इस लिपि को ब्रह्मा से वरदान रूप में पाकर इसका विकास किया इसी कारण इसको ब्राह्मी सम्बोधित किया गया।

अन्य विदानों का मत है : कि अशोक ने अपने विद्वानों को एक प्रयोगात्मक – राष्ट्रीय लिपि का निर्माण करने की आज्ञा दी जिनके द्वारा यह लिपि प्रयोगात्मक बनी।

एडवर्ड टामस, डासन, लैसन, कनिंघम आदि मानते हैं कि भारत में ही इस का उद्भव हुआ।

उपर्युक्त विचारों से, जो विद्वानों ने ब्राह्मी लिपि के उद्भव के विषय में दिये हैं, क्या कोई शोधकर्ता स्नातक किसी दृढ़ निश्चयात्मक निष्कर्ष पर पहुँच सकता है? भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् कुछ

राष्ट्रवाद आने के कारण अब यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि सिन्धु – घाटी – लिपि से ही इसका विकास हुआ चाहे हम उस लिपि का रहस्योद्घाटन अभी तक न कर सके हों।

यह बात तो निश्चय है कि भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिमी एशिया के निवासियों से सहस्रों वर्ष पूर्व से थे। यह भी सत्य है कि संसार की कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जिसमें दूसरी लिपि का सम्मिश्रण न हो। यह अवश्य कहा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि का विकास सिन्धु – घाटी – लिपि तथा उत्तरी – सेमिटिक (फ़िनीशियन) लिपि व अरमायक लिपि के सम्मिश्रण से हुआ (फलक संख्या – ३६)। अब ब्राह्मी के 'अ' को लीजिये इसकी दिशा बदली गई है। फ़िनीशियन, अरमायक तथा मोआब इत्यादि लिपियाँ एक ही वंश (सेमिटिक) की हैं जो दायें से बायें लिखी जाती थीं। उन्हीं में से फ़िनीशियन लिपि के 'अ' ने भारत में आकर अपनी दिशा बदल ली। वहीं के एक अक्षर 'दलेथ' ने भारत में आकर दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम 'द' तथा 'ध' हो गये। इनकी दिशा बाद में परिवर्तित की गई। 'बेथ' अर्थात 'ब' चौकोण होने के कारण वैसा ही रहा। अरमायक के 'त' प' 'श' को उल्टा खड़ा कर दिया गया। इस प्रकार पश्चिम एशिया के आठ अक्षर ब्राह्मी में सम्मिलित हुये। सिन्धु – घाटी – लिपि के ४१७ चिह्नों में से कुछ चिह्न ब्राह्मी के अक्षरों के समान प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी ध्वनियों के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका रहस्योद्घाटन पूर्णरूप से सर्वमान्य नहीं हो सका।

ब्राह्मी लिपि के गूढ़ाक्षरों का रहस्योद्घाटन

ब्राह्मी लिपि के रहस्योद्घाटन का एक अपना छोटा सा इतिहास है। मिस्र तथा मेसोपोटामिया में शैम्पोलियाँ तथा रालिन्सन के परिश्रम से वहाँ की प्राचीन लिपियों का रहस्योद्घाटन रोसेटा व बेहिस्तून के शिलालेखों के प्राप्त होने से पूर्ण हो चुका था, परन्तु भारत में ऐसा कोई शिलालेख प्राप्त न हो सका जिस पर ज्ञात – लिपि तथा प्राचीन लिपि में एक ही लेख अंकित हो। गूढ़ लिपियों के पढ़ने में उन देशों में तो विद्वान् प्राचीन काल से अर्वाचीन की ओर चले परन्तु भारत में अर्वाचीन से प्राचीन काल की ओर चले। जैसे अन्य देशों में पाश्चात्य विद्वानों के परिश्रम से अतीत की जानकारी हुई उसी प्रकार भारत में भी प्राचीन काल की लिपियों को पढ़ने का श्रेय वहीं के विद्वानों को मिला।

१७८४ ई० में सर विलियम जोन्स के यत्नों से कलकत्ता में एक एशियाटिक सोसायटी तथा लन्दन में एक रॉयल एशियाटिक सोसायटी स्थापित की गई। इन दोनों का उद्देश्य प्राचीन ग्रन्थों, कलाओं, अभिलेखों, ताम्रपत्रों व सिक्कों की खोज करना था। इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुये १८६१ में लार्ड कैनिंग (तात्कालिक भारत के वायसराय) की स्वीकृति से शासन की ओर से पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग (आर्केयोलाजिकल सर्वे डिपार्टमेण्ट) स्थापित हुआ, जिसके अध्यक्ष संयुक्त प्रदेश (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के मुख्य अभियन्ता (चीफ़ इंजीनियर) कर्नल ए० कनिंघम नियुक्त हुए।

इसी पुरातत्त्व विभाग के अन्तर्गत निम्नलिखित खोज कार्य सम्पन्न हुए :—

१७८५ में : चार्ल्स विलकिन्सिन द्वारा दसवीं श० का एक स्तम्भ लेख पढ़ा गया। इसको बंगाल के राजा नारायण पाल ने लिखवा कर बादल (ज़िला दीनाजपुर) में स्थापित कराया था।

१७८५ में : राधाकांत शर्मा द्वारा तेरहवीं श० के कुछ अभिलेख पढ़े गये तथा दिल्ली के अशोक – स्तम्भों को पढ़ने का प्रयास किया गया। यह दोनों स्तम्भ १३५६ ई० में फीरोज़शाह तुग़लक के आदेश से दिल्ली लाये गये थे। उनमें से एक टोपरा (ज़िला अम्बाला) से तथा दूसरा मेरठ से लाया

सेमिटिक व सिन्धु -- घाटी के चिह्नों की ब्राह्मी के अक्षरों से तुलना

सेमिटिक लिपियों के अक्षर		ध्वनि	ब्राह्मी
फ़िनीशिया	⋉	अ	⋊
..	□	ब	□
"	▷	द	D, ⊃
मोआब	∧	ग	∧
हेब्रू	⅄	त	⅄
अरमायक	∨	श	^
..	∩	प	∪

ध्वनि	इ	क	ग	ट	ठ	थ	ब	र
ब्राह्मी	∴	+	∧	(	○	⊙	□	⌇
सिन्धु०	∴	+	∧.	(	○	⏀	□	⌇

फलक संख्या – ३६

गया था। उन्हें पढ़ने का प्रयत्न अकबर तथा तुग़लक द्वारा किया गया परन्तु तात्कालिक विद्वानों में से एक भी उन्हें पढ़ने में सफल न हो सके।

१७८५ में : जे० यच० हरिंग्टन द्वारा गुप्त लिपि के उन शिलालेखों के अक्षरों को पहचाना गया जो बुद्ध – गया (बिहार) के निकट गुफ़ाओं से प्राप्त हुए थे।

१८१८ से २३ तक : कर्नल जेम्स टाड द्वारा सातवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के उन अभिलेखों को पढ़ने का प्रयास किया गया जो काठियावाड़ (गुजरात) तथा राजपूताना (राजस्थान) से प्राप्त हुए थे।

१८२८ में : बी० जी० बबिंगटन द्वारा तमिळ भाषा के उन प्राचीन अभिलेखों का रहस्योद्घाटन हुआ तथा वर्णमालायें तैयार की गईं जो दक्षिण भारत के मामल्लपुर से प्राप्त हुये थे।

१८३३ में : वाल्टर इलियट ने प्राचीन कन्नड़ अक्षरों को पहचान कर वर्णमाला तैयार की।

१८३४ में : कैप्टेन ट्रायर ने राजा समुद्रगुप्त के उस लेख को पढ़ने का प्रयास किया जो अशोक के प्रयाग वाले स्तम्भ पर अंकित किया गया था, जिसका पूरा रहस्योद्घाटन डॉ० मिल ने किया।

१८३५ में : डबल्यु० यच० वाथन ने छठी व सातवीं श० के वलभी राजवंश के राजाओं के दान पत्र पढ़े।

जून १८३७ में : प्रिंसेप के पास कुछ छोटे छोटे अभिलेख आये जो सांची के स्तूप के चारों ओर के स्तम्भों पर उत्कीर्ण थे। प्रत्येक अभिलेख के अन्त में केवल दो ही अक्षर बारम्बार उत्कीर्ण किये गये थे। दैवयोग से प्रिंसेप को संस्कृत भाषा का एक शब्द 'दानं' याद आया। यही शब्द सारी ब्राह्मी लिपि के रहस्योद्घाटन की कुंजी बन गई। इसी आधार पर प्रिंसेप ने दिल्ली के अशोक स्तम्भ को पढ़ने का प्रयास किया। 'पियादसि' शब्द से उसे अशोक राजा का ध्यान आया। १८३८ में उसने ग्रीक राजाओं के तीन नाम[1] पढ़े जो गिरनार के अशोक – शिलालेख में उत्कीर्ण थे। अपने शोध कार्य में व्यस्त प्रिंसेप का २२ अप्रेल १८४० को स्वर्गवास हो गया। भारत के पुरातत्त्व विभाग में इतना परिश्रमी, इतना बुद्धिमान तथा इतना महान् खोजकर्ता कोई व्यक्ति उसके स्थान की पूर्ति नहीं कर सका। मृत्यु से पूर्व प्रिंसेप ने १८३८ में चार्ल्स विल्किन्सन, कैप्टेन ट्रायर, डा० मित्र आदि के सहयोग से गुप्त एवं ब्राह्मी लिपि की वर्णमालायें तैयार कर ली थी। उसी वर्ष कैप्टेन कोर्ट, नॉरसि तथा कनिंघम के प्रयत्नों से प्रिंसेप ने खरोष्ठी की भी वर्णमाला तैयार कर ली थी।

इस प्रकार १८९० तक कई विद्वानों के सहयोग से कई खोज कार्य सम्पन्न हुए तथा अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों व सिक्कों के गूढ़ाक्षरों का रहस्योद्घाटन हुआ जिनके द्वारा भारत के इतिहास की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ कर इतिहास को क्रमबद्ध किया गया।

खरोष्ठी लिपि

इस लिपि का जन्म और विकास अरमायक द्वारा लगभग ई० पू० की छठी शताब्दी में उन जातियों ने किया, जो भारत (आधुनिक अफ़गानिस्तान व पाकिस्तान के कुछ भाग) के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में निवास करती थीं। इनमें बैक्ट्रिया, सीथिया, पर्शिया, भारत आदि देशों के निवासी सम्मिलित थे। इन जातियों के

1. एन्टी ओकस द्वितीय, टॉलेमी फ्लेडीफ़स तथा सीटिन कामगस।

अशोक के शिला-लेख एवं स्तम्भ-लेख
भारत
अशोक का साम्राज्य
शाहबाजगढ़ी
मनसेरा
कालसी
तोपरा
मेरठ
इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)
सिन्धु नदी
मथुरा
बैरात (भाब्रा)
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
ललितपाटन
निग्लिवा
रामपुर्वा
लौरिया नंदनगढ़
लौरिया अरराज
पाटलिपुत्र
प्रयाग
सारनाथ (वाराणसी)
चम्पा
साँची
रूपनाथ
गिरनार (जूनागढ़)
नर्मदा नदी
ताम्रलिप्ति
ताप्ती नदी
महानदी
तोसाली
सोपारा (थाना)
जौगुदा
गोदावरी नदी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
कृष्णा नदी
मस्की
कोपबाल
सिद्धपुरा
चोल
पाण्ड्य
ताम्रपर्णी
संकेत
स्तम्भ-लेख
शिला लेख
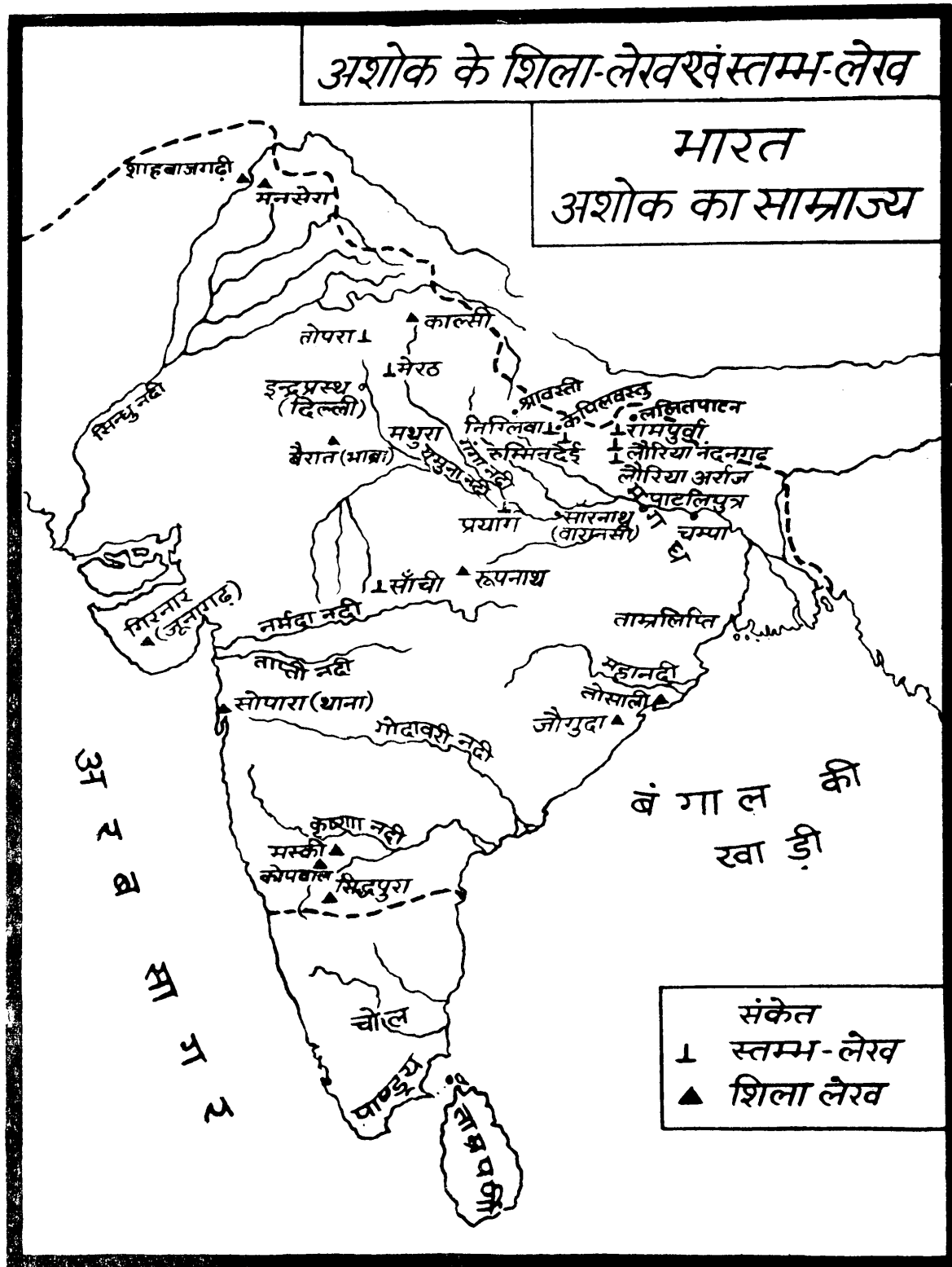
फलक संख्या – ३७

व्यापारियों को ईरान की राजकीय तात्कालिक कीलाकार लिपि का प्रयोग करने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती थी। ईरानी व्यापारी भी कीलाकार लिपि को प्रयोग न कर अरमायक का प्रयोग करते थे। व्यापारी पर्यटनशील होते थे। इस कारण अरमायक भी पर्यटनशील हो गई और विभिन्न देशों में जाकर वहाँ की भाषा व प्रचलित लिपि पर अपना प्रभाव डाल कर भिन्न-भिन्न लिपियों की जन्मदात्री बन गई। दूसरी श० में इसका स्थान ईरान की पहलबी लिपि लेने लगी।

इस लिपि का नाम खरोष्ठी क्यों पड़ा — इसके विषय में विद्वानों ने अपने निम्नलिखित अनुमानित विचार दिये हैं :—

- खरोष्ठी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों (खर = गधा + ओष्ठ = ओठ) से हुई जिसके अर्थ हैं, गधे के ओठों जैसी लिपि।
- खर पोस्ता अर्थात् गधे की खाल पर लिखी जाने वाली लिपि खरोष्ठी कहलाने लगी।
- अरमायक भाषा के एक शब्द 'खरोष्ठ' से इसका नाम खरोष्ठी पड़ा।
- हेब्रू भाषा के शब्द खरोशेय, जिसका अर्थ है लिखावट, से खरोष्ठी बना।
- काशगर (कश्मीर के उत्तर में) को संस्कृत में खरोष्ठ कहते हैं, अतः लिपि जो वहाँ अधिक प्रचलित थी, खरोष्ठी कहलाई।
- बौद्ध – ग्रन्थ ललित-विस्तर, जिसका अनुवाद चौथी शताब्दी के आरम्भ में चीनी भाषा में हुआ, के अनुसार किअ – लु – सेटो (दिव्य शक्ति रखनेवाले आचार्य) के नाम पर खरोष्ठी पड़ा।

इस लिपि के रहस्योद्घाटन की अपनी स्वयं एक कहानी है जिसमें कई पात्र हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने बैक्ट्रिया, ग्रीक, शक, पार्थिया व कुषाण वंशीय राजाओं के कई प्राचीन सिक्कों तथा अभिलेखों का संग्रह किया था। १८३० में जनरल वेन्टूरा ने मानिकियाल के स्तूप को खुदवाया। उसमें कई सिक्के तथा दो खरोष्ठी लिपि के अभिलेख प्राप्त हुये। १८३४ में कैप्टेन कोर्ट को एक स्तूप से कई सिक्के तथा एक अभिलेख प्राप्त हुआ। १८३८ में मैसन ने अपनी जान संकट में डाल कर स्वयं शहबाज़गढ़ी[1] की ८० फुट ऊँची चट्टान पर अंकित अशोक की १४ घोषणाओं की प्रतिलिपियां तैयार करके प्रिंसेप के पास भेजीं। साथ ही साथ उसने कई सिक्कों पर अंकित राजाओं के नाम एक ओर की ग्रीक लिपि में पढ़े जिनका नाम दूसरी ओर खरोष्ठी में अंकित था। उन नामों को भी प्रिंसेप के पास प्रमाणित कराने भेजा, जो प्रिंसेप ने ठीक बतलाये। अब इतनी प्रगति हो गई कि विद्वान् यह जान गये कि जो लिपि अंकित है वह दाएँ से बाएँ पढ़ी जायेगी तथा उसकी भाषा प्राकृत व पाली है। इन प्रयत्नों से १७ अक्षर पहचान लिये गये। नॉरिस ने अन्य ६ अक्षर पहचाने। शेष प्रिंसेप ने पहचान कर अपने सहयोगी विद्वानों द्वारा १८४० में इस लिपि के ३७ अक्षरों की एक वर्णमाला तैयार को जो 'फ० सं० – ३८, ३८ क' पर तीसरी चट्टान के कुछ शब्दों के साथ दी गई है।

अभिलेख के कुछ शब्द इस प्रकार हैं :— "देवन प्रियो प्रिय द्रशिरय सर प षड नि ग्र ह ठ नि" अर्थात् "देवताओं के प्रिय, दर्शन करने में प्रिय, सर्व धार्मिक सम्प्रदायों प्रवरजितों और गृहस्थों"

---

1. शहबाज़ गढ़ी मकाम नदी के निकट ज़िला पेशावर के मर्दान उपनगर से नौ मील पर स्थित है।

खरोष्ठी लिपि – दूसरी शताब्दी

उत्तरी सिन्ध के प्रान्त (पाकिस्तान) के भावलपुर नगर के उत्तर-पश्चिम में स्थित सुइ विहार का जीर्ण स्तूप है। यहाँ से एक ताम्र – पत्र, जिसपर खरोष्ठी में चार पंक्तियाँ अंकित थीं, उत्खनन में जी० ईट्स (G. Yeats) को १८६९ में प्राप्त हुआ। जे० डाउसन ने इसका अनुबाद १८७० में किया। डा० वान् विज़्क ने इस ताम्र – पत्र की तिथि ७ जून १३९ ई० निर्धारित की। कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष में इसको अंकित कराया गया था। कनिष्क[1] का काल (पाँच विद्वानों ने दिया है) विवादस्पद है। इस अभिलेख की भाषा पाली + प्राकृत है तथा संस्कृत का प्रभाव है।

इस लिपि के वर्ण[2] तथा ताम्र – पत्र – अभिलेख[3] 'फ० सं० – ३८ क, ३८ ख तथा ३८ ग' पर दिये गये हैं।

अभिलेख का लिप्यंतरण इस प्रकार है :— (दायें से बायें पढ़ा जायेगा)

"महरजस्य रजतिराजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य संवत्सरे एकदशे सं० १०१ दइसिकस्य मसस्य दिवसे अठविशे दि २०४४ उत्र दिवसे भिक्षुस्य नगदतस्य संखं केटिस्व अचर्य दमत्रति शिष्यस्य अचर्यभव प्रशिष्यस्य यठि अरोपयतो इहदमने। विहर स्वमिनि उपसिक बलनंदि किछुबिनि बल जय मत च इमं यठि प्रतिठनं कपजं च अनुपरिवरं ददंति सर्व सत्वनं। हित सुखय भवतु।"

अभिलेख का अनुवाद :—

"देवपुत्र महाराजाधिराज कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष – सं (वत्) १०१ के दइसिक माह के अट्ठाइसवें दिन, भिक्षु नागदत्त ने, जो विधि का प्रचारक, दमत्रि (गुरु) का शिष्य, गुरु भव के शिष्यों का शिष्य था, विहार की उपासिका दमनः बालनन्दी को मानने वाली और उसकी माँ, बालजय की पत्नी को यह स्थान प्रदान कर दिया ताकि सबको सुख व हर्ष प्राप्त हो।"

विवादास्पद काल की प्राचीन ब्राह्मी

ब्राह्मी के चार ऐसे अभिलेख प्राप्त हुये हैं जिनके विषय में विद्वान् अभी तक एक मत नहीं हो पाये हैं। प्रश्न है कि क्या यह प्राचीन लेख अशोक काल (ई० पू० २७३ – २३२) के पूर्व के हैं या उसके शासनकाल के हैं। इस प्रश्न का उत्तर केवल तर्क से दिया जा सकता है क्योंकि कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विद्वानों के विवादास्पद मतों को देना केवल विषय लम्बा करना होगा। इतना कहना पर्याप्त होगा कि प्रो० दिनेश चन्द्र सरकार इनको तीसरी शताब्दी के तथा गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा ई० पू० की पांचवीं शताब्दी के मानते हैं।

पहला एक आंशिक लेख जो एक स्तम्भ के टुकड़ों पर अंकित था और जो अजमेर के बड़ली ग्राम से प्राप्त हुआ था परन्तु अब अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। उसके अंकित शब्द हैं "वीर (।) य भगव (त),

1. Sircar, D. C. : Select Inscriptions – page 134 [78 A. D. – 101 A. D.]
   Banerji, R. D. : I. A. Vol. XXXVII (1908) page 72 [78 A. D. – 123 A. D.]
   Smith, V. A. : Early History of India (1908) page 259. [125 A. D. – 150 A. D.].
   Konow, S : C. I. I. Vol. II, Part I, Plate LXXVII [128 A. D. – 151 A. D.]
   Puri, B. N. : India Under The Kushanas – page 45 [144 A. D. – 167 A. D.]
2. Ojha, G. H. : भारतीय प्राचीन लिपि माला – पृष्ठ ९८, प्लेट – ६५.
3. I. A, Vol. X page 325.

खरोष्ठी लिपि के वर्ण

अ इ उ ए ओ अं क ख ग

घ च छ ज झ ञ ट

ठ ड ढ ण त थ द ध

न प फ ब भ म

म य र ल व श

ष स ह कि खि चि

ठि णि ति मि शि सि गु चु तु जे

ते ने ये पे

निठहग्र निडषपरस यरशिद्रयप्रि योप्रि नवदे ←

फलक संख्या – ३८

खरोष्ठी के कुछ अन्य संलिष्ट वर्ण

कि	खि	गु	ग्र	चि	चु
ट्र	द्रि	ठि	णि	ति	तु
ते	त्म	थं	दे	द्र	धु
ध्र	नु	ने	नो	पि	ब्र
म्य	यु	शि	ये	पो	वु
श्रु	षे	सि	सो	स्त	स्त्रि

फलक संख्या – ३८ क

खरोष्ठी लिपि -- दूसरी श०

अ	ट	य	ति	कु	रे	सं
इ	ठ	र	दि	चु	शे	त्र
उ	त	ल	नि	टु	से	त्व
ए	द	व	वि	तु	तो	प्र
क	न	स	भि	नु	रो	र्य
ख	प	ह	मि	पु	ठं	ष्क
ग	ब	टि	शि	सु	तं	स्व
च	भ	ठि	सि	दे	नं	मं
ज	म	णि	हि	ने	रं	वैं

फलक संख्या – ३८ ख

खरोष्ठी लिपि -- दूसरी श०

रे त्स व स स्य ष्क नि क स्य त्र पु व दे स्यज राति ज र स्यज र ह्म

शेविठअसेवदि स्यसम स्यकसिइ द १२० सं शे द क ए

स्य टि केखसं स्यतद ग न स्यक्षुभि सेवदि त्रउ | ४४२० दि

परोअठिं य स्यष्य शि प्र व भ र्यचअस्यष्य शि तित्रमद र्यचअ

कि दि नं ल ब कसि प उ निमिस्वरहवि | ने म द ह इ तो य

च

प नुअंजंपकनंठतिप्रठिय म इं च त म य ज ल ब निबि क्षु

तु व भ य खसु त हि | नंत्वसर्वसतिदंद रं व रि

फलक संख्या – ३८ ग

दूसरी पंक्ति में "चतुर। सिति व (स)। महावीर के निर्वाण का चौरासिवाँ वर्ष होना चाहिये जो ई० पू० की ४४३ वीं वर्ष होती है अर्थात् लेख ४४३ ई० पू० का है।[1]

दूसरे व तीसरे अभिलेख जो बोगरा जिले (आधुनिक बंगला देश) से तथा सोहगड़ा, जिला गोरखपुर से प्राप्त हुए।

चौथा अभिलेख नेपाल की तराई में कपिलवस्तु[2] के निकट पिप्रावा[3] ग्राम से प्राप्त हुआ। १८९९ के मार्च के माह में बाबू पूरन चन्द्र मुकर्जी ने उत्खनन् कार्य किया। १८ फ़ुट ईंटों के चबूतरे को खोदने के पश्चात् एक बड़े पत्थर की पेटी, जिसकी लम्बाई ४ फ़ुट ४ इंच, चौड़ाई २ फ़ुट ८½ इंच तथा ऊँचाई २ फ़ुट २½ इंच थी, दिखाई पड़ा जिसमें से पांच कलश प्राप्त हुये। इनमें महात्मा बुद्ध की अस्थियों की राख थी। उनमें से एक कलश पर, जिसका व्यास ४ इंच तथा ऊँचाई ६ इंच थी, गोलाई में एक छोटा सा अभिलेख[4] अंकित था (फ० सं० – ३९)। उसकी भाषा पाली – प्रकृत मिश्रित थी।

अंकित शब्द : "सुकिति – भतिनं स – भगिनिकनं स – पुत – दलनं इयं सलिल – निधने बुध स भगवते साकियानं।"

हिन्दी अनुवाद[5] : "शाक्यों ने अपने भाईयों बहनों तथा पुत्रों और स्त्रियों के साथ भगवान शाक्य मुनि बुद्ध का यह शरीर निधन (स्तूप) कीर्ति के लिए स्थापित किया।"

दूसरा अनुवाद[6] : "शाक्य सुकीर्ति बन्धुओं ने अपनी बहनों, पुत्रों और पत्नियों के साथ बुद्ध भगवान् की अस्थियों पर इस स्तूप (शरीर निधन) का निर्माण करवाया।"

इसके अतिरिक्त भी कई विद्वानों ने इस अभिलेख के अनुवाद किये हैं जिनमें भिन्नता पाई जाती है। इस अभिलेख का काल भी ३४३ ई० पू० माना है।

उत्तरी ब्राह्मी – ई० पू० तीसरी श०

डा० विन्सेन्ट स्मिथ ने अशोक के अभिलेखों का वर्गीकरण करके उनका समय भी निर्धारित किया है। जूनागढ़ (गुजरात) में गिरनार के रास्ते पर एक बड़ी चट्टान है, जिस पर सम्राट अशोक ने लगभग २५७ ई० पू० में अपनी चौदह घोषणायें ब्राह्मी अक्षरों में अंकित करवाईं। यह शिला भूमि तल से बारह फ़ुट ऊँची तथा ७५ फ़ुट परिधि की है। यह खड़ी पंक्तियों द्वारा विभाजित की गई है। लेख सामने की ओर हैं। पीछे की ओर

1. गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा की पुस्तक "भारतीय प्राचीन लिपि माला"।
2. कपिलवस्तु को कोशला के राजा वृधुका ने ५४५ ई० पू० में नष्ट कर दिया। ५४३ में अजातशत्रु ने कोशला को नष्ट कर वृधुका को जीवित जला दिया। इसी वर्ष बुद्ध का शरीर निधन हुआ।
3. Mukherji : **A Report on Tour of Exploration of the Antiquities in the Terai (Nepal) the Region of Kapilvastu During Feb, March (1899).**
4. I. A. Vol. XXXVI – page 177
5. राईज़ डेविड्स [Rhys Davids] के अंग्रेज़ी अनुवाद से "This Shrine for relics of Buddha, the august one, is that of Sakyas, the brotheren of the distinguished one, in association with their sisters and with their children and their wives"
6. डा० ब्हूलर Dr. Bühler के अंग्रेजी अनुवाद से "This relic Shrine [Sharir Nidhan] of Divine Buddha [is the donation] of Sakya Sukirti Brothers associated with their Sisters and wives"

विवादास्पद काल की प्राचीन ब्राह्मी

फलक संख्या – ३९
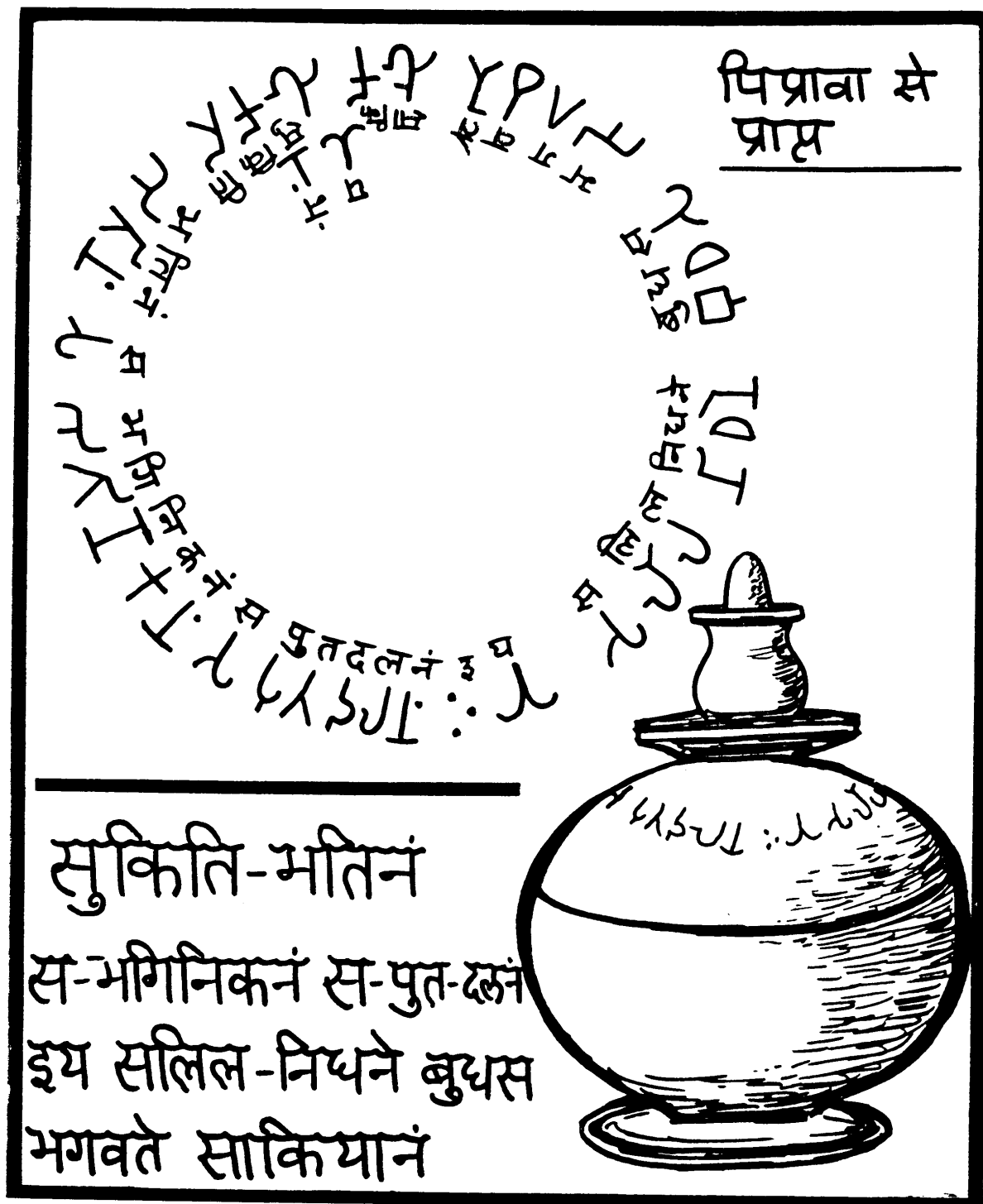
के अभिलेख क्षत्रप वंशीय राजा रुद्रदामन् ने जो जयदामन् का पुत्र था और जिसने महाक्षत्रप के रूप में सौराष्ट्र पर ४० वर्ष (१३० से १७० ई० सन् तक) राज्य किया, संस्कृत भाषा में अंकित करवाये थे। यह संस्कृत भाषा के प्राचीनतम लेख थे। वैदिक साहित्य में ६४ वर्ण थे परन्तु प्राकृत, जिसमें यह शिलालेख उत्कीर्ण है, में ४७ अक्षर व्यवहार में आते थे क्ष. त्र. ज्ञ. भी वर्ण मान लिये गये वैसे यह संयुक्त अक्षर हैं।

इस शिलालेख का दिसम्बर १८२२ में सर्वप्रथम मेजर जेम्स टॉड ने निरीक्षण किया। उस समय वह कहीं से भी टूटा नहीं था, परन्तु गिरनार पर्वत को जाने के लिये सड़क – निर्माण कार्य में इसका कुछ भाग खण्डित हो गया। उसके बाद डा० बर्गेस ने उस पर एक छत्रच्छाया का निर्माण कराया। इसकी सबसे पहली प्रतिलिपि कैप्टिन लैंग ने १८३५ में कपड़े पर तैयार की। तदन्तर ली ग्रांड जैकब तथा वेस्टर गार्ड ने और प्रतिलिपियाँ तैयार कीं। इसके गूढ़ाक्षरों का रहस्योद्घाटन सर्वप्रथम १८३८ में अन्य विद्वानों के सहयोग से जेम्स प्रिंसेप ने किया। इसकी भाषा प्राकृत है। इसकी वर्णमाला तथा लेख के कुछ संयुक्त वर्ण 'फ० सं० – ४७ – ४७ क' पर दिये गये हैं। शब्दों के अर्थ हैं :—"यह धर्म लिपि देवताओं के प्रिय व जिसका दर्शन भी प्रिय हो (ऐसे राजा अशोक) राजा द्वारा लिखा गया।" इसके अतिरिक्त रुम्मिनदेई का स्तम्भ लेख दिया है। इसमें जो १ से ५ तक के अंक हैं वह उत्कीर्ण नहीं हैं — यह ५ पंक्तियाँ है। रुम्मिनदेई स्तम्भ लेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :—(फ० सं० – ४० ख)

१ – बीस वर्षों से अभिषेक देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा।
२ – स्वयं आकर (स्थान का) गौरव किया गया, क्योंकि यहाँ शाक्यमुनि बुद्ध जन्म लिये थे।
३ – पत्थर की दृढ़ दीवार यहाँ बनाई गई और शिलास्तम्भ खड़ा किया गया।
४ – क्योंकि भगवान् यहाँ उत्पन्न हुए थे। लुम्बनी ग्राम (धर्म) कर से मुक्त किया गया।
५ – और अष्टभागी बना दिया गया।

उत्तरी ब्राह्मी – दूसरी श० (क्षत्रप)

विक्रमादित्य द्वारा शकों की पराजय के १३५ वर्ष बाद कनिष्क के आधिपत्य में काठियावाड़, गुजरात और अवन्ती में शकों का शासन फिर से स्थापित हो गया और क्षहरात वंशीय भूमक इस प्रदेश का प्रथम शक क्षत्रप हुआ। नहपान इस वंश का अंतिम क्षत्रप था जिसने ११९ से १२४ ई० तक राज्य किया।

कुषाणों के ही अधिपत्य में शकों के दूसरे वंश की स्थापना हुई। इस वंश का नाम सम्भवतः कार्दमक वंश था। इस वंश का प्रथम शासक ज़ामोतिक का पुत्र चष्टक था। उस काल की रीति के अनुसार शासक महाक्षत्रप तथा उसका पुत्र, जो राज-काज में सहयोग दे, क्षत्रप कहलाता था, इस कारण चष्टक का पुत्र जयदामन् क्षत्रप था परन्तु चष्टक के शासन काल में ही जयदामन् की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् चष्टक का पौत्र रुद्रदामन् क्षत्रप हुआ। १३० में चष्टक की मृत्यु के पश्चात् रुद्रदामन् महाक्षत्रप हुआ। इसने अपने राज्य का विस्तार किया। अपनी कन्या का विवाह सातवाहन वंशीय वाशिष्ठिपुत्र पुळमायी,[1] जिसकी राजधानी, नासिक के निकट, पैठन थी, से १३७ में ही कर दिया था इसी कारण युद्ध में परास्त करने पर भी वध नहीं किया। वह केवल एक विजयी ही नहीं अपितु प्रजा का हितैषी भी था। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील जिसका निर्माण पुष्यगुप्त, जो चन्द्रगुप्त का एक निकट सम्बन्धी तथा सौराष्ट्रका राज्यपाल था, ने कराया था। झील का १५० ई० में बाँध टूट जाने से प्रजा में हाहाकार मच गया। रुद्रदामन ने बिना कोई कर लगाये या

1. शातकर्णि तृतीय भी कहते हैं।

उत्तरी ब्राह्मी लिपि -- ई० पू० तीसरी श०

अ आ इ उ

ए ओ क ख ग घ

च छ ज झ ञ ट ठ

ड ढ ण त थ द

ध न प फ ब भ म

फलक संख्या - ४०

उत्तरी ब्राह्मी ई० पू० तीसरी श० -- कुछ संयुक्त अक्षर

य र ल व स

ह खा मा रा बा नि लि

दे वा टि टी ढी थी पी मी टे

तु थै गो मू कू जू के णे नो

क्र त्र प्रा म्य म्हि स्व घु नु

ह्म स्त स्म ग्य क्य स्प घ्य ओ

फलक संख्या – ४० क

गिरनार शिलालेख के कुछ शब्द एवं रुम्मिनदेई का स्तम्भ लेख

इयं धमलिपी देवानं प्रियेन प्रियदसिना
राआ लेखापिता ....

गिरनार अभिलेख

देवानपियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसा
१-

भिसितेन अतन आगाच महीयिते हिद बुधेजाते
२-

सक्यमुनीति सिलाविगडभी चाकालापित
३-

सिलाथभेच उसपापिते हिदभगवं जातेति
४-

लुंमिनिगामे उबलिकेकते अठभागियेव
५-

संस्कृत: "देवानां प्रियेण (देव प्रियेण) प्रिय दर्शिना राज्ञा विंशति वर्षाभिषिक्तेन आत्मना आगत्य महीयतं, इह बुद्धः जातः शाक्यमुनिः इति। शिलावि (कृत) गर्दभी च करिता शिलास्तम्भः च उच्छ्रापितः। इह भगवान जातः इति लुम्बिनी ग्रामः उद्बलिक कृतः, आष्ट भागिकः च।

फलक संख्या – ४० ख

बेगार लिये अपने कोष से बांध का निर्माण करवाया। वह सस्कृत भाषा व साहित्य का आश्रयदाता भी था। उसके शासन काल में उज्जयनी पुनः विद्या और वैभव से पूर्ण हो गई। रुद्रदामन ने ४० वर्ष (१३० – १७० ई०)[1] राज्य किया।

रुद्रदामन् के पश्चात् उसका पुत्र दामोजद श्री महाक्षत्रप हुआ परन्तु राज्य शनैः शनैः क्षीण होने लगा और अंत में नाममात्र को रह गया जिसका चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्णतया अंत कर दिया।

गिरनार का शिलालेख अशोक के शिलालेख के पिछले भाग पर इसी रुद्रदामन् ने संस्कृत में उत्कीर्ण करवाया था। संस्कृत भाषा में बीस पंक्तियों में उत्कीर्ण यह शिलालेख अभी तक संस्कृत का प्राचीनतम् अभिलेख माना गया है। इस अभिलेख[2] के ब्राह्मी वर्ण 'फ० सं० – ४१' पर तथा अभिलेख का कुछ अंश 'फ० सं० – ४१ क' पर दिया गया है। जिसका हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है :—"परम लक्षणों से युक्त रूप और कान्ति की मूर्ति तथा महाक्षत्रप (की उपाधि) स्पयं प्राप्त करने वाले राजा नरेन्द्र की कन्या स्वयंवरा ने माला प्राप्त की··· ··· ··· ···।"

उत्तरी ब्राह्मी (कुषाण) दूसरी श०

डा० बर्गेस ने १८८८ में मथुरा के पास कंकाली टीला पर उत्खनन कार्य आरम्भ किया जिसमें अनेकों छोटे बड़े अभिलेख प्राप्त हुये। उनमें से एक कुषाण वंशीय राजा कनिष्क का अभिलेख भी, जो एक मूर्ति के चरणों के पास उत्कीर्ण किया गया था, प्राप्त हुआ। उसकी भाषा प्राकृत व संस्कृत मिश्रित थी। इस अभिलेख[3] का अनुवाद डा० ब्रूलर ने किया। उसी अभिलेख के वर्ण तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ४२' पर दिये गये हैं।

इसमें 'इ' की तीन बिन्दियां परिवर्तित करके तीन पंक्तियाँ बना दी गई हैं। 'ए' देवनागरी के निकट आता प्रतीत हो रहा है 'प', 'ष' 'ल' में अधिक अन्तर दिखाई नहीं देता।

उत्तरी ब्राह्मी (गुप्तलिपि) चौथी श०

गुप्तवंश का सस्थापक श्री गुप्त था परन्तु गुप्त साम्राज्य का संस्थापक चन्द्रगुप्त का विवाह लिच्छवि कुल की राजकुमारी कुमार देवी से सम्पन्न हुआ। इस विवाह को कुछ सोने के सिक्के सूचित करते हैं। इसने ३२० से ३३५ ई० तक शासन किया।

प्रयाग[4] के अशोक स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने जीवन काल में ही अपने पुत्र समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी चुन लिया था। उसके मरणोपरांत ३३५ में समुद्रगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपना स्थान भारत के सर्वमहान् सम्राटों में बना लिया। वह एक महान् विजेता था। इसने आर्यावर्त (उत्तर भारत) के नौ छोटे बड़े राजाओं को अपने अधीन कर लिया और दक्षिण के लगभग बारह राज्यों को पराजित किया परन्तु अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। इसके शासन काल में साहित्य तथा ब्राह्मण धर्म का उत्थान हुआ। इसने ३३५[5] से ३७५ ई० तक शासन किया।

---

1. Smith, V : The Early History of India, Page – 200.
2. I. A. Vol. VII, Page – 257.
3. Bühler : E. I. Vol. 1, Page – 371, 391.
4. (इलाहाबाद)
5. कुछ विद्वान ३२० ई० मानते हैं।

उत्तरी ब्राह्मी (क्षत्रप) दूसरी श०

अ आ इ ए क ख ग घ च छ

ज ञ ट ठ ड ढ ण त थ द

ध न प फ ब भ म य र

ल व श ष स ह

ळ का जा टा मा धि घि की

पी कु नु रु मू रू कृ वृ दे वै

गो नौ पौ क्रि क्ष ज्ञ द्र र्जि ष्ट्र स्मा

फलक संख्या – ४१

उत्तरी ब्राह्मी (क्षत्रप) दूसरी श०

परम लक्षण व्यंजनै रुपेत

कान्त मूर्त्तिना स्वयमधिगत

महाक्षत्रप नाम्ना नरेन्द्रकन्न्या

स्वयंवरा नेमाल्य प्राप्त दाम्ना

फलक संख्या – ४१ क

उत्तरी ब्राह्मी (गुप्त लिपि) चौथी श०

अ इ उ ए क ख ग घ च

ज ट ड ढ ण त थ

द ध न प फ ब भ

म य र ल व श ष

स ह ळ गा जा टा णा दा थि

नि की वी गु नु पु रु धू भू कृ दे ने मै

वै गो टो णो कौ दौ पौ क्ष छ ज्ञ ध्रु र्य्य ष्ठि

म हा रा ज श्री गु प्त प्र पौ त्र स्य

फलक संख्या – ४२

स्तम्भ पर सर्वप्रथम अशोक ने एक अभिलेख उत्कीर्ण करवाया। तदनन्तर उसी स्तम्भ पर चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५ – ४१४ ई०) ने अपने पिता समुद्रगुप्त की प्रशंसा में एक अभिलेख उत्कीर्ण करवाया। तत्पश्चात् किसी अन्य राजा ने एक अभिलेख अंकित करवाया। अन्त में १६०५ में जहाँगीर ने कुछ शब्द अंकित करवाये। यह स्तम्भ ३५ फ़ुट ऊँचा है।

१८०१ में सर्वप्रथम स्तम्भ लेख जेम्स होरे द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज़ में प्रकाशित हुआ। इसका रहस्योद्घाटन सर्व प्रथम कैप्टेन ट्रॉयर ने १८३४ में तथा जेम्स प्रिंसेप ने १८३८ में किया। इसकी वर्णमाला व कुछ शब्द[1] 'फ० सं० – ४३' पर दिये गये हैं। इस लिपि का नाम गुप्त – कालीन होने के कारण गुप्त लिपि पड़ गया।

दक्षिणी ब्राह्मी – ई० पू० दूसरी श०

इस लिपि के दस अभिलेख[2] भट्टीप्रोलु के उपनगर से, जो आन्ध्र प्रदेश के कृष्ण जनपद में स्थित है, प्राप्त हुये। यहाँ बुद्ध भगवान की अस्थियों का एक स्मारक – स्तूप निर्मित है, जिसमें कलशों पर तथा उनके नीचे पत्थरों पर कुछ अभिलेख उत्कीर्ण किये गये हैं। इन अभिलेखों को सर्वप्रथम ए० रिया ने १८८३ के उत्खनन में प्राप्त किये और वे १८९२ में प्रकाशित[3] हुये। वर्णमाला 'फ० सं० – ४४ तथा ४४ क' पर दी गई है और अभिलेख के शब्द संख्या १, २ तथा ९ (१, २ नीचे की गोल शिलाओं पर और ९ कलश पर उत्कीर्ण हैं) से लिये गये हैं। इनका अनुवाद[4] बुल्हर ने किया। इन अभिलेखों का काल ई० पू० की दूसरी श० माना गया है और इनकी भाषा पाली तथा प्राकृत (मिश्रित) है।

अनुवाद : "बुद्ध के शरीर की अस्थियों को सुरक्षित रखने के लिए एक चमकदार पेटी कुरु[5] द्वारा तथा कुरु के पिता व माता द्वारा और सिवका द्वारा तैयार करवाई गई। कुरु, जो बनव का पुत्र था, को तथा उसके पिता को अरहदिना (अरह दत्त) को पेटी व कलश दिये गये। (अभिलेखों) को अंकित कराने का कार्य राजा कुबिरका[6] द्वारा कराया।"

दक्षिणी ब्राह्मी – दूसरी श०

इस लिपि के शिला-लेख नासिक की गुफ़ाओं से प्राप्त हुये हैं। यह लेख एक ताम्र – दान – पत्र से गुफ़ा नं० ३ की दीवार पर उत्कीर्ण कराये गये थे। यह दान बौद्ध भिक्षुओं को दिया था जिसके द्वारा वे गुफ़ाओं में

1. Fleet's C. I. I. Vol. III – Page 1 – 17.
2. E I. Vol. II, Page – 328.
3. Vienna Oriental Journal. Vol. VI, Page – 148.
4. "By the father of Kura, the mother of Kura, Kura (himself) and Shiva (has been ordered) the preparation of a Casket and (has been given) a box of crystal in order to deposit some relics of Buddha. By Kura, the son of Banava, associated with his father (has been given) the casket by the committee of the venerable Arahadina (Arhadatta was given) a casket and a box. The work (is) by him, by whom king Kubiraka caused the carving to be done."
5. कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।
6. कुबिरका (ई० पू० ९० – ८०) का काल मान लिया गया, प्रमाणित नहीं है।

दक्षिणी ब्राह्मी -- ई० पू० दूसरी श०

अ आ उ ओ क ख ग घ च छ ज

ठ ण त थ द ध न प फ ब भ म

य र ल व ष स ह ळ का खा

जा दा ता पा रा कि ठि नि पि बि

ळि षी णी कु खु जु तु पु बु

मु जू बू के खे जे को गो

टो णो दो नो पो बो रो लो सो गं

फलक संख्या – ४४

दक्षिणी ब्राह्मी के अभिलेख (सं० १, २, ६)

कर पि तुनो च करमा तु च कुरष च

सि वं का च मजुसं पणति फाळिग

षुमुगं च बुधसरि रानं निखेतु ब न व

पुतष कुरष षपितुकषम जुस ⁝ उतारो

पिगह पु तो कणि ठो ⁝ अरह दिनानं गो

ठि या मजुस च षमु गो च तेनकम

ये न कुबिर को राजा अं कि

फलक संख्या – ४४ क

निवास कर सकें। दान कर्ता थे सातवाहन वंशीय राजा वाशिष्ठीपुत्र पुळमायी द्वितीय (१३०–१५५ ई०),[1] जिन्होंने अपने राज्य काल के उन्नीसवें वर्ष (१४९ ई०) में उत्कीर्ण करवाया। इसका सर्वप्रथम रहस्योद्घाटन भण्डारकर द्वारा १८७४ में प्रकाशित[2] हुआ। तदनन्तर ब्यूलर ने इसका अनुवाद भगवानलाल इन्द्रजी द्वारा तैयार की गई छापों से किया और जिसका सम्पादन ई० सेनार्ट[3] ने किया।

इस लेख के वर्ण तथा उनके नीचे उस लेख की एक पंक्ति उदाहरणार्थ दे दी गई है। फ. सं. ४५ उसका लिप्यन्तर निम्नलिखित है :—

"सिद्धं रञो वासिठिपुतस सिरि पुळमायि संवछरे एकुन वीसे (१६) गिम्हाणं परवे बितीये २ दिवसे तेरसे (१३) राज रञो गोमती पुतस हिमवत मेरु मदर पवत……"

अनुवाद : "सफल हो ! (शुभकामना) वाशिष्ठपुत्र राजा श्री पुळमायी (पुलमावी) जो ग्रीष्म के तेरहवे काल दिन, दूसरे पखवाड़े और अपने राज्य के उन्नीसवें वर्ष, महाराजा गौतमी पुत्र श्री सातकर्णी तथा माता, जो हिमवत, मण्डार तथा मेरू पर्वतों के समान शक्तिवान् थे।"

दक्षिणी ब्राह्मी – तीसरी श०

१८८२ में डा० बर्गेस को जग्गयापेट (कृष्णा जनपद – आन्ध्र) के एक स्तूप से तीन अभिलेख, जो एक दूसरे से समानता रखने वाले थे प्राप्त हुये। इन अभिलेखों में कुछ स्तम्भों के विषय में उल्लेख था। यह स्तम्भ एक बौद्ध कलाकार द्वारा इक्षवाकु[4] राजा वीर पुरुषदत्त के राज्य काल में तीसरी श० में स्थापित किये गये थे। इन्हीं अभिलेखों का अनुवाद ब्यूलर[5] ने किया था। इनके वर्ण सुलेख में उत्कीर्ण किये गये थे।

'फ० सं० – ४६' में ऊपर एक वर्णमाला दी गई है तथा नीचे अभिलेखों की एक पंक्ति का प्रतिदर्श दिया गया है जिसका अनुवाद निम्नलिखित है :—

"सफल हो ! (जय हो) मढार जाति की रानी व उसका महान् शक्तिमान् इखाकु (इक्षवाकु) राजा पुरुषदत (पुरुषदत्त), जिसने वर्षा ऋतु के छठवें पखवाड़े के दसवें दिन तथा (राजा) के राज्य काल के बीसवें वर्ष……"

दक्षिणी ब्राह्मी – चौथी श०

दक्षिण भारत के पूर्वी तट पर ईसा की दूसरी शताब्दी में पल्लव वंश की नींव पड़ी। कांजीवरम् (कांची या दक्षिण काशी) इस राज्य की राजधानी थी। तब इस प्रदेश का नाम तोण्डेय नाडु था। चुटु

1. Sircar, D. C. : Select Inscriptions.........(Note) page – 203.
   Yazdani : The Early History of Deccan – page 107 के अनुसार पुळमायी का काल ८६ – ११४ ई० हैं।
   Smith : The Early History of India, page – 102 के अनुसार पुळमायी काल २३८ – २७० ई० है।
2. Bhandarkar : Transactions of London Congress, page – 306.
3. Senart. E. : E. I. Vol. VIII, page – 59.
4. इक्षवाकु (अभिलेख में इखाकु) एक उत्तरी भारत की आर्य जाति थी, जिसने दक्षिण – कोसल के नाम से एक राज्य स्थापित किया था और उसी जाति का पुरुषदत्त प्रथम राजा था। यही जाति बाद में चालुक्य वंश के नाम से प्रसिद्ध हुई।
5. Bühler : I. A. Vol. XI, page – 256.

दक्षिणी ब्राह्मी -- दूसरी श०

अ	क	ज	ढ	न	र	मा	सि	सु
आ	ख	झ	ण	प	ल	वा	वी	लु
इ	ग	ञ	त	ब	व	गि	कु	मी
उ	घ	ट	थ	भ	स	डि	खु	सू
ए	च	ठ	द	म	ह	रि	तु	खे
ओ	छ	ड	ध	य	ळ	यि	नु	ले

सि द्धं र ओ वा सि ठि पु त स सि रि पु ळ मा यि स

सं व छ रे ए कु न वी से १०+६ गि म्हा णं प खे बि

ती ये २ दि व से ते र से १०+३ रा ज र ओ गो त मी

पु त स हि म व त मे रु म द र प व त.....

फलक संख्या – ४५

दक्षिणी ब्राह्मी -- चौथी श०

अ आ इ उ ए

क ख ग घ च छ ज

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प प फ ब भ म

य र ल व श स

ह म् का गा वि कु गु गो

सि द्ध म् कां ञ्चि पु रा

फलक संख्या – ४७

पल्लव इस पल्लव वंश का संस्थापक था। स्कन्द नाग द्वारा यह प्रदेश उसको उत्तराधिकार में मिला था। तदोपरांत विरूकुरू पल्लव तथा स्कन्द वर्मन राजा हुये। प्रारम्भिक राजा तो आन्ध्र राज्य के सामन्त के रूप में रहे परन्तु तीसरी शताब्दी में आन्ध्र का पतन होने से पल्लव वंश स्वतंत्र हो गया। तत्पश्चात् पूरे दक्षिण पर इनका अधिकार हो गया। इस वंश का पहला स्वतंत्र राजा सिंह वर्मा था जिसका पुत्र शिवस्कन्द वर्मा[1] बड़ा प्रतापी राजा था। इसने चतुर्थ शताब्दी के आरम्भ में कृष्णा नदी तक विजय करके सात वर्ष (१२२ से १२८ तक)[2] राज्य किया और अश्वमेध आदि कई यज्ञ किये। इनने जैन धर्म अपनाया था परन्तु सातवीं शताब्दी में यहाँ के राजा शैवधर्म अनुयायी हो गये थे जिन्होंने जैनियों पर बड़ अत्याचार किये। इस वश का अंतिम नरेश अपराजित था।

'फ० सं० – ४७' पर दी गई ब्राह्मी की वर्णमाला हरिहड़गल्ली से प्राप्त पल्लव वंशी राजा शिवस्कन्द वर्मा के दान पत्र से तैयार की गई है[3]। इसमें 'इ' तथा 'थ' की बिन्दियों के स्थान पर '+' चिह्न का प्रयोग किया गया है।

दक्षिणी ब्राह्मी – पाचवीं श०

वाकाटकवंश[4] की नींव विन्ध्य शक्ति ने २७५ ई० में डाली। यह सातवाहन नरेशों के अधीन बरार का राज्याधिकारी था। उनके पतन के पश्चात् विन्ध्य शक्ति स्वतंत्र हो गया। इसने २५५ से २७५ ई० तक राज्य किया। उसका पुत्र प्रवर सेन प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। तदन्तर उसके पुत्र रुद्रसेन प्रथम ने ३६० ई० तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वीसेन प्रथम शासक बना। फिर उसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय राजा बना। इसका विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती से सम्पन्न हुआ। रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु ३९० ई० में हो गई तदन्तर उसका पुत्र प्रवरसेन द्वि० ४१० में गद्दी पर बैठा और ४४० तक राज्य किया। उसके मरणोपरांत नरेन्द्रसेन राजा बना और ४६० तक शासन किया। तत्पश्चात् पृथ्वीसेन द्वितीय शासक बना जो इस वंश का अंतिम राजा था। फिर राज सत्ता बसीम शाखा के सर्वसेन राजा को पहुँच गई।

ददिया से तथा छिनचाड़ा जनपद के सियोनी ग्राम से कई ताम्र – दान – पत्र[5] १८७५ से १८८० तक प्राप्त हुये। यहाँ दूदिया के चार – पत्रों का विवरण है राजा प्रवरसेन द्वितीय ने अपने राज्य के तेइसवें वर्ष में उत्कीर्ण करवाये जिनमें भूमि – दान का वर्णन है। यह लिपि मध्य – प्रदेश की चौकोर – शिरों वाली एक अनोखे प्रकार की है। इन दान – पत्रों को हुल्त्श ने प्राप्त किया, कलीहार्न ने सम्पादन किया और १८८३ में ब्हूलर ने अनुवाद किया। इनकी भाषा प्राकृत – मिश्रित संस्कृत थी और चारों में २९ पंक्तियाँ थीं। इसकी वर्णमाला तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ४८' पर दिये गये हैं।

कुटिल लिपि (छठीं से नवीं श० तक)

हर्ष वर्धन का जन्म ५९० ई० में हुआ। हर्ष का बाल्यकाल मालवा नरेश के दो पुत्रों के साथ थानेश्वर में व्यतीत हुआ। ६०५ ई० में उसका बड़ा भाई राज्यवर्धन सिंहासनारूढ़ हुआ। जब मालवा के राजा देवगुप्त

1. 'वर्मन' भी लिखा जाता है।
2. E. I. Vol. 1, page – 6.
3. Yazdaui : The Early History of Deccan.
4. Ibid, page – 177.
5. E. I. Vol - III - page 258.

दक्षिणी ब्राह्मी -- पांचवीं श०

फलक संख्या – ४८

ने मौखरी राज्य पर आक्रमण कर ग्रह वर्मन की हत्या कर दी जो उसका बहनोई भी था तब देवगुप्त को दण्ड देने हेतु वह एक सेना लेकर चल पड़ा। देवगुप्त को परास्त कर दिया परन्तु शशांक ने उसका वध कर दिया। तदोपरांत हर्षवर्धन गद्दी पर बैठा।

उसने शशांक को दण्ड देने के लिये एक विशाल सेना के साथ कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। शशांक भाग गया। अपने बहनोई के कोई सन्तान न होने के कारण वह कन्नौज का भी नरेश बना दिया गया। अब हर्ष की शक्ति इतनी बढ़ गई कि वह भारत को फिर एक सूत्र में बाँध सकता था।

इसी उद्देश्य से उसने वलभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय को अपने अधीन कर लिया। दक्षिण में वह नर्मदा के आगे न बढ़ सका फिर उत्तरी भारत पर उसका अधिकार हो गया। अब वह एक विशाल साम्राज्य का सम्राट था। वह एक महान् विजेता ही नहीं अपितु कुशल शासक भी था। उसके अन्दर धार्मिक सहिष्णुता भी थी और शैव, वैष्णव व बौद्ध आदि धर्मों को राजा का आश्रय तथा संरक्षण प्राप्त था।

ह्वान सांग चीनी यात्री इसी हर्ष के काल में भारत आया था। इसी चीनी यात्री के विवरण द्वारा इस समय के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा। लगभग ४२ वर्ष राज्य करने के पश्चात् हर्ष का स्वर्गवास हो गया। कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण राज्य छिन्न भिन्न हो गया और नये राज्यों का निर्माण होने लगा।

कुटिल लिपि का उद्भव गुप्त लिपि द्वारा हुआ। यह गुप्त लिपि का परिवर्तित रूप है।

उत्तर प्रदेश के पीलीभीत ज़िले के देवल गाँव में ९९२ में एक ताम्र-पत्र प्राप्त हुआ जिस पर इस लिपि का नाम कुटिलाक्षरणि अंकित था। मेवाड़ से राजा अपराजित के समय के अभिलेखों में जो सातवीं शताब्दी के मध्य में पाये गये, विकटाक्षरणि अंकित था। इस लिपि के अक्षर कुटिल व विकट थे इसलिये कुटिल लिपि नाम पड़ा। हर्षवर्धन काल के ताम्र पत्र[1] से उपलब्ध वर्णमाला तथा कुछ शब्द दिये गये हैं (फ० सं० – ४९)।

तमिळ लिपि

तमिळलिपि के विषय में तमिळनाडु के विद्वानों का मत है कि यह लिपि द्रविड़ भाषा की लिपि थी जो ब्राह्मी के पूर्व भी दक्षिण में प्रचलित थी। परन्तु जब ब्राह्मी लिपि का प्रभाव बढ़ा तब इसमें कुछ परिवर्तन आ गये जैसा कि संसार की अन्य लिपियों में दूसरी लिपियों के सम्पर्क में आने से बहुधा आ जाया करते हैं।

तमिळ लिपि में १२ स्वर तथा १८ व्यंजन हैं। इस लिपि में चार चिह्न ऐसे हैं जो दो-दो चिह्नों का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ 'क' का चिह्न 'ग' का भी कार्य करता है। इसी प्रकार 'ट' का 'ड' के लिये, 'त' का 'द' के लिये तथा 'प' का 'ब' के लिये भी प्रयोग किये जाते हैं। इसमें 'ए' और 'ओ' के तीन उच्चारण हैं वरन् हिन्दी में केवल दो हैं। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करने के लिये इस लिपि में 'ज, ष, स, ह और क्ष' जोड़ दिये गये हैं जो बहुधा प्रयोग में नहीं आते। इस भाषा के कुछ चिह्नों के उच्चारण के लिये देवनागरी में चिह्न उपलब्ध नहीं हैं।

इस लिपि में आधे अक्षरों का प्रयोग नहीं होता। जैसे देवनागरी 'अक्का' शब्द इस प्रकार लिखेंगे परन्तु तमिळ में 'अक्का' लिखेंगे। इसमें 'ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ तथा भ' महाप्राण नहीं होते।

1. E I. Vol. IV–page 210.

कुटिल लिपि -- छठी से नवीं श० तक
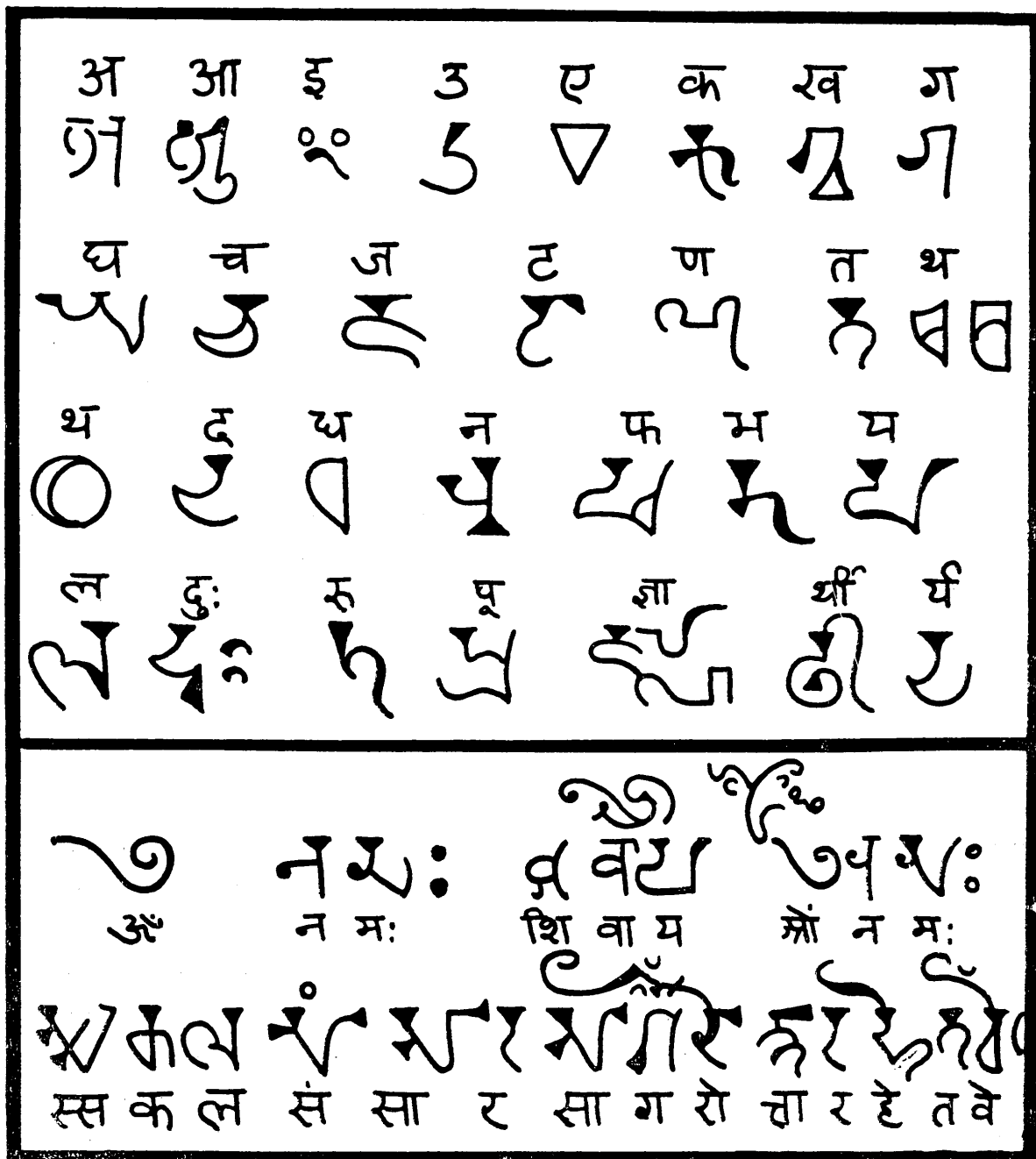
फलक संख्या – ४९

तमिळ लिपि सातवीं श०

पल्लव वंश का तीसरा काल ५९० ई० में – सिंह विष्णु द्वारा स्थापित होकर आरम्भ हुआ। इसका पुत्र महेन्द्र वर्मन सातवीं शताब्दी में राजा हुआ। महेन्द्र पहले जैन धर्म का अनुयायी था परन्तु बाद में शैव हो गया। जैनियों को राज्य से निष्कासित करा दिया। उसके पश्चात् उसका पुत्र नरसिंह वर्मन प्रथम राजा हुआ। चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय ने कांची पर आक्रमण किया। पुलकशिन युद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् पल्लवों की सत्ता सम्पूर्ण दक्षिण भारत में स्थापित हो गई। नरसिंह वर्मन ने बहुत से मन्दिरों का निर्माण करवाया। उसने महामल्लपुरम नगर बसाया और उसको मन्दिरों से विभूषित किया। इसकी मृत्यु के पश्चात् महेन्द्र वर्मन द्वितीय, नरसिंह वर्मन द्वितीय, नन्दिवर्मन तथा उसका पुत्र दन्तिवर्मन आदि कई राजा हुये। इस वंश का अंतिम राजा अपराजित वर्मन था जिसने ८७६ से ९१५ तक राज्य किया। चोल राजाओं द्वारा इस राज्य का अंत हो गया।

तमिळ लिपि की वर्ण माला[1] दन्तिवर्मन के दानपत्रों से तैयार की गई है जो 'फ० सं० – १५०' पर दी गई है।

तमिळ लिपि का विकास

'फ० सं० – ५१' पर तमिळ लिपि का विकास दिया गया है। दक्षिण भारत की सभी लिपियों का विकास भट्टीप्रोलु से (ईसा पूर्व की दूसरी श०) प्राप्त दक्षिण – ब्राह्मी[2] से हुआ है। लगभग सातवीं शताब्दी से इस लिपि की झलक दिखाई पड़ने लगी तदनन्तर शनैः शनैः इसका विकास निम्नलिखित शताब्दियों में, जो नीचे दिये गये ख़ानों में दिया गया है, होता रहा :—

१. **देवनागरी :** के अक्षर ध्वनि के संकेतानुसार दिये गये हैं।

२. **सातवीं श० के वर्ण :** पल्लव वंशीय राजा परमेश्वर वर्मन प्रथम (६७० – ६९५ ई०) – कुरम[3] के अभिलेखों से लिये गये हैं।

३. **आठवीं श० के वर्ण :** पल्लव वंशीय राजा नन्दी वर्मन (७२७ – ७८२ ई०) के अभिलेखों[4] से लिये गये हैं।

४. **दसवीं श० के वर्ण :** राष्ट्रकूट वंशीय राजा कन्नरदेव नामक कृष्ण राजा तृतीय (९३९ – ९६७ ई०) के त्रिक्कोवलूर के अभिलेख[5] से लिये गये हैं।

५. **ग्यारहवीं श० वर्ण :** चोल वंशीय राजा परकेशरी वर्मन (१०१२ – १०४१ ई०) के तिरुमलाइ – शिला – लेखों[6] से लिये गये हैं।

६. **तेरहवीं श० के वर्ण :** तैलंग राजा मनोहरी की जेल – यात्रा से सम्बन्धित एक शिला – लेख[7] से

1. E. I. Vol. I.– page 157.
2. फ० सं० – ४४, ४४ क।
3. South Indian Inscriptions – Vol. III, Page – 95.
4. South Indian Inscriptions – Vol. Page – 172.
5. E. I. Vol. VII. Page – 144.
6. E. I. Vol. IX, Page – 232.
7. E. I. Vol. VII, Page – 194.

तमिळ लिपि -- सातवीं श०

अ	आ	ई	उ		
क	ङ	च	ट	ण	
त	न	प	म	य	
य	र	ल	ळ	ऴ	ऱ
ण़	म्	का	ना	मा	ला

फलक संख्या – ५०

तमिळ लिपि का विकास

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
अ									ञ								
आ									ट								
इ									ण								
ई									त								
उ									न								
ऊ									प								
ए									म								
ऍ									य								
ऐ									र								
ऑ									ल								
ओ									व								
औ									ळ								
क									ऴ								
ङ									ऱ								
च									ण़								

फलक संख्या – ५१

लिये गये हैं, जो मइनपगान (ब्रह्मा देश) से १९०२ में ता – सीन – को के द्वारा प्राप्त हुआ और जिसमें पगान के राजा अनावृत के आक्रमण से राजा मनोहरी का १०५७ में परास्त होना उत्कीर्ण है।

७. **चौदहवीं श० के वर्ण :** विजयनगर के प्रथम राजा वीरुपाक्ष (१३७९ – १४०६ ई०) के तीन ताम्र – दान – पत्रों[1] से, जो शोरइक्कवूर रेलवे स्टेशन (तंजवूर जनपद) से प्राप्त हुये और जिनकी तिथि २० मार्च १३८७ है, लिये गये हैं।

८. **पन्द्रहवीं श० के वर्ण :** एक महासामन्त महामण्डेश्वर वालक्कायम के दान – पत्र[2] से, जो श्रीरंगम द्वीप के जम्बूकेश्वर उपनगर से प्राप्त हुआ और जिसकी तिथि ३ फरवरी १४८२ है, लिये गये हैं।

९. **आधुनिक तमिळ के वर्ण :** दिये गये हैं। आरम्भ काल में स्वरों की संख्या बहुत कम थी।

वट्टेलुत्तु लिपि – सातवीं श०

दक्षिणी – ब्राह्मी से तमिळ की दो शाखाओं का उद्भव हुआ। चेर – पाण्ड्य – लिपि जिसको वट्टेलुत्तु के नाम से सम्बोधित किया जाता था तथा दूसरी पल्लव – चोल – लिपि जिसको कोलेलुत्तु के नाम से पुकारा जाता था। इस प्रकार की पृथकता लगभग सातवीं श० के आरम्भ में प्रकट हुई।

जब शिलालेखों व ताम्रपत्रों में अक्षर उत्कीर्ण किये जाते थे तब अक्षरों को गोलाकार बनाना कठिन होता था। इस कारण कोलेलुत्तु का प्रयोग अधिक होने लगा। वट्टेलुत्तु का प्रयोग हस्त – लिखित ग्रन्थों के लिये होने लगा। यह ग्रन्थ ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे जिसमें सीधी पंक्तियों में लिखने से ताड़पत्रों के फटने का भय रहता था। इस कारण लेखक अक्षरों को गोलाकार बनाकर, बिना लेखनी को बार बार उठाये लिखा करते थे। इससे अक्षरों की सुन्दरता बढ़ती थी तथा लेखक की प्रशंसा होती थी। जब जन साधारण को इस लिपि के पढ़ने में कठिनाई प्रतीत हुई तो चोल महाराजा राजराज महान् ने वट्टेलुत्तु को समाप्त कर कोलेलुत्तु को अधिक प्रयोगात्मक बनाया। वट्टेलुत्तु का प्रयोग भी हस्तलिखित पुस्तकों में १८वीं शताब्दी के आरम्भ तक चलता रहा। तमिळ, ग्रन्थ, मलयालम व तुळु (जिसका प्रयोग कुर्ग की रियासत में होता है) आदि लिपियाँ सब तमिळ वंश की ही हैं।

वट्टेलुत्तु लिपि सातवीं से चौदहवीं श० तक के अभिलेखों में सुदूर दक्षिणी भागों में प्रचलित थी। 'फ० सं० – ५२' पर वट्टेलुत्तु लिपि के वर्ण दिये गये हैं जो दो ताम्र – पत्रों से लिये गये हैं। इन ताम्र – पत्रों पर उस दान का वर्णन, कोचिन के राजा भास्कर रविवर्मन (१०४७ – ११०६ ई०) ने उत्कीर्ण करवाया, जो उसने जोज़ेफ़ रब्बन को प्रदान किया था। यह दान ताम्र – पत्र[3] गुण्डर्ट को मुइरुकोडु (आधुनिक कोडन्नल्लूर) से १८८४ में यहूदियों द्वारा प्राप्त हुये।

ग्रन्थ लिपि – सातवीं श०

पल्लव वंश का संस्थापक सिंह विष्णु था। उसका उत्तराधिकारी महेन्द्र वर्मन हुआ जिसने ६०० से ६३० ई० तक कांची की राजधानी से राज्य किया। वह जैन धर्म का अनुयायी था परन्तु शैव-संत अप्पर के

1. E. I. Vol. VIII, Page – 302.
2. E. I. Vol. III, Page – 72.
3. E. I. Vol III, Page – 66.

वट्टेलुत्तु लिपि -- ग्यारहवीं श०

अ	आ	इ	उ	ए	क
ङ	च	ञ	ट	ण	त
न	प	म	य	र	ल
व	ळ	ऴ	ण़	टा	मा
ति	ड़ु				

फलक संख्या – ५२

(जो स्वयं पहले जैन था) प्रभाव में आकर शैव हो गया। उसके उपरान्त नरसिंह वर्मन राजसिंहासन पर बैठा और ६६८ ई० तक शासन किया। बड़ा प्रतापी व साहित्य प्रेमी नरेश था। उसने केरल, पाण्ड्य चालुक्य व सिंहल नरेशों को परास्त किया परन्तु चालुक्य विक्रमादित्य ने इसको परास्त किया। उसी के शासनकाल में चीनी यात्री हुयेनत्सांग भारत आया था। तदन्तर महेन्द्र वर्मन द्वितीय ने ६९० तक, नरसिंह वर्मन द्वितीय ने ६९० से ७१५ ई० तक शासन किया। इसके पश्चात् परमेश्वर वर्मन प्रथम व द्वितीय ने ७५० ई० तक राज्य किया। ७५० में नन्दि वर्मन पल्लव मल्ल ने राजसिंहासन हस्तगत किया और ७९५ ई० तक शासन किया। इसी के शासनकाल में गुरु शंकराचार्य ने कांची प्रदेश के बौद्धों को ७८८ में बाध्य कर दिया कि वे श्री लंका को प्रस्थान करें। इसके पश्चात् कई राजा शासक बने।

ग्रन्थलिपि का आविष्कार लगभग छठीं श० के अन्त में ब्राह्मणों द्वारा किया गया जो संस्कृत में ग्रन्थों को लिखना चाहते थे, क्योंकि तमिळ लिपि में संस्कृत भाषा के उच्चारणार्थ वर्ण नहीं थे। इसी कारण इस लिपि का नाम ग्रन्थ पड़ा।

'फ० सं० ५३' की वर्णमाला[1] राजा परमेश्वर वर्मन (६७० – ६९५ ई०) के ताम्र – दान- – पत्रों से तैयार की गई है।

ग्रन्थ लिपि – पाण्ड्य तेरहवीं श०

पाण्ड्य वंश का राज्य ईसा की दूसरी शताब्दी में स्थापित हुआ। इसमें आधुनिक मदुरा, तिन्नेवेल्ली तथा ट्रावनकोर के ज़िले सम्मिलित थे। इसकी राजधानी मदुरा थी। इस वंश का प्रथम नरेश नेडुम चेलियान था। ८६२ में पल्लव राजा अपराजित ने इस वंश को पराजित किया। इस वंश के १७ नरेशों ने ११०० से १५६७ ई० तक शासन किया। इस वंश का सबसे प्रतापी नरेश जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्य था। उसने १२५१ से १२७१ तक शासन किया। १३१० में पाण्ड्य राज्य अलाउद्दीन खिलजी के सेना नायक के आक्रमण द्वारा पराजित हुआ। अब इस राज्य में छोटे छोटे सामन्त रह गये। १३७८ में यह राज्य विजय नगर के राज्य में मिला लिया गया।

'फ० सं० – ५४' पर श्रीरंग के अभिलेखों[2] से तैयार की गई वर्ण माला तथा कुछ शब्द, जो सुन्दर पाण्ड्य ने अंकित करवाये थे, दिये गये हैं। भाषा संस्कृत है।

ग्रन्थ लिपि का विकास

ग्रन्थ लिपि का विकास दक्षिणी ब्राह्मी से संस्कृत के ग्रन्थ लिखने के कारण हुआ। निम्नलिखित खानों में इसके विकास का विवरण दिया गया है (फ० सं० – ५५) :—

१. **देवनागरी के वर्ण :** दिये गये हैं।
२. **सातवीं श० के वर्ण :** पल्लव वंशीय राजा परमेश्वर वर्मन प्रथम (६७० – ६९५ ई०) के सात, ताम्र – दान – पत्रों[3] से, जो कुरम ग्राम से प्राप्त हुए, लिये गये हैं।

---

1. Hultzsch : S.I.I. Vol. II, Part – III, Plate – 11.
2. E. I. Vol. III, Page –14.
3. S. I. I. (Hultzsch). Vol. II, Page – 201,

ग्रन्थ लिपि -- सातवीं श०

अ आ इ ई उ ए क ख

ग घ च ज ट ड ण त

थ द ध न प फ ब

भ म य र ल व श ष

स ह ह ळ मा ती कु पु भृ

नर सिं ह व र्म्म णः

फलक संख्या – ५३

ग्रन्थ लिपि -- तेरहवीं श०

अ आ इ उ ऊ लृ ओ क ख

ग घ ङ च ज ट ठ ड ण

त थ द ध न प फ ब भ

म य य र ल व श ष स

ह ळ रा कि री मु मू धै धै क्ष

हरि ओम् स्व स्ति श्रीः

फलक संख्या – ५४

३. **आठवीं श० के वर्ण :** पल्लव वंशीय राज नन्दी वर्मन द्वितीय (७३२ – ७९६ ई०) के ग्यारह ताम्र – दान – पत्रों[1] से, जो पाण्डीचेरी के एम० जुलिस द्वारा १८७९ में कषकुडी ग्राम से प्राप्त हुए, लिये गये हैं ।

४. **नवीं श० के वर्ण :** पल्लव वंशीय राजा नन्दी वर्मन (७४१ – ८०६ ई०) के पाँच ताम्र – दान – पत्रों[2] से, जो उदयइन्द्रम से १८५० में प्राप्त हुए, लिये गये हैं ।

५. **दसवीं श० के वर्ण :** गंग वंशीय राजा पृथ्वीपति द्वितीय (९०५ – ९३८ ई०) के सात ताम्र – दान-पत्रों[3] से प्राप्त हुये, लिये गये हैं ।

६. **ग्यारहवीं श० के वर्ण :** चोल वंशीय राजा राजाधिराज (१०४४ – १०५४ ई०) के शिला – लेख[4] से, जो मिण्डीगल – कोलर जनपद के सोमेश्वर के मन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण है और जिसका काल १०४७ – ४८ अंकित है, लिये गये हैं ।

७. **बारहवीं श० के वर्ण :** बाण वंशीय राजा विजय बाहू विक्रमादित्य द्वितीय के चार ताम्र – पत्रों[5] से, जो उदयइन्द्रम ग्राम से टी० फॉल्कीज़ पादरी द्वारा प्राप्त हुए, लिये गये हैं ।

८. **तेरहवीं श० के वर्ण :** राजा सुन्दर पाण्ड्य (१२५० – १२६७) के एक दान – पत्र[6] से, जो श्रीरंगम द्वीप के रंगनाथन के मन्दिर से प्राप्त हुआ, दिये गये हैं ।

९. **पन्द्रहवीं श० के वर्ण :** विजयनगर के राजा बुक्का द्वितीय (१४०४ – १४२३ ई०) अभिलेख[7] से, जो वेप्पमबट्टू के वीरुपक्ष – मन्दिर की दीवार (वेलूर) पर उत्कीर्ण किया गया था, लिखे गये हैं ।

पश्चिमी लिपि – छठो श०

गुप्त वंश के पतन के कारण उसके प्रांतपति शनैः शनैः स्वतंत्र होने लगे । उन्हीं प्रांतपतियों में से एक भटार्क था जो काठियावाड़ (गुजरात) का प्रांतपति था । उसने वलभी वंश (४९० – ७७० ई०) की नींव पाँचवीं श० के अन्त में डाली । इस राज्य का मुख्य नगर वलभी (आधुनिक वाला) होने के कारण राजवंश का नामकरण भी वलभी वंश हो गया । इसको मैत्रिक जाति के कारण मैत्रकवंश भी कहते हैं । यह दो शाखाओं में विभाजित हो गया । काठियावाड़ जिसका प्रथम नरेश द्रोणसेन था तथा दूसरा पश्चिमी मालवा जिसका प्रथम नरेश शिलादित्य था ।

द्रोणसेन ने ५०६ से ५२५ ई० तक राज्य किया तदनन्तर उसका भाई ध्रुवसेन प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ जिसने ५२५ से ५४५ तक राज्य किया । तत्पश्चात् धरसेन प्रथम गद्दी पर बैठा जिसने ५४५ से ५५९ तक राज्य किया । उसके स्वर्गवास होने पर उसका भतीजा गुहासेन शासक बना जिसने ५६७ ई० तक शासन किया । तदोपरांत धरसेन द्वितीय राजा हुआ ।

1. S. I. I. (Hultzsch) Vol. II, Page – 235.
2. I. A. Vol. VIII, Page – 274.
3. S. I. I. Vol. I, Page – 172.
4. E. I. Vol. IV, Page – 216.
5. E. I, Vol. III, Page – 76.
6. E. I. Vol. III, Page – 14.
7. S. I. I. Vol. I, Page – 80.

पश्चिमी लिपि -- छठीं स०

अ आ इ उ ए क ख ग घ च

ज ट ड ण त थ द ध न

प फ ब भ म य र ल

व श स ह जा ना ति जी णीं

तु मु प्र भृ कृ भू गै गो लौ क्षा

ॐ स्वस्ति फ क प्र स्त्र व णा त्प्र कृ ष्ट क -

र्म्मा म्भो ता म्पु द या भि भू ता ----

फलक संख्या – ५६

वलभी वंश के कई ताम्र – दान – पत्र प्राप्त हुए हैं जिनके अभिलेखों में काफ़ी समानता मिलती है। इस लिपि के दो ताम्र – दान – पत्र[1] जिनमें ३६ पंक्तियाँ उत्कीर्ण थीं, जूनागढ़ रियासत के दीवान ने फ़्लीट को १८८५ में भेंट – स्वरूप दीं। यह दो दान – पत्र राजा ध्रुवसेन द्वितीय[2] (५३९ – ५६७ ई०) ने उत्कीर्ण करवाये थे। इन्हीं दो दान – पत्रों के वर्ण तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ५६' पर दिये गये हैं।

कन्नड़ लिपि – छठी श०

कदम्ब वंश की नींव डालने वाला एक ब्राह्मण था जिसका नाम मयूरशर्मन (३४५ से ३६० तक राज्य किया) था। जब यह कांचीपुरम् में वेदों के अध्ययन के लिए पहुँचा तो इसकी लड़ाई वहाँ के एक रक्षक से हो गयी जिसके कारण वह वन में भाग गया और जंगली जातियों को अपने अधीन कर एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया।

उसी वंश में एक राजा शान्तिवर्मन था जिसने ४५० से ४७५ तक राज्य किया। उसने दक्षिण प्रदेश में अपने भाई कृष्ण वर्मन को प्रांतपति नियुक्त करके भेजा जिसको पल्लव नरेशों से निरन्तर युद्ध करना पड़ा। तत्पश्चात् उसका पुत्र विष्णु वर्मन उसी प्रकार युद्ध में रत रहा। शान्ति वर्मन के मरणोपरांत उसका पुत्र मृगेश – वर्मन सिंहासनारूढ़ हुआ। इस वंश का अन्तिम नरेश हरी वर्मन (५३८ – ५५०) था।

तत्पश्चात् यह वंश दो भागों में विभाजित हो गया। देवगिरि इस वंश की राजधानी थी। कदम्ब वृक्ष को पूजने के कारण यह कदम्ब वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

'फ० सं० – ५७' पर दिये गये वर्ण तथा कुछ शब्द देवगिरि से प्राप्त कदम्ब वंशीय राजा मृगेश वर्मन के दानपत्रों के अभिलेखों[3] से लिये गये हैं।

कन्नड़ लिपि का विकास

सातवीं श० से, जब कि वेंगी के चालुक्य राजाओं का राज्य था, बारहवीं श० तक कन्नड़ व तेलुगु का प्रयोग दोनों भाषाओं के लिए एक ही लिपि में रहा परन्तु तेरहवीं श० में इसका प्रयोग पृथक् हो गया जो शनैः शनैः बढ़ता ही रहा। यह अन्तर अठारहवीं श० के आरम्भ में परिपक्व हो गया क्योंकि मुद्रण कला इस पृथकता में बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

तेलुगु – कन्नड़ लिपियों में अधिक अन्तर नहीं है। तेलुगु लिपि जानने वाला कन्नड़ लिपि को भली भाँति पढ़ सकता है यह अलग बात है कि वह भाषा का ज्ञान न रखता हो। इसके विकास का वर्णन निम्न-लिखित तेरह ख़ानों में दिया गया है :—(फ० सं० – ५८, ५८ क)

१. **देवनागरी लिपि के वर्ण** दिये गये हैं।
२. **ई० पू० की दूसरी श० के वर्ण**, जो भट्टीप्रोलु[4] के स्तूप से प्राप्त हुए, दिये गये हैं।
३. **दूसरी श० के वर्ण** : जो नासिक की गुफ़ाओं[5] से लिये गये हैं, दिये गये हैं।

---

1. Fleet : I. A. Vol. VIII, Page – 301.
2. Smith : Early History of India, Page – 308.
3. I. A. Vol. VII, Page – 35.
4. फ० सं० – ४४
5. फ० सं० – ४५

४. **दूसरी से चौथी श० तक के वर्ण :** पल्लव वंशीय युवराज शिवस्कन्दवर्मन (१७० – १७७ ई०) के दान – पत्रों[1] से, जो मइडवोलु – नर्सारावपेट तालुक, जनपद कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश से १८९९ में प्राप्त हुए और जिनकी भाषा प्राकृत थी, दिये गये हैं।

५. **पाँचवीं श० के वर्ण :** कदम्ब वंशीय राजा मृगेशवर्मन (४७५ – ४९० ई०) के तीन ताम्र – दान – पत्रों[2] से, जो देवगिरि से प्राप्त हुए, दिये गये हैं।

६. **छठी श० के वर्ण :** पश्चिमी चालुक्य वंशीय राजा मंगलेश (५९३ – ६१० ई०) के अभिलेखों[3] से, जो वातापी (बादामी), बीजापुर, की वैष्णव गुफ़ाओं में ५९८ ई० में उत्कीर्ण कराये गये, लिये गये हैं।

७. **सातवीं श० के वर्ण :** पूर्वी चालुक्य राजा मंगीयुवराज सर्वेलिकाश्रय (६७२ – ६९६ ई०) के दान – पत्र[4] से, जो चण्डलूर, जनपद नेल्लोर (आन्ध्र), से प्राप्त हुआ और जिसकी तिथि ६ मई ६७३ ई० सन् मानी गई है, लिये गये हैं।

८. **आठवीं श० के वर्ण :** पश्चिमी चालुक्य वंशीय राजा कीर्ति वर्मन द्वितीय (७४५ – ७५७ ई०) के पाँच ताम्र – दान – पत्रों[5] से, पूणें जनपद के केन्डूर ग्राम से भृंगारकर बाबा द्वारा लाकर डकन कालेज के प्रो० के० बी० पाठक को १९०२ में दिये गये और जिनका काल ७५० ई० माना गया, लिये गये हैं।

९. **नवीं श० के वर्ण :** राष्ट्रकूट राठौर वंशीय राजा गोविन्द राज तृतीय (७९२ – ८१४ ई०) के ८१३ ई० में उत्कीर्ण कराये गये पाँच ताम्र – दान – पत्रों[6] से, जो कड़ब ग्राम से प्राप्त हुए, लिये गये हैं।

१०. **ग्यारहवीं श० के वर्ण :** पूर्वी चालुक्य वंशीय राजा राजराज द्वितीय (१०१९ – १०६२ ई०) के ताम्र – दान – पत्र[7] से, जो ग्राम कोरुमिल्ली, राजमुन्द्री जनपद (आन्ध्र) से प्राप्त हुआ, लिये गये हैं।

११. **तेरहवीं श० के वर्ण :** होयसाल वंशीय राजा निरसिम्ह द्वितीय (१२२२ – १२३४ ई०) के अभिलेख[8] से, जो तिरुवेन्द्रम के मन्दिर की दीवार पर १२२२ में उत्कीर्ण कराया गया और जिसमें नौ पंक्तियाँ हैं, लिये गये हैं।

१२. **पन्द्रहवीं श० के वर्ण :** विजयनगर के राजा वीर विजयराय उडियार द्वितीय (१४०९ – १४२२ ई०) के एक दान अभिलेख[9] से, जो वेलूर के मन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण कराया गया था, लिये गये हैं।

नोट : जो ख़ाने ख़ाली हैं उनके अक्षर अभिलेखों में प्रयोग नहीं किये गये। आरम्भ काल में स्वरों की संख्या कम थी।

---

1. ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला – पृष्ठ ५८ – प्लेट १३.
2. I. A. Vol. VII – page 35.
3. I. A. Vol. X – page 158.
4. E. I. Vol. VIII – page 238.
5. E. I. Vol. V – page 204.
6. I. A. Vol. XII – page 14.
7. I. A. Vol. XIV – page 50.
8. E. I. Vol. VII – page 162
9. E. R. (1912) – page 60.

कन्नड़ लिपि का विकास

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
अ												ಅ
आ												ಆ
इ												ಇ
ई												ಈ
उ												ಉ
ऊ												ಊ
ऋ												ಋ
ए												ಎ
ऍ												ಏ
ऐ												ಐ
ऑ												ಒ
ओ												ಓ
औ												ಔ
क												ಕ
ख												ಖ
ग												ಗ
घ												ಘ
ङ												ಙ
च												ಚ
छ												ಛ
ज												ಜ
झ												ಝ
ञ												ಞ
ट												ಟ

फलक संख्या – ५८

कन्नड़ लिपि का विकास

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ठ												ಠ
ड												ಡ
ढ												ಢ
ण												ಣ
त												ತ
थ												ಥ
द												ದ
ध												ಧ
न												ನ
प												ಪ
फ												ಫ
ब												ಬ
भ												ಭ
म												ಮ
य												ಯ
र												ರ
ल												ಲ
व												ವ
श												ಶ
ष												ಷ
स												ಸ
ह												ಹ
ळ												ಳ
ळ												ೞ

फलक संख्या – ५८ क

तेलुगु लिपि

सर्वप्रथम तेलुगु भाषा, जो आन्ध्र प्रदेश की मुख्य भाषा थी, के लिए कन्नड़ लिपि का ही प्रयोग होता था। परन्तु ग्यारहवीं श० से इसके पृथक होने की सम्भावना लगने लगी और तेरहवीं श० के आते आते इसकी पृथकता स्पष्ट होने लगी।

दसवीं श० में इसका प्रयोग पूर्वी चालुक्य वंशीय राजाओं द्वारा किया गया। 'फ० सं० – ५९' पर दिये गये वर्ण व कुछ शब्द राजा भीम द्वितीय (९३५ – ९४६ ई०) के दान – पत्रों[1] से लिये गये हैं, जो पागनवरम् से प्राप्त हुए।

ग्यारहवीं श० के वर्ण व कुछ शब्द कोरुमेल्लि[2] से प्राप्त एक दान – पत्र से लिये गये हैं (फ० सं० – ६)।

तेरहवीं श० के वर्ण व कुछ शब्द **काकतिया** वंशीय राजाओं के दान – पत्रों[3] से तथा **चेब्रुलु** के शिलालेख से लिये गये हैं (फ० सं० – ६१)।

तेलुगु लिपि का विकास

तेलुगु लिपि का विकास दक्षिणी – ब्राह्मी द्वारा हुआ। सातवीं श० में इसकी झलक दृष्टिगोचर होने लगती है। इसका समावेश कन्नड़ लिपि में था परन्तु ग्यारहवीं से यह प्रथक रूप धारण करने लगी। निम्न-लिखित खानों में इसके विकास विवरण दिया गया है (फ० सं० – ६२)।

१. **देवनागरी के अक्षर** : दिये गये हैं।

२. **सातवीं श० के वर्ण** : राजा मंगी युवराज के अभिलेखों[4] से, जो चण्डलूर से प्राप्त हुये और जिनका काल ६७३ ई० माना गया है, लिये गये हैं।

३. **दसवीं श० के वर्ण** : राजा भीम द्वितीय नामक विष्णुवर्धन (९३५ – ९४६ ई०) के पाँच ताम्र – दान – पत्रों[5] से, जो पगनावरम से प्राप्त हुये, लिये गये हैं।

४. **ग्यारहवीं श० के वर्ण** : राजा प्रताप रुद्र प्रथम (१०६३ – १०९२ ई०) द्वारा दिये गये भूमि – दान के शिलालेख[6] से, जो अरलुरु से प्राप्त हुआ, लिये गये हैं।

५. **तेरहवीं श० के वर्ण** : काकतिया राजा गणपति (११९९ – १२६२ ई०) के शिला – लेख[7] से, जो चेबरूल, जिला कृष्ण के नागेश्वर मन्दिर में उत्कीर्ण है, लिये गये हैं।

६. **चौदहवीं श० के वर्ण** : सामंत राजा नामानायक के दानपत्रों[8] से, जो दोनेपुण्डी से प्राप्त हुये (संख्या पाँच थी) और जिनकी तिथि ३० अगस्त १३३८ थी, लिये गये हैं।

---

1. I. A. Vol. XIII, Page – 214.
2. E. I. Vol. XIV, Page – 50.
3. E. I. Vol. V, Page – 146.
4. E. I. Vol. IV, Page – 196.
5. I. A. Vol. VIII, Page – 214.
6. I. M. P. Vol. II, Page – 782.
7. E. I. Vol. V, Page – 146.
8. E. I. Vol. IV, Page – 356.

तेलुगु लिपि -- दसवीं श०

अ आ इ उ ए क क ख ग घ

च ज ट ड ण त थ द द

ध ध न फ प ब भ म य र

ल ल व व श ष स ह ळ

या से क्ष

स्व स्ति श्री म तां स क ल भु व न

फलक संख्या – ५९

तेलुगु लिपि -- ग्यारहवीं श०

अ अ आ आ इ ई उ ए क ख ग

घ च च छ ञ ट ट ठ ड ड ण

त थ द ध न प फ ब भ म म य

र ल ल व श ष स ह क्रो क्ष ष्णो

श्री धा म्नः पु रु षो त्त म

स्य म ह तो ना रा य ण स्य

फलक संख्या – ६०

तेलुगु लिपि -- तेरहवीं श०

अ आ इ ई उ ऊ ए ओ

क ख ग घ च छ ज झ

ट ड ढ ण त थ द ध न प फ

ब भ म य र ल व श ष

ह ळ ऱ का टा ला कि रि स

ए षां वं शे र घु णां

फलक संख्या – ६१

७. **पन्द्रहवीं श० के वर्ण :** विजयनगर के राजा अच्युत महाराज के ताम्र – दान – पत्र[1] से, जो कड़पा (आन्ध्र प्रदेश) से प्राप्त हुआ और जिसकी तिथि ५ अप्रैल १४४२ थी, लिये गये हैं।

८. **आधुनिक तेलगु के वर्ण :** दिये गये हैं।

बंगला लिपि बारहवीं श०

सेनवंश : का संस्थापक सामन्त सेन था। सेन लोग कर्नाटक (मैसूर) के मूल निवासी थे। वे जन्म से ब्राह्मण थे परन्तु कर्म से क्षत्रिय थे और सामन्त सेन स्वयं को चन्द्रवंशीय क्षत्रिय वीर सेन का वंशज मानता था। उसके पुत्र हेमन्त सेन ने एक छोटे से राज्य की स्थापना की। तत्पश्चात् हेमन्त सेन का पुत्र विजयसेन राजा बना और उसने १०९५ से ११५८ तक शासन किया। उसने अपने राज्य का विस्तार कामरूप, तिरहुत तथा कलिंग तक किया। यह शैव धर्म का अनुयायी था। इसने देवपाड़ा ज़िला राजशाही में एक शिव – मन्दिर निर्माण करवाया।

इसी राजा के दानपत्र की वर्णमाला[2] तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ६३' पर दिये गये हैं।

कामरूप की बंगला लिपि – बारहवीं श०

कामरूप (असम = जो सम न हो) का इतिहास चार भागों में बाँटा जा सकता है। पहला पौराणिक काल, दूसरा पूर्व काल (३०० – १३०० ई०), तीसरा काल अहोम तथा चौथा आधुनिक १८२६ से।

पुष्यवर्मन १३ नरेशों के एक वंश का प्रथम नरेश तथा भास्करवर्मन अन्तिम नरेश था। उसकी मृत्यु ६४९ ई० में हो गई। दूसरा वंश मलेच्छों का था जिसका प्रथम नरेश सलस्तम्भ था। उसने प्रागज्योतिषपुर (गौहाटी) से स्थानान्तर कर हरुपेश्वर (तेज़पुर) को अपनी राजधानी बनाया। इसमें भी १३ नरेश हुये और इसका अन्तिम नरेश त्याग सिंह लगभग ९५६ में स्वर्ग सिधार गया। पुत्र न होने से एक नया नरेश (ब्रह्मपाल) चुन लिया गया। इस वंश में छः नरेश हुये। लगभग ११२० ई० तक राज्य किया। इस वंश का अन्तिम नरेश जयपाल बंगाल के राजा राम पाल द्वारा पराजित कर दिया गया और कामरूप में अपना एक सामंत टिंगयादेव नियुक्त कर दिया जिसने राजा राम पाल ही को पराजित किया परन्तु कुमार पाल के सेनानायक वैद्य देव ने टिंगपा देव को पराजित किया और इस प्रकार सौ वर्ष तक अराजकता रही। तत्पश्चात् बंगाल का सेन वंश आया जिसको ११९८ में प्रथम मुसलमान आक्रमणकारी इख्त्यार उद्दीन ने पराजित कर दिया, तदोपरान्त कामरूप छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया।

'फ० सं० – ६४' पर वैद्य देव के दानपत्र[3] की वर्णमाला तथा कुछ शब्द दिये गये हैं।

बंगला लिपि का विकास

बंगला लिपि का विकास देवनागरी से लगभग ग्यारहवीं श० से हुआ है। 'फ० सं० – ६५' पर दिये गये बंगला के विकास की सातवीं श० से कुछ झलक दृष्टिगोचर होने लगती है जो ग्यारहवीं श० से स्पष्ट हो जाती है। विकास के निम्नलिखित खानों का वर्णन दिया है :—

---

1. I. M. P. Vol. 1, Page – 142.
2. E. I. Vol. I, Page – 308.
3. E. I. Vol. II, Page – 350.

बंगला लिपि -- बारहवीं श०

अ आ इ उ ए अं

क ख ग घ च ज ट

ड ढ ण त थ द ध न प फ

भ म य र ल व श ष स ह

तस्मिन् सेना न्व वाये प्रति

सुभट शा तो ला द न व्र(ब्र)झ वा दी स

फलक संख्या – ६३

कामरूप की बंगला की असम लिपि

अ आ इ ई उ ए ऐ ॐ

क ख ग घ च ज झ ड ढ ण

त थ द ध न प फ भ म य र

ल व ब श ष स ह मा मि

वी कु रु पृ गे दे तै लो पौ क्षा

ख्या च्छ त्रा न्त श्रों स्थ स्ति

ॐ श्रों नमो भगवते वासुदेवाय

फलक संख्या – ६४

१. **देवनागरी के अक्षर :** ध्वनि की सुविधा के लिये दिये गये हैं।

२. **सातवीं श० के वर्ण :** महासामन्त शषांक के विषय में उत्कीर्ण एक शिलालेख से, जो रोहतासगढ़ के पर्वतीय क़िले में स्थित है (यह सहसराम – आराह से २४ मील है। इस शिलालेख[1] का काल ६०६ ई० है।), लिये गये हैं।

३. **नवीं श० के वर्ण :** राजा नरायण पाल (८५८ – ९१२ ई०) के दान – पत्र[2] से, जो भागलपुर से प्राप्त हुआ, लिये गये हैं।

४. **दसवीं श० के वर्ण :** राजा राज्यपाल (९१२–९३६ ई०) के स्तम्भ – अभिलेख[3] से, जो नालन्दा के एक खण्डहर से पूरन चन्द नाहर ने प्राप्त किया, लिये गये हैं।

५. **ग्यारहवीं श० के वर्ण :** राजा विजय सेन (राज्याभिषेक १११९) के एक शिलालेख[4] से, जो देवपारा (राजाशाही जनपद) से श्री मेटकॉफ़ द्वारा प्राप्त हुआ, लिये गये हैं।

६. **बारहवीं श० के वर्ण :** राजा वैद्यदेव – कामरूप के तीन दान-पत्रों[5] से, जो राज्य संग्रहालय – लखनऊ में सुरक्षित हैं और जिनका काल ११४२ ई० माना गया है, लिये गये हैं।

७. **पन्द्रहवीं श० के वर्ण[6] :** कृष्ण कीर्तन पाण्डुलिपि से लिये गये हैं।

८. **आधुनिक बंगला के वर्ण :** दिये गये हैं।

उड़िया लिपि – ग्यारहवीं श० – गंगवंश

पूर्वी गंगवंश : का इतिहास वज्रहस्त पंचम के काल से प्रारम्भ होता है। चोल सम्राट राजेन्द्र प्रथम की अधीनता से वज्रहस्त पंचम (१०३८ – १०६० ई०) ने अपने को मुक्त कर लिया और स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगा। इसका अधिकार आधुनिक गंजाम और विशिखापटनम् के ज़िलों की भूमि पर था। उसके पुत्र राजाराम गंग – प्रथम ने केवल दस वर्ष शासन किया। उसका पुत्र अनन्त वर्मन चोडगंग पूर्वीय गंगवंश का सबसे प्रसिद्ध शासक था। इसी ने जगन्नाथ पुरी का मन्दिर बनवाया था। तेलुगु व संस्कृत को आश्रय दिया तथा सत्तर वर्ष तक शासन किया। पन्द्रहवीं श० के आरम्भ में मुस्लिम शासकों द्वारा इस वंश का नाश हो गया।

इस लिपि की वर्णमाला वज्रहस्त पंचम के लेखों[7] से तैयार की गई है जो 'फ० सं० ६६,८६६ क' पर दी गई है।

---

1. C. I. I. Vol. III, page – 284.
2. I. A. Vol. XV, page 304.
3. I. A. Vol. XLVII, page – 112.
4. E. I. Vol. I, page – 308.
5. E. I. Vol. II, page – 350.
6. Indian Systems of Writing (Govt, Pub. – 1965)
7. E. I. Vol. III, Page – 223

उड़िया लिपि -- ग्यारहवीं श०

अ आ इ ई उ ए क

क ख ग च ज

ज ट ड ण त

थ द ध न प फ ब भ

म म य र ल

व श ष

स ह

फलक संख्या – ६६

उड़िया लिपि -- ग्यारहवीं श०

फलक संख्या – ६६ क

उड़िया लिपि – पन्द्रहवीं श०

कपिलेन्द्र वंश : का संस्थापक नरेश कपिलेन्द्र था जिसने उड़ीसा के गंग वंशीय नरेश को १४५३ में पराजित कर राज्य को हस्तगत किया तथा १४७० ई० तक राज्य किया। इसकी मृत्यु के पश्चात् पुरुषोत्तम गजपति उड़ीसा का नरेश हुआ और १४९७ तक शासन किया। इस राज्य का विस्तार गंगा से कावेरी तक हो गया था। इस वंश को भोई वंश ने पराजित किया था।

पुरुषोत्तम गजपति के दान पत्र[1] से (जो १४३८ में अंकित किया गया) एक वर्णमाला तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ६७' पर दिये गये हैं।

शारदा लिपि का विकास

शारदा लिपि : का नाम कश्मीर की सुप्रसिद्ध देवी शारदा के नाम से प्रचलित हुआ। इस लिपि का उद्भव ब्राह्मी से कुटिल लिपि द्वारा दसवीं श० में हुआ। इसका प्रचलन मुख्यतः चम्बा, कश्मीर तथा पंजाब में अधिक रहा। इसी लिपि से टाकरी का उद्भव माना जाता है। अब इसका प्रयोग बहुत कम रह गया है। इसकी जगह देवनागरी व उर्दू लिपियों ने लेली है।

इसका विकास 'फ० सं० – ६८' पर दिया गया है जिसके ख़ानों का विवरण निम्नलिखित है :—

१. **देवनागरी के वर्ण :** दिये गये हैं।

२ **दसवीं श० के वर्ण :** सराहां (चम्बा से ८ मील है) के सामान्त सत्यकी के शिलालेख[2] से, जो एक शिव – मन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण है, लिये गये हैं।

३. **ग्यारहवीं श० के वर्ण :** राजा विदग्ध के ताम्र – पत्र[3] से, जो सुंगल में प्राप्त हुआ, लिये गये हैं।

४. **बारहवीं श० के वर्ण :** राजा नागपाल के अभिलेख[4] से, जो डेबरी – कोटी से प्राप्त हुआ और जिसकी सन् ११६० ई० मानी गई है, लिये गये हैं।

५. **तेरहवीं श० के वर्ण :** जलन्धर के राजा जयचन्द्र (११९७ – १२२४ ई०) के शिलालेख[5] से, जो बैजनाथ के मन्दिर से प्राप्त हुआ और जिसकी सन् १२०४ मानी गई, लिये गये हैं।

६. **चौदहवीं श० के वर्ण :** कश्मीर के पण्डित श्री मुकुन्द राम द्वारा १८९६ में अभिलेख[6] प्राप्त हुआ। उसी के वर्ण लिये गये हैं।

७. **सोलहवीं श० के वर्ण :** राजा बहादुर सिंह के ताम्र – दान – पत्र[7] से, जिसकी सन् १५५९ मानी गई है, लिये गये है।

---

1. E. I. Vol. I, Page – 354.
2. Vogel's : Chamba Antiquities, Page – 152 – Plate XIII.
3. ,, ,, ,, Plate XV.
4. ,, ,, ,, Page – 208.
5. Bühler : E. I. Vol. I, Page – 97.
6. Grierson : L. S. I., Vol. VIII, Part, II, Page – 255.
7. A. S. I. Report : 1903, Page – 261.

उड़िया लिपि -- पन्द्रहवीं श०

अ उ ए क ग च ज ट

ण त थ द ध न प भ म य

र ल व श ष ह जा

रा ति वी पु रु भू क्र क्ष त्र

श्री जय दुर्गायै नमः

फलक संख्या – ६७

शारदा लिपि का विकास

१	२	३	४	५	६	७	१	२	३	४	५	६	७
अ							त						
आ							थ						
इ							द						
उ							ध						
ए							न						
ओ							प						
क							फ						
ख							ब						
ग							म						
घ							म						
च							य						
छ							र						
ज							ल						
ट							व						
ठ							श						
ड							ष						
ढ							स						
ण							ह						

फलक संख्या – ६८

मौड़ी लिपि – सतरहवीं श०

शिवाजी : का जन्म १६२७ में पूना से ५० मील दूर शेनी के किले में हुआ था। इनके पिता शाहजी भोंसले को पूना का प्रदेश जागीर में मिला था। १९ वर्ष की आयु में शिवाजी ने बीजापुर के एक किले पर अधिकार कर लिया। इसने अपने राज्य का विस्तार किया और मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब को चैन से नहीं बैठने दिया।

शिवाजी के शासन काल में मौड़ी लिपि का जन्म हुआ। अक्षरों को मोड़कर बनाने के कारण इस लिपि का नाम मौड़ी पड़ गया। इसके जन्मदाता शिवाजी के एक मंत्री (सरिश्तेदार) बाला आवाजी चितनीस[1] थे। पेशवाओं के समय में बिवलकर नामक विद्वान् ने इसमें कुछ और हेर फेर करके अक्षरों को अधिक गोल किया। इसमें 'ख. प. ब. र.' प्राचीन तेलुगु – कन्नड़ के तथा 'ई' व 'ज' गुजराती लिपि के समान हैं। इसकी वर्णमाला[2] 'फ० सं० – ६९' पर दी गयी है।

उत्तर – पूर्व की मध्य – कालीन लिपियाँ

मैथिल[3] : इसका प्रयोग मिथिला प्रदेश में ब्राह्मणों द्वारा किया जाता था और उन्हीं के द्वारा इसका विकास देवनागरी से पन्द्रहवीं श० में किया गया (फ० सं० – ७०)।

तिरहुतिया[4] : इसका प्रयोग सोलहवीं श० में बिहार के चम्पारन, मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा आदि ज़िलों में किया जाता था (फ० सं० – ७१)।

भोजपुरी[5] : बिहार के चम्पारन और सारन जिलोंमें इसका प्रयोग पन्द्रहवीं श० से होने लगा (फ० सं० – ७२)।

मागधी[6] : इसको मगही भी कहते थे। गया व पटना के ज़िलों में प्रचलित थी (फ० सं० – ७३)।

कैथी[7] : इसका विकास कायस्थों द्वारा लगभग चौदहवीं श० में किया गया। इसमें शिरोरेखा का प्रयोग नहीं किया जाता था (फ० सं० – ७४)।

अहोम[8] : अहोम थाई जाति की एक उप – जाति थीं, जिसने १२२८ में असम पर आक्रमण किया और वहीं बस गई[9]। १६९५ में हिन्दू धर्म में दीक्षा ले ली। अठारहवीं श० में ब्रह्मा ने इस जाति को परास्त किया तथा १८२४ में अंग्रेज़ों ने परास्त किया और उनके राज्य की नागरिक हो गई। लिपि का आविष्कार लगभग चौदहवीं श० में किया गया। १९२० तक जीवित रही तदनन्तर लोप हो गई (फ० सं० – ७५)।

---

1. इस शब्द की उत्पत्ति चिट्ठी – नवीस से (चिट्ठी = पत्र) चिट – नवीस व चिटनीस हुई इसी प्रकार फ़र्द – नवीस (फ़र्द = सरकारी कर) से फड़नवीस तथा फ़डनीस बना। अब चिटनीस व फ़डनीस गोत्र बन गये।
2. I. A. Vol. XXXIV, page – 27.
3. Grierson : L. S. I. Vol. V. Part II, Page – 20.
4. ,, ,, ,, Page – 31.
5. ,, ,, ,, Page – 54.
6. ,, ,, ,, Page – 62.
7. ,, ,, ,, Page – 102.
8. ,, ,, Vol. III ,, Page – 32.
9. According to Gait's Census Report (1891), Page – 280.

मौड़ी लिपि -- सत्तरहवीं श०

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ		
ओ	औ	क	ख	घ	ग	च	छ	ज	
झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध
न	प	फ	ब	भ	म	य	र		
ल	व	श	ष	स	ह	ञ			
ळ	का								

फलक संख्या – ६९

मैथिल लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग	घ	
ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	
ध	न	प	फ	ब	भ	म	
य	र	ल	व	श	ष	स	ह

एक गोटा के दुई बेटा रैहन
अर्थ: एक मनुष्य के दो बेटे थे।

फलक संख्या – ७०

तिरहुतिया लिपि

अ	आ	इ	उ	ऊ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग
घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र
ल	व	श	ष	स	ह

एक अनार दुई छुआ चिल्ल

फलक संख्या – ७१

भोजपुरी लिपि

अ	आ	इ	उ	ऊ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग
घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र
ल	व	श	ष	स	ह

एक आदमी कोई रेह ओकरा दुइगो बेटा रेह

फलक संख्या – ७२

मागधी (मगही) लिपि

अ	आ	इ	उ	ऊ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग
घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र
ल	व	श	ष	स	ह

जब हम सासू लड़िका अबोध्य बा

अर्थ = जब मैं एक अबोध्य लड़की थी

फलक संख्या – ७३

कैथी लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ञ	
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	
श	ष	स	ह						

फलक संख्या – ७४

अहोम लिपि

अ	आ	ऑ	इ	ई	उ
ऊ	ए	ऐ	अँ	ओ	औ
अइ	आउ	आओ	इउ	आई	आए
क	ख	खं	ग	घ	ण
च	ज	झ	ञ	त	थ
द	ध	न	प	फ	ब व
भ	म	र	ल	श	ह

ई ऊ शो खां णां उ कोइ
यह शिकायत शब्द झूठी हुई है

} यह शिकायत झूठी हुई है

फलक संख्या – ७५

खाम्ती[1] : यह भी थाई की एक उप – जाति थी जो अहोम जाति के साथ आकर भारत में बस गई। इसने अपनी लिपि लगभग साथ साथ बनाई। 'फ० सं० – ७६' में दिये गये वर्ण लखीमपुर (असम) के जिलाधीश श्री नीधम द्वारा १८९६ में प्राप्त हुए।

इन सभी लिपियों का विकास चौदहवीं से सोलहवीं श० के बीच देवनागरी से हुआ था। बीसवीं श० के चौथे शतक तक इन सब का लोप हो गया और देवनागरी पुनः प्रयोग में आने लगी।

मेई – थेई लिपि

मणिपुर का इतिहास १७१४ ई० से आरम्भ होता है। इससे पूर्व का इतिहास ज्ञात नहीं। उस समय एक हिन्दू राजा पमहीबा राज्य करता था जिसको वहाँ के निवासी आदर से 'ग़रीब नवाज़' (अर्थात् ग़रीबों की सहायता करने वाला) के नाम से सम्वोधित करते थे। इस राजा के उत्तराधिकारी ब्रह्मा निवासी लोगों से युद्ध में फँसे रहते थे क्योंकि वे बहुधा मणिपुर पर आक्रमण करते रहते थे। अन्त में १८२५ में ब्रह्मा ने देश को अधीन कर लिया। अंग्रेजों ने इस राज्य को ब्रह्मा की अधीनता से छुड़ा दिया और एक सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये जिसके कारण मणिपुर रियासत ब्रिटिश की संरक्षणता में आ गई तथा अर्ध स्वतंत्र हो गई। इस समय गम्भीर सिंह इसका राजा था।

इस राज्य का टिकेन्द्र सिंह सेनापति था और वह तात्कालिक शासक का भाई भी था। टिकेन्द्र सिंह के कहने पर अंग्रेजों ने राजा को गद्दी से हटा दिया और एक नया शासक बना दिया गया परन्तु टिकेन्द्र सिंह को हटाने का भी निश्चय कर लिया गया। जब क्वीटन तथा कुछ अन्य पदाधिकारी उसको मणिपुर से हटाने के लिए गये तब उनको मार डाला गया। फलस्वरूप एक सेना भेज दी गई जिसने शासक तथा सेनापति का वध कर दिया और एक पांच वर्षीय बालक चूड़ा चन्द को सिंहासन पर बिठा दिया। १९०७ में राजा को पूर्ण – शासन अधिकार सौंप दिये गये। तब से ब्रिटिश सरकार के अधीन मणिपुर एक राज्य बना रहा। १९४८ में राज्य भारत सरकार द्वारा विजय कर लिया गया।

मणिपुर को प्राचीन काल में मेइथेई कहते थे। इसकी भाषा कुकीचिन (कुकी – बंगला शब्द है तथा चिन बर्मी भाषा का शब्द है जिसके अर्थ है पहाड़ी जातियाँ) थी। कुकी तथा चिन आदि जातियाँ निवास करती थीं। यह लोग अपने को अर्जुन के वंशज़ मानते हैं। सारा व्यापार स्त्रियाँ ही करती हैं।

श्री दामन्त के अनुसार यहाँ की लिपि का विकास बंगला लिपि द्वारा लगभग १७०० ई० में किया गया। 'फ० सं० – ७७' की वर्ण माला व कुछ शब्द दामन्त द्वारा प्रस्तुत किये गये थे परन्तु ग्रियर्सन[2] के अनुसार इस लिपि का आविष्कार एक हिन्दू राजा चराइरोंगबा ने किया, जिसने १७१० से १७३८ तक मणिपुर पर राज्य किया। वर्णमाला तथा लिपि के वाक्य का अनुवाद बिहारूप सिंह ने किया।

उत्तर पश्चिम की मध्य – कालीन लिपियाँ

उर्दू भाषा को लश्करी जुबान के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। लश्कर के अर्थ सेना हैं। तुर्की भाषा में उर्दू के अर्थ हैं सैनिक पड़ाव। जब मुसलमानों के आक्रमण होते थे तो सैनिकों को तात्कालिक नगर – निवासियों से अपनी दैनिक आवश्यकताओं के कारण बातचीत करनी पड़ती थी। शनैः शनैः अरबी –

1. Grierson : L. S. I. Vol. V Part II, Page – 115.
2. Ibid Vol. III, page – 22

खाम्ती लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
इउ	अए	ए	एइ	ऑ	ओ
औ	अऊ	अउ	अइ	अँ	ओइ
ञ	क	ख	च	ज	त
थ	न	प	फ	ब व	म
य	र	ल	श	ह	का
कि	की	कु	कू	के	कै

मुभा न कोन को लुं ज पांज लुं न कू

अर्थ = बहुत पहले एक मनुष्य के दो लड़के थे

फलक संख्या – ७६

ले० २२

मेई थेई लिपि

क ख ग घ ञ च छ ज झ

ङ ट ठ ड ढ ण त थ द

ध न प फ ब भ म अ य र

ल व उ श स ष ह क्ष का कि

की के कु कू कोइ कै कौ को

कं कोंग कांग किंग कींग कैंग कुंग कूंग

मी अ मा गी मा चा नी पा अ नी

मनुष्य का एक उसका बच्चा नर दो

लड़ र थे म् मी एक मनुष्य के दो लड़के थे

फलक संख्या – ७७

उर्दू लिपि

स	ट	त	प	ब	अ
ث	ٹ	ت	پ	ب	ا

ड़	र	ज़	ड	द	ख़	ह	च	ज
ڑ	ر	ذ	ڈ	د	خ	ح	چ	ج

ज़	त	ज़	स	श	स	श़	ज
ظ	ط	ض	ص	ش	س	ژ	ز

न	म	ल	ग	क	क़	फ़	ग़	अ
ن	م	ل	گ	ک	ق	ف	غ	ع

ए				ह	ह	व
ے	ی	ی	ء	ھ	ہ	و

علم سے بہتر کوئی دولت نہیں

नहीं दौलत कोई बेहतर से इल्म

फलक संख्या – ७८

फ़ारसी – भारती भाषाओं के मिश्रण से एक नई भाषा उर्दू का जन्म लगभग चौदहवीं शताब्दी में हुआ। अरबी में मूलतः २८ अक्षर थे। फ़ारसी भाषा के मिश्रण से चार नई ध्वनियों के लिए 'पे' 'चे' 'ज़ाल' 'गाफ़' जिनकी ध्वनि 'प' 'च' 'ज़' 'ग' है अरबी में जोड़ दिये गये। उर्दू लिपि में ध्वनि की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पांच चिह्न और जोड़ दिये गये। इस प्रकार उर्दू में ३७ अक्षर हो गये। इसमें स्वरों के उच्चारणार्थ ज़ेर, ज़बर, पेश आदि लगाने का भी प्रबन्ध किया गया परन्तु इनको घसीट लिपि में प्रयोग नहीं किया जाता (फ० सं० – ७८)।

इस लिपि में कठिनाई यह है कि कुछ उच्चरित शब्द व्यक्त नहीं किये जा सकते 'चन्द्र' को 'चन्दर' लिखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसमें चिह्न कई हैं परन्तु उनकी ध्वनि एक है, जैसे 'से', 'सीन' 'स्वाद' की ध्वनि 'स' है, 'तो' व 'ते' की ध्वनि भी केवल 'त'। अक्षरों का प्रयोग अभ्यास पर निर्भर है। इसका प्रयोग कश्मीर में तथा उत्तर प्रदेश में किया जाता है।

अरबी – सिन्धी लिपि का उद्‌भव लगभग आठवीं शताब्दी में मोहम्मद बिन क़ासिम के सिन्धु देश के परास्त करने के पश्चात् हुआ। सिन्ध के निवासियों ने अपनी भाषा की ध्वनियों के अनुसार नये अक्षरों का निर्माण कर अरबी को प्रयोगात्मक बना कर इस लिपि का नाम अरबी – सिन्धी रखा। प्राचीन सिन्धी से आधुनिक सिन्धी बीसवीं श० के आरम्भ में पृथक हो गयी और उसके लेखन में थोड़ा सा परिवर्तन, जो उल्लेखनीय नहीं है, कर दिया गया।

अरबी लिपि के २८ चिह्नों में २४ नये आविष्कारिक चिह्न जोड़ कर सिन्धी भाषा की ध्वनियों के उपयुक्त बनाया गया। इस प्रकार अरबी – सिन्धी – लिपि में ५२ चिह्नों का प्रयोग होने लगा। इसका विकास लगभग पन्द्रहवीं श० में हुआ अब इसका क्षेत्र केवल पाकिस्तान के सिन्ध प्रांत में रह गया। भारत में सिन्ध के निवासी इसको जीवित रखने का निरन्तर प्रयत्न करते चले आ रहे हैं परन्तु समय के साथ इसका प्रयोग भी कम होता जा रहा है (फ० सं० – ७९)।

वनियाकर लिपि का सिन्ध के महाजन लोग अथवा व्यापारी इसका प्रयोग अपना लेखा – जोखा गुप्त रखने के लिए किया करते थे, जिस प्रकार भारत में महाजन मुड़िया का प्रयोग करते थे। इस लिपि में शिरोरेखा का प्रयोग नहीं होता था। पाकिस्तान का जन्म होने से सिन्ध के महाजन भारत आ गये। अब वही लोग इसका प्रयोग यहाँ करते हैं परन्तु यह भी समय के साथ लोप होती जा रही है। इसमें केवल ३० अक्षर होते हैं परन्तु मात्राओं का अभाव होता है। वनियाकर की परिभाषा है, वनिया + आकर (अक्षर) अर्थात बनियों (महाजनों) के अक्षर। इसका जन्म सत्रहवीं श० में हुआ और १८६८ में मान्यता प्राप्त हो गयी तथा इसमें स्वरों के चिह्न भी जोड़े गये (फ० स० – ८०)।

हिन्दी – सिन्धी लिपि[1] को कुछ ब्राह्मणों ने अपने आपको अरबी भाषा से अलग रखने के लिए इसका विकास भी पन्द्रहवीं श० में किया (फ० सं० – ८१)।

टाकरी लिपि[2] शारदा लिपि का घसीट रूप है। 'टाकरी' शब्द ठाकुर (भगवान) से बन कर ठाकुरी तदनन्तर टाकरी हो गया। इसका प्रयोग कश्मीर के डोंगरों द्वारा, चम्बा व हिमाचल प्रदेश के कई भागों में होता था (फ० सं० – ८२)।

---

1. **Grierson : L. S. I. Vol. VIII, Part I, page – 20.**
2. **Ibid, ,, Part, II, Page – 719.**

अरबी -- सिन्धी लिपि

फ थ स ट ठ त भ प ब़ ब अ

ف ٿ ث ٽ ٺ ت ڀ پ ٻ ب ا

ध ज़ द य ख ग्न ग़ ग फ़

ڌ ذ د ي ک ڱ ڳ گ ڦ

ख़ छ च यां (ज़) ज ह ढ़ ड ड्ढ

خ ڇ چ ڃ ڄ ج ح ڏ ڊ ڍ

स ल न म ड़ ज़ र ग़ ए

س ل ن م ڙ ز ر غ ع

ज़ त ण ज़ स क़ व श

ظ ط ڻ ض ص ق و ش

ह क घ झ

= ۽ ھ ک گھ جھ

اکر زبر بنا موجب سلسلي نئين

अकर ज़ेर बिना मूजिब सिलसिले नवीन

वनियाकर लिपि

अ इ उ ए ट

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ण त थ

ड द न प फ ब भ म

य र ल व ह

फलक संख्या – ८०

हिन्दी -- सिन्धी लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
ए	ऐ	ओ	औ	क	ख
ग्ग	ग	ग़	ङ	च	छ
ज़	ज्ज	झ	ञ	ट	ठ
ड	ड्ड	ढ	ड़	ण	त
थ	द	ध	न	प	फ
फ़	ब	ब्ब	भ	न	म
र	ल	व	श	स	ह

फलक संख्या – ८१

टाकरी लिपि

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ

ओ औ अं अः क ख ग

घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ

ड ढ ण त थ द ध न

प फ ब भ म य र ल व श

ष स ह का कि की

फलक संख्या – ८२

लाण्डा लिपि का उद्‌भव लगभग पन्द्रहवीं श० में अपभ्रंश प्राकृत भाषा 'वृच्डा' से हुआ। १८६८ में इसका संशोधन हुआ। इसको जाटकी (जाटों की) और हिन्दुकी (हिन्दुओं की) भी कहते थे। इसका प्रयोग सिन्ध, मुल्तान व सारे पंजाब में किया जाता था। इस लिपि के वर्ण तथा कुछ शब्द[1] 'फ० सं० – ८३' पर दिये गये हैं। शब्दों का अनुवाद ग्राहम बेली ने १९०८ में किया।

गुरमुखी को गुरु के मुख से निकली भाषा कहते हैं। इसका उपनाम 'पंजाबी' है। सिक्ख धर्म के गुरु श्री अंगद जी ने इसका आविष्कार, बोली की शुद्धता के लिए, ताकि गुरुवाणी का सही उच्चारण हो सके, शारदा व लान्डा लिपि के वर्णों द्वारा सोलहवीं श० में किया। जब मुसलमानों का आगमन हुआ तो सर्वप्रथम पंजाब निवासी उनकी भाषा के सम्पर्क में आये। उनकी फ़ारसी भाषा में कई ध्वनियां नयी थीं, जैसे क़, ग़, ज़, ख़, फ़, ड़ आदि। अब नये चिह्न बनाना कठिन था इस कारण पंजाब के विद्वानों ने अपने गुरमुखी वर्णों के नीचे बिन्दी लगाकर फ़ारसी वर्णों की ध्वनियों का आविष्कार कर लिया जो शनैः शनैः देवनागरी लिपि में भी उर्दू व फ़ारसी के शब्दों के लिए प्रयोगात्मक बन गईं। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् जब हिन्दी भाषा के फ़ारसी शब्दों का हिन्दीकरण हुआ तब 'ग़लत' को 'गलत', 'जहाज़', को 'जहाज', 'ख़बर' को 'खबर', 'ज़रूर' को 'जरूर' बोलने व लिखने लगे। इस लिपि के वर्णों का क्रम भी भिन्न है। इस लिपि में संयुक्त वर्ण नहीं होते, इसी कारण पंजाबी 'स्कूल' को 'सकूल', 'स्टोर' को 'सटोर', 'स्टूल' को 'सटूल' कहते हैं। इसकी मात्राओं में भी भिन्नता है। इसके वर्ण 'फ० सं० – ८४' पर दिये गये हैं।

कुछ आधुनिक लिपियां

मलयालम लिपि[2] : यह ग्रन्थ लिपि का घसीट रूप है। 'मलयालम' दो शब्दों 'मल' (पर्वत) + 'आल' (स्थान) अर्थात् पर्वतीय स्थान से बना है। इसका आविष्कार लगभग दसवीं श० में हुआ। इसका प्रयोग केरल प्रान्त में किया जाता है (फ० सं० – ८५)।

तुळु लिपि : इसका उद्भव मलयालम लिपि से हुआ। इसका प्रयोग कन्नड़ प्रान्त के दक्षिणी भाग कुर्ग में किया जाता है। शनैः शनैः इसकी जगह कन्नड़ लिपि ले रही हैं (फ० सं० – ८६)।

उड़िया लिपि : इसका उद्भव देवनागरी व बंगला द्वारा हुआ। इस लिपि में तेलुगु लिपि का भी समावेश है। उड़ीसा प्रान्त में इसका प्रयोग किया जाता है (फ० सं० – ८७)।

गुजराती : इसका विकास देवनागरी द्वारा लगभग सतरहवीं श० में हुआ। इसमें शिरो रेखा का प्रयोग नहीं किया जाता। यह गुजरात प्रान्त में प्रयोग की जाती है (फ० सं० – ८८)।

भारत की मुख्य लिपियों के कुछ शब्द 'फ० सं० – ८९' पर दिये गये हैं।

देवनागरी लिपि

देवनागरी लिपि का लगभग आधे भारत में प्रयोग किया जाता है। संस्कृत भाषा की भी यह मुख्य लिपि बन गई। इसका विकास उत्तर में गुप्त व कुटिल लिपि द्वारा हुआ परन्तु जन्म दक्षिण में हुआ।

1. Grierson : L. S. I. Vol. VIII, Part II, page – 311.
2. Grierson : L. S. I. Vol. IV, Page – 348.

लाण्डा लिपि

अ	आ	इ	उ	ए
ओ	क	ख	ग	घ
च	छ	ज	झ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त
थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य
र	ल	व	श स	ह

ए की मानुखा रे दुइ गाभरू थे

अर्थ : एक मनुष्य के दो पुत्र थे

फलक संख्या – ८३

गुरमुखी लिपि

उ	अ	इ	स	ह	क	ख	ग	
ੳ	ਅ	ੲ	ਸ	ਹ	ਕ	ਖ	ਗ	
घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	
ਘ	ਙ	ਚ	ਛ	ਜ	ਝ	ਞ	ਟ	
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	
ਠ	ਡ	ਢ	ਣ	ਤ	ਥ	ਦ	ਧ	
न	प	फ	ब	भ	म	य	र	
ਨ	ਪ	ਫ	ਬ	ਭ	ਮ	ਯ	ਰ	
ल	व	ढ़	श	ख़	ग़	ज़	फ़	ड़
ਲ	ਵ	ੜ	ਸ਼	ਖ਼	ਗ਼	ਜ਼	ਫ਼	ੜ
मात्रायें दे०:	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो ौ
मात्रायें प०:	ਾ	ਿ	ੀ	ੁ	ੂ	ੇ	ੈ	ੋ ੌ
का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ
ਕਾ	ਕਿ	ਕੀ	ਕੁ	ਕੂ	ਕੇ	ਕੈ	ਕੋ	ਕੌ

फलक संख्या – ८४

मलयाळम लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
അ	ആ	ഇ	ഈ	ഉ	ഊ

ऋ	ऍ	ए	ऐ	ऑ	ओ	औ
ഋ	എ	ഏ	ഐ	ഒ	ഓ	ഔ

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज
ക	ഖ	ഗ	ഘ	ങ	ച	ഛ	ജ

झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ
ഝ	ഞ	ട	ഠ	ഡ	ഢ	ണ	ത	ഥ

द	ध	न	प	फ	ब	भ	म
ദ	ധ	ന	പ	ഫ	ബ	ഭ	മ

य	र	ल	व	श	ष	ह
യ	ര	ല	വ	ശ	ഷ	ഹ

ळ	क्ष	स	ष़	ऱ	ऱऱ
ള	ക്ഷ	സ	ഴ	റ	റ്റ

फलक संख्या – ८५

तुळु लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ		
ए	ऐ	ओ	औ	क	ख	ग	
घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र		
ल	व	श	स	ह			

फलक संख्या – ८६

उड़िया लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ		
ଅ	ଆ	ଇ	ଈ	ଉ	ଊ	ଋ		
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः			
ଏ	ଐ	ଓ	ଔ	ଅଂ	ଅଃ			
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ
କ	ଖ	ଗ	ଘ	ଙ	ଚ	ଛ	ଜ	ଝ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द
ଞ	ଟ	ଠ	ଡ	ଢ	ଣ	ତ	ଥ	ଦ
ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र
ଧ	ନ	ପ	ଫ	ବ	ଭ	ମ	ଯ	ର
ळ	ल	व	श	ष	स	ह	क्ष	
ଳ	ଲ	ଵ	ଶ	ଷ	ସ	ହ	କ୍ଷ	
ड़	ढ़							
ଡ଼	ଢ଼							

फलक संख्या – ८७

गुजराती लिपि

अ आ इ ई उ ऊ ऋ
અ આ ઇ ઈ ઉ ઊ ઋ

ए ऐ ओ औ अं अः
એ ઐ ઓ ઔ અં અઃ

क ख ग घ ङ च छ ज झ
ક ખ ગ ઘ ઙ ચ છ જ ઝ

ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध
ઞ ટ ઠ ડ ઢ ણ ત થ દ ધ

न प फ ब भ म य र ल व
ન પ ફ બ ભ મ ય ર લ વ

श ष स ह ळ क्ष त्र ज्ञ
શ ષ સ હ ળ ક્ષ ત્ર જ્ઞ

फलक संख्या – ८८

मुख्य भारतीय लिपियों के कुछ शब्द

तमिल	உங்கள் பெயர் என்ன उङ्गळ् पेंयर् ऍन्न = आप का नाम क्या है	
मलयालम	നിങ്ങളുടെ പേരെന്താണ് निकलुडे पेरं एन्ताणं = तुम्हारा नाम क्या है	
कन्नड़	ನಿಮ್ಮ ಹೆಸರು ಏನು निम्म हेसरु एनु = आपका नाम क्या है	
तेलुगु	నీ పేరు ఏమి नि पेरू एमि = आप का नाम क्या है	
बंगला	আপনার নাম কি आपनार नाम कि = आपका नाम क्या है	
उड़िया	ସତ୍ୟମେବ ଜୟତେ सत्य मेव जयते	
गुजराती	સત્ય મેવ જયતે सत्य मेव जयते	
पंजाबी	ਮਕਾਨ ਦੀਆਂ ਕੱਚੀਆਂ ਕੰਧਾਂ मकान दियां कच्चियां कंधां	मकान की कच्ची दीवारें

फलक संख्या – ८९

मानचित्र भारत की भाषाओं का

फलक संख्या – ९०

देवनागरी का जन्म : देवनागरी की प्रथम स्पष्ट झलक आठवीं शताब्दी के राजा दन्तिदुर्ग द्वितीय (इसको दन्तिवर्मन के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है) के दान-पत्रों में दृष्टिगोचर हुई। इस राजा ने ७४७ ७५३ तक दक्षिण में राज्य किया। यह मनखेड राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक था। इसने ७५३ में अपने तीन ताम्र – दान – पत्र अंकित करवाये जो समनगढ़ के पहाड़ी दुर्ग से प्राप्त हुए। यह दुर्ग बेलगाँव से २४ मील दूर कोल्हापुर जनपद में स्थित है। इस दक्षिणी देवनागरी को 'नन्दीनागरी' के नाम से सम्बोधित करते थे। नन्दीनगर बंगलौर से ३६ मील उत्तर की ओर स्थित है। इस देवनागरी का नन्दीनगर में अधिक प्रयोग रहा हो, इस कारण नन्दीनागरी कहलाने लगी हो। उपर्युक्त दान पत्रों[1] की प्रथम दो पंक्तियाँ 'फ० सं० – ९१' पर दी गई हैं।

स्व स्ति स वो व्या द्वे ध सा धा म

य न्ना भि क म लं कृ तं ह र श्च य स्य
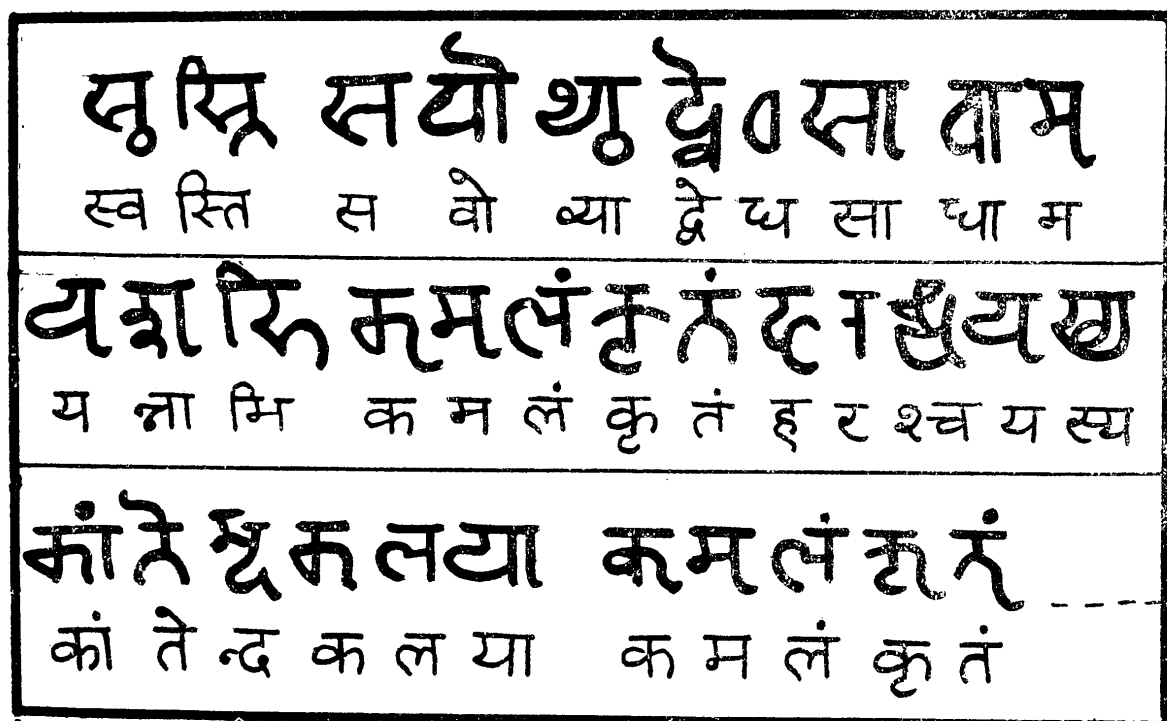
कां ते न्द क ल या क म लं कृ तं

फलक संख्या – ९१

पाठ का लिप्यंतरण : "स्वस्ति स वो व्याद्वेधसा धाम यन्नाभिकमलं कृतं हरश्च यस्य कान्तेन्दकलया कमलं कृतं..."

इसी का अनुवाद : "वह (भगवान) आप की रक्षा करे जिसकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है और (वह) हर जिसके सिर को द्विज का सुन्दर चन्द्रमा सुशोभित करता है....."

दशवीं शताब्दी में इस लिपि ने अपना वयस्क रूप धारण कर लिया और बारहवीं शताब्दी में यह विकसित हो गई। तदनन्तर इसमें कुछ परिवर्तन किये गये, उदाहरणार्थ, शिरोरेखा का प्रयोग प्रत्येक शब्द पर कुछ दूरी रख कर किया जाने लगा, स्वरों की मात्रायें बढ़ गईं आदि। यह परिवर्तन नाम मात्र के थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसका विकास पूर्ण हो गया। जिस प्रकार भारत तथा अन्य देशों की प्राचीन लिपियों के नाम कल्पित हैं, उसी प्रकार 'देवनागरी' का नाम भी कल्पित है।

1. Fleet : I. A. Vol. XI, Page – 119.

देवनागरी नामकरण के विविध कारण :

१. सम्भवतः इसका प्रचार नगरों में रहा हो।

२. गुजरात के नागर ब्राह्मणों में अधिक प्रचलित रही हो।

३. तांत्रिक – यंत्रों में बनने वाले चिह्न देवनागरी से समानता रखते हों।

४. देव – भाषा संस्कृत लिखने के लिये प्रयोग की जाती थी इससे यह नाम पड़ा हो।

५. काशी को देवनगर कहा जाता था और इसका प्रयोग यहाँ अधिक रहा हो।

६. प्राचीन काल में राजाओं को 'देव' के उपनाम से सम्बोधित करते थे, सम्भवतः यह नाम '"देव" क नाम से पड़ गया हो।

७. दक्षिण में नन्दिनागरी, नन्दी नगर के कारण, कहलाई।

देवनागरी लिपि की कुछ विशेषतायें :—

१. **पूर्णता के निकट** : जो बोला जाये वह लिखा जाये, जो लिखा जाये वह पढ़ा जाये। यह बात संसार की अन्य लिपियों में नहीं पाई जाती, जैसे....

(क) रोमन में लिखते हैं 'बुट (But)' पढ़ते हैं बट, लिखते हैं 'क्नोव (Know)' पढ़ते हैं 'नो'। फ्रेंच भाषा में लिखते हैं लुईस (Louis) या लाओस (Laos) पढ़ते हैं लुई या लाओ।

(ख) उर्दू में बे + काफ़ को मिलाकर लिखने में बुक, बक, बिक तीनों पढ़े जाते हैं।

२. **एक चिह्न एक ध्वनि** : यह अन्य लिपियों में (भारत की लिपियों को छोड़कर) नहीं पाया जाता, जैसे — रोमन लिपि के चिह्न 'A = अ, आ, ए, ऐ'; 'C = स, क'; 'O = उ, ऊ, ओ, आ' की विविध ध्वनियाँ हैं।

३. **एक ध्वनि एक चिह्न** : उर्दू में 'स' ध्वनि के लिये तीन (सीन, स्वाद, से) तथा '**त**' की ध्वनि के लिये दो (तो, ते) अक्षर होते हैं। रोमन में '**स**' के लिये 'C, S, SS, (Discuss)' और 'Sc (Science)' तथा 'क' के लिये C (Cut), K (Kite), Ch (Chemist), ck (Stock) और Q (Quite) होते हैं जो देवनागरी में नहीं हैं।

४. **वर्णों के नामों व ध्वनियों में साम्य** : 'क', नाम भी 'क' ध्वनि भी 'क' परन्तु रोमन में नाम 'बी', 'एस' ध्वनि ब, स। उर्दू में नाम अलिफ़, काफ़, स्वाद ध्वनि अ, क, स।

५. **वर्ण मूक नहीं बनाये जाते** : इस लिपि में वर्णों का प्रयोग मूक बना कर नहीं करते जैसे रोमन में नी और नो (Knee, Know) का 'K', लुई (Louis) का 'S' शांत है, इसी प्रकार सायकालोजी (Psychology) का 'P' और काम (Calm) का 'L'।

६. **वैज्ञानिक लिपि** : संसार की कोई भी लिपि उच्चारण तथा प्रयोग की दृष्टि से इतनी वैज्ञानिक नहीं है। इसमें सब स्वर और व्यंजन मिलाये जायें तो ४७ या ४८ चिह्न पाये जाते हैं जो लगभग भारत की सभी लिपियों में विद्यमान हैं।

स्पर्श व्यंजन	अल्प प्राण	महा प्राण	अ० प्रा०	म० प्रा०	नासिक:	क + ह = ख = महा प्राण नाक से ध्वनि आना = नासिक या अनुनासिक
कंठ्य	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	जिह्वा को हलक़ में लगाकर
तालव्य	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	,, तालू में
मूर्द्धन्य	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	,, मूर्द्धा ,,
दंत्य	त्	थ्	द्	ध्	न्	,, दाँतों ,,
ओष्ठ्य	प्	फ्	ब्	भ्	म्	ओठों को मिला कर खोलना
अलस्य	य्	र्	ल्	व्		स्वर = अ आ इ ई
अघोष ऊ०	श्	ष्	स्			उ ऊ ए ऐ
सघोष ऊ०	ह्					ओ औ अं अः
शुद्ध अनुस्वार	ं					ऋ ऌ

७. व्यक्त करने की क्षमता : संसार की अनेक भाषाओं को व्यक्त करने की क्षमता रखती है।

देवनागरी लिपि के कुछ दोष :

देवनागरी लिपि में इतनी विशेषतायें होने पर भी कुछ ऐसे दोष हैं जो इसके व्यापक होने में बाधक हैं, जैसे........

१. चारों ओर मात्रायें लगने के और शिरोरेखा के कारण लिखने में जटिल तथा गतिरोधक है।

२. कुछ संयुक्ताक्षरों में पढ़ी जाने वाली ध्वनि लिखी पहले जाती है, उदाहरणार्थ, 'प्रेम, द्रोह' आदि में।

३. 'ङ' 'ञ' का प्रयोग केवल संयुक्ताक्षरों में ही होता है। जिसका प्रयोग अनुस्वार के द्वारा हो सकता है। दो अक्षर निरर्थक हैं।

४. 'व' द्वयोष्ठ्य और दत्योष्ठ्य दोनों ही है। 'स्वर' में द्वयोष्ठ्य है तथा 'वीर' में दंत्योष्ठ्य है।

५. 'र' संयुक्ताक्षरों में तीन रूप धारण करता है – 'पूर्व, क्रम तथा कृमि' आदि शब्दों में।

६. 'इ' का प्रयोग लिखने में पहले पढ़ने में बाद में होता है, जैसे – पिटना, टिकना' आदि।

७. कुछ अक्षरों के दो रूप हैं, जैसे, 'अ, अ, ण, ण, ल, ल, झ, झ; ख, ख' आदि।

८. कुछ शब्दों के दो रूप हैं, जैसे, गयी (गया से) गई; गये, गए; कौवा, कौआ आदि।

९. कुछ शब्दों में लिखने व पढ़ने में अन्तर हो जाता है :—
लिखना = बनना, मिलता, यमुना, रखा, करता आदि।
पढ़ना = बन्ना, मिल्ता, जमुना, रक्खा, कर्ता आदि।

१०. इसके अक्षर अधिक जगह घेरते हैं।

११. मुद्रण के लिये तीन से अधिक चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है।

देवनागरी – ग्यारहवीं श०

परमार वंश : का संस्थापक कृष्ण राज (उपेन्द्र) था। यह पहले गुजरात में रहता था परन्तु बाद में आबू पर्वत के निकट अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की जिसका सर्वप्रथम स्वतंत्र शासक हर्ष था। इसके पश्चात् मालवा के दो शासक वाक्पति मुंज तथा सिन्धु राज हुये और फिर भोज राजा हुआ जिसने १०१० से १०५५ ई० तक राज्य किया। तत्पश्चात् जयसिंह और उसका उत्तराधिकारी उदयादित्य शासक बना जिसने १०५९ से १०८८ ई० तक राज्य किया। इसके बाद इस वंश के कई निर्बल राजा हुये जो राज्य को सुरक्षित न रख सके। अन्त में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ऐनुलमुल्क ने मालवा पर विजय प्राप्त कर ली।

उदयादित्य के अभिलेखों के वर्ण तथा कुछ शब्द 'फ० सं० – ९२' पर दिये गये हैं।

देवनागरी – बारहवीं श०

कलिंग राज : ने दक्षिण कोशल को विजय करके अपने पुत्र रतन राज प्रथम को वहाँ का प्रांत पति बना दिया। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह स्वतंत्र हो गया। यह कलचुरी वंश का था जिसको हैहय वंश के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इसी ने रतनपुर नगर की स्थापना की। उसने बहुत से मन्दिर भी बनवाये। उसके पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वी देव प्रथम राजगद्दी पर बैठा। तदोपरांत उसका पुत्र जाजल्ल देव शासक बना जिसने जाजल्लपुर नगर बनवाया। रतनपुर से एक ३१ पंक्तियों का शिलालेख प्राप्त हुआ। रतनपुर बिलासपुर से १६ मील उत्तर की ओर है। इसकी प्रतिलिपि तथा अनुवाद डॉ० कलिहार्न ने किया। यह शिलालेख नागपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसकी भाषा संस्कृत है। इसकी वर्णमाला तथा कुछ शब्द[1] 'फ० सं० – ९३' पर दिये गये हैं। उसी के अनुसार कलचुरी संवत् ८६६ है। जाजल्लदेव का शासन काल था, ईसा की १११४ से मिलता है।

देवनागरी का विकास

देवनागरी लिपि का शनैः शनैः विकास, जो ब्राह्मी से हुआ, 'फ० सं० – ९४ तथा ९४ क' पर दिया गया है। उसका विवरण निम्नलिखित है :—

१. **ब्राह्मी :** अशोक के गिरनार के शिलालेख से लिये गये वर्ण दिये गये हैं।

२. **दूसरी श० :** मथुरा से प्राप्त एक अभिलेख[2] से लिये गये वर्ण हैं। यह अभिलेख एक शिला पर उत्कीर्ण था और कंकाली – टीला (मथुरा) के उत्खनन से प्राप्त हुआ था। यह उत्खनन कार्य १८८८ में बर्गेस द्वारा किया गया था। यह कुषाण वंशीय राजा कनिष्क से सम्बन्धित था। इसको बुह्लर ने पढ़ा था। इसकी भाषा संस्कृत व प्राकृत मिश्रित थी।

३. **चौथी श० :** गुप्त लिपि[3] के वर्ण दिये गये हैं। यह वर्ण इलाहाबाद के स्तम्भ पर ३३ पंक्तियों में गुप्त वंशीय राजा समुद्र गुप्त की प्रशंसा में राजा चन्द्र गुप्त द्वितीय (c. ३७५ – ४१४ ई०) द्वारा उत्कीर्ण कराये गये थे। इसको पहले कैप्टेन ट्रायर ने १८३४ में पढ़ा तदनन्तर इसको जेम्स प्रिंसेप ने पूर्ण

---

1. E. I. Vol. I, Page – 14.
2. E. I. Vol. I, Page – 371.
3. C. I. I. Vol. III, Page – 1.

देवनागरी -- ग्यारहवीं श०

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ

ओ औ ं : क ख ग घ

ङ च छ ज झ ञ ट ठ

ड ढ ण त थ द ध न

प फ ब भ म य र ल व

श ष स ह

फलक संख्या – १२

देवनागरी -- बारहवीं श०

अ आ इ ई उ ए ऐ क ख ग

घ ङ ट ठ ड ण त थ द ध न

प फ भ म य र ल व श ष

स ह लै क्षि क्ष्य प्रे श्री

तद्वंश्यो हैहय आसीद्य

तो जायन्त हैहयाः ।

फलक संख्या – ९३

देवनागरी का विकास

ब्रा॰	दू॰श॰	चौ॰श॰	छ॰श॰	सा॰श॰	आ॰श॰	न॰श॰	द॰श॰	ग्या॰श॰	बा॰श॰	ते॰श॰	प॰श॰	आधु॰
												ढ
												ण
												त
												थ
												द
												ध
												न
												प
												फ
												ब
												भ
												म
												य
												र
												ल
												व
												श
												ष
												स
												ह

फलक संख्या – ९४ क

रूप से १८३७ में पढ़ा और यह रहस्योद्घाटन बंगाल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के (Vol. III) पृष्ठ ९६९ पर प्रकाशित हुआ।

४. **छठी श० :** के वर्ण[1] मन्दसौर के यशोधर्मन् (५२५ – ५३५ ई०) के शिलालेख मे लिये गये हैं। इसका काल ५३२ ई० निर्धारित किया गया है।

५. **सातवीं श० :** के वर्ण[2] ताम्र – पत्र पर उत्कीर्ण अभिलेख से लिये गये हैं। यह वर्ण कन्नौज के राजा हर्षवर्धन (६०६ – ६४७ ई०) ने उत्कीर्ण कराये थे।

६. **आठवीं श० :** के वर्ण[3] राष्ट्रकूट वंशीय राजा गोबिन्द राज तृतीय (७९३ – ८१४ ई०) ने अपने तीन ताम्र – दान – पत्रों में अंकित करवाये थे। इनकी तिथि अभिलेख के अनुसार ४ मई ७९४ है।

७. **नवीं श० :** के वर्ण[4] बचकुला (जोधपुर) से प्राप्त एक अभिलेख से लिये गये हैं जो प्रतिहार वंशीय राजा नाग भट्ट द्वारा उत्कीर्ण कराये गये थे। इस अभिलेख का काल ८१० ई० माना गया है। नागभट्ट ने ८०५ से ८३३ तक जोधपुर में राज्य किया।

८. **दसवीं श० :** के वर्ण[5] अलवर से प्राप्त एक शिलालेख से, जो प्रतिहार वंशीय राजा विजय पाल (९५९ – ९८९ ई०) द्वारा उत्कीर्ण कराये गये थे।

९. **ग्यारहवीं श० :** में एक अभिलेख परमार वंशीय राजा उदयादित्य की प्रशंसा में एक मन्दिर की दीवार पर उत्कीर्ण कराया गया था। उत्कीर्ण करने वाले ने स्वयं एक वर्ण माला उत्कीर्ण कर दी। वही वर्णमाला यहाँ दे दी गई है।

१०. **बारहवीं श० :** के वर्ण[6] रतनपुर से एक ३१ पंक्तियों का शिलालेख, जो कलचुरी वंशीय राजा जाजल्लदेव (११६५ – ११७० ई०) ने ८ नवम्बर ११९४ ई० में उत्कीर्ण कराया था, से लिये गये हैं।

११. **तेरहवीं श० :** के वर्ण परमार वंशीय राजा धारा वर्ष द्वारा १२०८ ई० में उत्कीर्ण कराये गये एक अभिलेख से लिये गये हैं। यह अभिलेख अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसकी वर्णमाला ओझा जी ने स्वयं तैयार की थी।

१२. **पन्द्रहवीं श० :** इसके वर्ण विजयनगर के राजाओं के अनेक दानपत्रों से, जो संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण कराये जाते थे, लिये गये हैं।

देवनागरी में संशोधन

स्वामी सत्यभक्त[7] द्वारा : बोर गाँव, वर्धा में आपने एक 'सत्याश्रम' स्थापित किया है। आप महान् विचारक व सुधारक हैं। आपने देवनागरी लिपि को सरल बनाने के लिये अपने संशोधन प्रस्तुत करके उसका नाम भी भारती लिपि रखा है (फ० सं० – ९५)।

1. E. I. Vol. 1, Page – 150.
2. ,, ,, ,, Page – 220.
3. E. I. Vol. III, Page – 106.
4. E. I. Vol. IX, Page – 198.
5. गौरी शंकर ही० ओझा : भारतीय प्राचीन लिपि माला, Plate – 25.
6. E. I. Vol. I, Page – 14.
7. स्वामी सत्यभक्तजी के सौजन्य से लेखक द्वारा प्राप्त।

स्वामी सत्यभक्त द्वारा सुधार

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ

क ख ग घ ङ छ झ थ ध

फ ब भ श ह ट ठ ड [illegible] द प

ग गा गि गी गु गू गे गै गो गौ गृ

सत्यभक्त . सत्याश्रम . वर्धा . म० प्र०

फलक संख्या – ९५

श्री श्रवण कुमार गोस्वामी[1] द्वारा : आपने भी अपने विचार उसको सरल बनाने तथा टंकण में गति बढ़ाने के लिये दिये हैं (फ० सं० – ९६)।

श्री रामनिवास द्वारा : 'ह' का चिह्न निर्धारित करके परिवर्तन किया (फ० सं० – ९७)।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन[2] द्वारा : चिह्नों को कम करके सरल बनाने का प्रयास किया (फ० सं० – ९७)।

श्री बी० बी० लाल द्वारा : आपने अन्य भारतीय लिपियों के सब अक्षरों में से कुछ अक्षर लेकर एक नवीन लिपि का निर्माण करने का प्रयास किया है (फ० सं० – ९७)।

कुछ अन्य सुधारकों द्वारा : 'ख, भ, ध' की आकृतियों में परिवर्तन किया गया है ताकि लिखने में अन्तर स्पष्ट हो जाये (फ० सं० – ९७)।

शासकीय सुधार द्वारा : मात्राओं को सीधी ओर लगाने का तथा मात्राओं को छोटा बड़ा करके सरल बनाने का प्रयास किया है (फ० सं० – ९७)।

सरलता की ओर जितने संशोधन हुए हैं उनका प्रयोग अभी तक व्यापक नहीं हो सका, कुछ तो लिखने के अभ्यास के कारण तथा कुछ कठिनाईयों के कारण जो मुद्रण तथा टंकण मशीनों में करना अनिवार्य हो जायेगा। इन संशोधनों से भविष्य सुधरेगा परन्तु भूत बिगड़ेगा।

देवनागरी – ब्रेल – लिपि

इस लिपि का जन्म फ्रांस देश के एक नेत्रहीन अध्यापक लुई ब्रेल (Louis Braille) द्वारा १८२९ में हुआ। ब्रेल का जन्म १८०९ में तथा स्वर्गवास १८५२ में हुआ। १९५१ में भारत सरकार ने हिन्दी – ब्रेल का निर्माण किया। इस लिपि में छः बिन्दु ⠿ इस प्रकार होते हैं। इसकी गणना बाईं ओर से नीचे से ऊपर की ओर १, २, ३ की जाती है। तत्पश्चात् सीधी ओर के बिन्दु ऊपर से नीचे की ओर गिने जाते हैं ४, ५, ६। यह बिन्दु बाईं ओर के किनारे पर मोटे कागज़ में उभरे हुये होते हैं जिनको छू कर नेत्रहीन विद्यार्थी पढ़ लेता है। इन छः बिन्दुओं की सहायता से कोई भी लिपि पढ़ी जा सकती है (फ० सं० – ९८)।

देवनागरी – आशु – लिपि

इसको अग्रेज़ी में शार्ट हैण्ड (Short Hand) कहते हैं। इसके आविष्कर्ता सर आइज़क पिटमैन (Sir Issac Pitman) थे जिन्होंने बड़े परिश्रम से इसको १८३७ में तैयार किया। इसी प्रणाली के आधार पर १९२५ में श्री राधेलाल त्रिवेदी ने और १९२७ में श्री एस० पी० सिन्हा ने हिन्दी व उर्दू की आशु – लिपि तैयार की।

१९२२ में श्री ऋषि लाल अग्रवाल के मन में एक हिन्दी की आशु – लिपि तैयार करने का विचार उठा। उस समय आप अंग्रेज़ी शार्ट हैण्ड के अच्छे ज्ञाता थे। अन्त में परिश्रम करते करते आपने 'ऋषि प्रणाली' के नाम से एक आशु – लिपि तैयार कर ली जो १९३८ में प्रकाशित हुई तथा भारत सरकार ने १९४७ में इसको मान्यता प्रदान की।

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – २७ जुलाई १९६९ – के सौजन्य द्वारा प्राप्त।
2. श्री भोलानाथ तिवारी के सौजन्य से प्राप्त।

श्रवण कुमार गोस्वामी द्वारा सुधार

ऐ ओ औ अं अः

मात्रायें :-

आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ

का

अन्य चिन्ह :-

क्र कृ र्क र्कं क् कँ

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी

फलक संख्या – ९६

देवनागरी के कुछ अन्य संशोधित रूप

हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग, द्वारा....

अ आ अि अी अु अू अे अै ओ औ

कट्टर = कट्‌टर, ज्ञ = ग्‍य, ज्ञान = ग्‍यान

श्री रामनिवास द्वारा.......

'ह' का चिन्ह = c, क+ह = कृ (ख), घ = गृ

श्री बी० बी लाल द्वारा.... नवीन अक्षर..

भ भा भी भी . ठ ध ण घ छ.

कुछ अन्य सुधार ...

ख = ख, भ = भ, ध = ध.

शासकीय सुधार :-----

'ई' की मात्रा कि = की, गी और ई की = गी

फलक संख्या – ९७

नेत्र हीनों के लिए ब्रेल लिपि

३००४ २००५ १००६	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	
	श	ष	स	ह	क्ष	ज्ञ	ड़	ढ़	ऋ	• ँ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

फलक संख्या – ९८

'फ० सं०– ९९' पर यह बतलाया गया है कि कौन सी रेखा किस ओर जाती है। मोटी तथा पतली रेखाओं द्वारा ही वर्णों में परिवर्तन आ जाता है। इसमें 'ष' का उच्चारण 'ख' से, 'श' का 'स' से तथा 'ण' का 'न' से बना लिया जाता है। पढ़ने पर जिसकी आवश्यकता हो उच्चारण कर लिया जाता है। इस कारण 'ष – श – ण' के लिये कोई अन्य चिह्न नहीं हैं। स्वरों के लिये केवल बिन्दु व डैश प्रयोग में लाये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं :—१ – 'अ ● आ –', २ – 'ए ● ओ' –' तथा ३ – 'ई ● ऊ –'। इनके समझने के लिये इनका उचित स्थान पर प्रयोग ही ठीक उच्चारण कराता है।

आशु – लिपि की परिभाषा : संसार की कोई भी भाषा व लिपि क्यों न हो, भाषा की गति लिपि की गति से बहुत अधिक होती है। मनुष्य चाहे कितनी भी शीघ्रता से लिखे परन्तु वह उन शब्दों व वाक्यों को जो उसने सुने हैं उस गति से नहीं लिख सकता जितनी गति से वह सुन रहा है। इस लिपि का आविष्कार सुनने व लिखने की शक्ति में साम्य लाने के लिये किया गया है। इससे सुना गया कोई शब्द भी छूट नहीं सकता और न ही बोलने वाले के शब्दों के आशय में कोई परिवर्तन आ सकता है। इसको सीखने के लिये व्याकरण का अच्छा ज्ञान होना अनिवार्य है। इसमें शब्दों के चिह्न भी पृथक् होते हैं।

इस लिपि के वर्णन से पाठक आशु – लिपि कदापि नहीं सीख सकते। यहाँ तो केवल इस बात का बोध कराया गया है कि इस प्रकार की लिपि भी विद्यमान है।

अंक

भारत में अंकों का प्रयोग कब आरम्भ हुआ तथा इनका जन्म कैसे हुआ कोई नहीं जानता। संसार के लगभग सभी विद्वान् एक मत हैं कि गणना का जन्म उँगलियों द्वारा हुआ होगा और लिखने में लकीरों का प्रयोग किया गया था जिसके प्रमाण प्राचीन लिपियों के रहस्योद्घाटन से विदित होते हैं। रेखायें, खड़ी व लेटी दोनों ही प्रकार की बनाई गईं।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक साधारण अशिक्षित नागरिक बीस के आगे नहीं गिन पाता था। बीस को कोड़ी या कोरी कहते थे। यदि ८५ गिनना है तो उनको ८५ नहीं अपितु चार कोरी पाँच कहा जाता था।

आरम्भ में अंकों का प्रयोग अक्षरों द्वारा किया जाता था। अक्षरों को अंकों के समान निर्धारित कर लिया जाता था।

शून्य का निर्माण भारत में ही हुआ। किस काल में हुआ, ज्ञात नहीं। परन्तु कुषाण काल के अंकों में शून्य का अभाव है। शून्य निर्माण का काल नवीं श० निर्धारित किया गया है। भारतीय लिपियों के अंक 'फ० सं० – १००' पर दिये गये हैं। देवनागरी के कुछ अंकों का विकास नीचे की ओर दिया गया है।

अंक

देवनागरी	१	२	३	४	५	६	७	८	९, ९	
दूसरी श०	—	=	≡	𑁕	𑁖	𑁗	𑁘	𑁙	𑁚	𑁒 = कुषाण
तीसरी श०	—	=	𑁓	𑁕	𑁖	𑁗	𑁘	𑁙	𑁚	जग्गय्यापेट
छठीं श०	—	=	≡	𑁕	𑁖	𑁗	𑁘	𑁙	𑁚	वलभी
खरोष्ठी	I	II	III	X	IX	IIX	IIIX	XX	IXX	
शारदा	𑇑	𑇒	𑇓	𑇔	𑇕	𑇖	𑇗	𑇘	𑇙	
टाकरी	𑛁	𑛂	𑛃	𑛄	𑛅	𑛆	𑛇	𑛈	𑛉	
बंगला	১	২	৩	৪	৫	৬	৭	৮	৯	
मैथिली	𑓑	𑓒	𑓓	𑓔	𑓕	𑓖	𑓗	𑓘	𑓙	
कैथी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
उड़िया	୧	୨	୩	୪	୫	୬	୭	୮	୯	
गुजराती	૧	૨	૩	૪	૫	૬	૭	૮	૯	
तेलुगु	౧	౨	౩	౪	౫	౬	౭	౮	౯	
कन्नड़	೧	೨	೩	೪	೫	೬	೭	೮	೯	
तमिल	௧	௨	௩	௪	௫	௬	௭	௮	௯	௰ ௱ ௲
मलयालम	൧	൨	൩	൪	൫	൬	൭	൮	൯	
उर्दू	١	٢	٣	۴	۵	۶	۷	۸	۹	
देवनागरी अंकों का विकास	= ⥱ २ २			≡ ⥱ ३ ३						

फलक संख्या – १००

पठनीय सामग्री

Bhattacharya, S.	:	A Dictionary of Indian History (1967).
Bühler, G.	:	Origin of Brahmi Alphabet.
Ibid	:	The origin of the Indian Alphabet & Numerals.
Burnell, A. C.	:	Elements of South Indian Palaeography, (1968).
Dani, A. H.	:	Indian Palaeography. (1963).
Dowson, John	:	The Invention of Indian Alphabets (J. RAS – XIII, 1881).
Diringer, David	:	The Alphabet. – A key to the History of Mankind. (1953).
Ibid	:	Writing. (1962).
Fleet, J. F.	:	Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. III.
Gelb, I. J.	:	A study of Writing. (1963).
Grierson, G.	:	Linguistic Survey of India.
Hultzsch, E.	:	Corpus Ins. Ind. Vol. I.
Konow, S.	:	Corpus Ins. Ind. Vol. II.
Mahalingam, T. V.	:	Early South Indian Palaeography. (1967).
Mirashi, V. V.	:	Corpus Ins. Ind. Vol. IV.
Narain, A, K. & Verma, T. P.	:	प्राचीन भारतीय लिपि शास्त्र और अभिलेखाकी. (1970).
Ojha, G. H.	:	भारतीय प्राचीन लिपि माला (3rd. Ed. 1959).
Pandey, R. B.	:	Indian Palaeography.
Ibid	:	अशोक के अभिलेख.
Roy, S.	:	The Story of Indian Archaeology – From. 1784 – 1947. (1961).
Sivaramamurti, C.	:	Indian Epigraphy and South Indian Scripts. (1952).
Sircar, D. C.	:	Select Inscriptions – Bearing on Indian History and Civilization.
Ibid	:	Indian Epigraphy.
Subramanian, T. N.	:	South Indian Temple Inscriptions.
Taylor, Issac	:	The Alphabet. 2 Vols. (1882).
Upasak, C. S.	:	The History of Palaeography of Mauriyan Brahmi Script. (1960).
Vasu, N. N.	:	Origin of Devnagri Alphabet — (J. A. S. B. Vol. LXV 1896).
Verma, T. P.	:	The Palaeography of Brahmi Script in North India. (1971).
Ibid	:	The Origin of Brahmi Script. (1979).

□

नेपाल

इतिहास

ई० पू० की लगभग छठी शताब्दी में उत्तर, दक्षिण व पूर्व से अनेक जातियाँ यहां आकर बसने लगीं। इसमें मुख्य थीं किरात, लिम्बस, खिम्बस तथा नेवार। किरात शैव थे। नेवारी शैव तथा बौद्ध दोनों ही थे। नेवारी व्यापारी थे। नेपाल का अर्थ (ने = पवित्र; बाल = मुलायम ऊन अर्थात नेबाल = नेपाल) है सुन्दर ऊन मिलने का पवित्र स्थान।

के० पी० जायसवाल के अनुसार लगभग दूसरी श० में वैशाली के लिच्छवि राजाओं ने नेपाल पर अधिकार कर लिया तथा सात पीढ़ी तक राज्य करते रहे। जयदेव प्रथम (३४० – ३५० ई०) ने अपनी राजधानी वैशाली से काठमण्डू बना ली। इससे पूर्व ३२० में चन्द्रगुप्त प्रथम का लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह हुआ।

छांगू से प्राप्त एक स्तम्भ लेख से ज्ञात हुआ कि पाँचवीं श० के अन्त में मानदेव काठमण्डू का नरेश था, यहीं से नेपाल का प्रामाणिक इतिहास आरम्भ होता है। छठी शताब्दी के अन्त में अंशुवर्मा नेपाल का राजा बना। इसने अपनी पुत्री का विवाह तिब्बत के तत्कालीन नरेश स्रोंगसांग गामपो (Srong Tsang Sgam Po) से कर दिया। चीन की एक राजकुमारी का विवाह भी इसी तिब्बत नरेश के साथ हुआ। यह दोनों राजकुमारियाँ बौद्ध धर्म की अनुयायी थीं इस कारण तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ने लगा।

लिच्छवि वंश ने बारहवीं श० तक राज्य किया तत्पश्चात् मल्ल वंश शासन करने लगा जिसका प्रथम नरेश राघवदेव मल्ल था। १३८० में जयस्थिति मल्ल राजा बना जिसने बहुत से सुधार किये। १४२८ में यक्ष मल्ल शासक बना जिसने अपने राज्य को अपने तीन पुत्रों में विभाजित कर दिया। अन्त में विभाजित होते सत्रहवीं श० में लगभग ५० छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो गया।

नेपाल की क्षीणता के काल में गोरखा राज्य के एक प्रभावशाली राजा पृथ्वीनारायण शाह ने नेपाल को एक सूत्र में बांधने का बीड़ा उठाया। छोटे छोटे राज्यों को परास्त करता हुआ १७६८ में वह काठमण्डू के महल में घुस पड़ा और मल्ल वंश के अन्तिम नरेश जयप्रकाश मल्ल को बन्दी बना लिया। १७७१ में एक विशाल राज्य का शासक बना तथा १७७४ में परलोक सिधारा। उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसके उद्देश्य को जीवित रखा। इधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति बढ़ती चली जा रही थी। उसने १८१४ में नेपाल राज्य पर आक्रमण कर दिया तथा १८१६ में सन्धि कर ली। देश की राजनीति पतन की ओर जा रही थी। जनता का शोषण तथा उस पर अन्याय हो रहा था। ऐसे आपत्ति काल में १८६४ की १५ सितम्बर को अपने भाइयों के सहयोग से जंगबहादुर ने राजगद्दी पर अधिकार कर लिया और राजसत्ता का वितरण किया ताकि भाई सन्तुष्ट रहें। अपने एक भाई को बहुत से अधिकार सौंप कर प्रधानमन्त्री बना दिया और वह भी इस प्रकार कि राजघराने का ज्येष्ठ पुत्र राजा तथा उसका भाई राना प्रधानमन्त्री बनेगा। अन्य उच्च पदाधिकारी भी राजघराने के ही होते थे।

नेपाल – १४ प्रांत, ७५ ज़िले
चौथी, ५वीं श० का नेपाल
मानसरोवर झील
सांपु या ब्रह्मपुत्र नदी
माउन्ट एवरेस्ट
कोसी
बागमती
नारायणी न. गन्डक न.
राप्ती न.
करनाली नदी
शारदा नदी
घाघरा न.
गोमती
गोंडा
फैज़ाबाद
लखनऊ
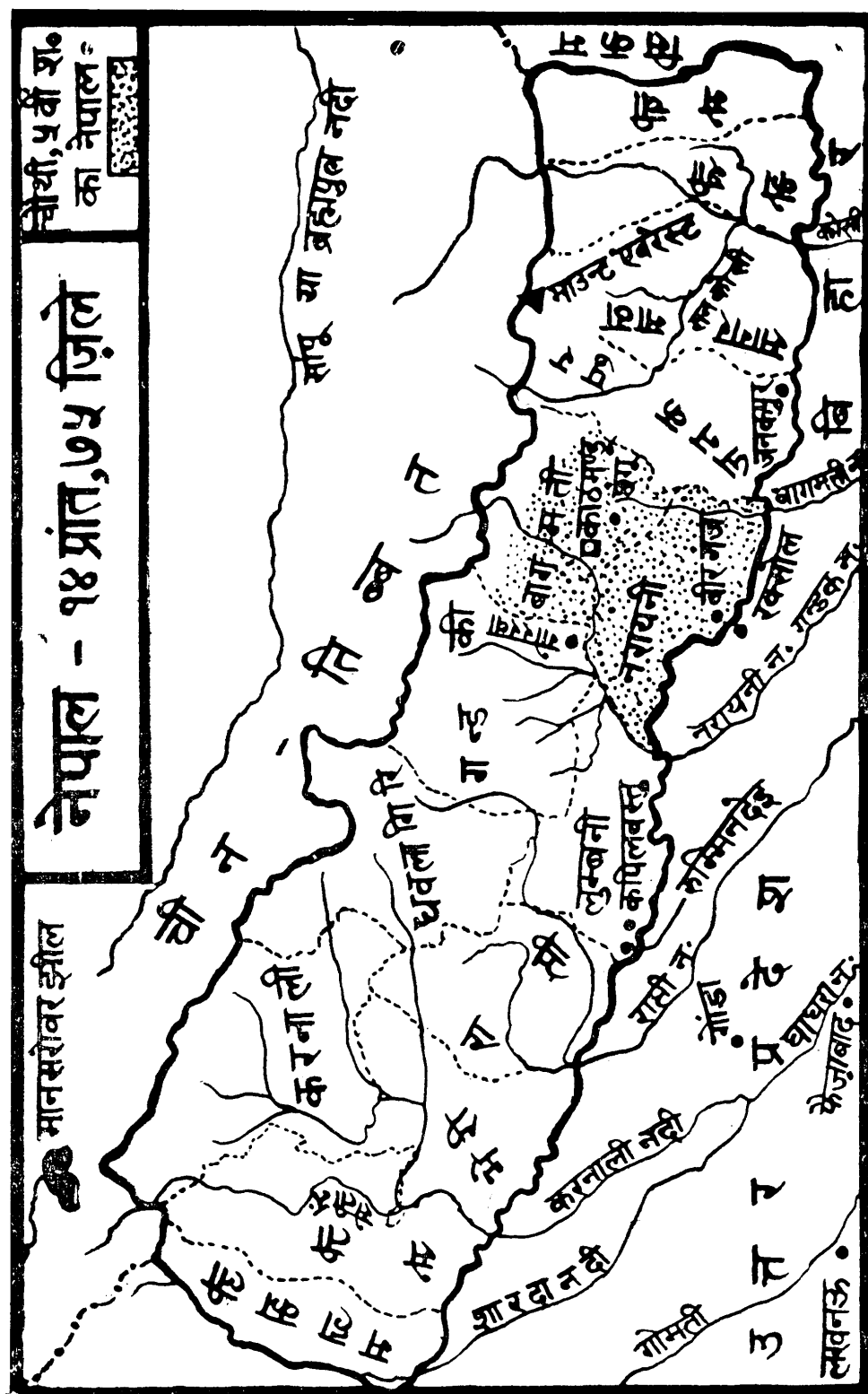
फलक संख्या – १०१

शनैः शनैः राजसत्ता प्रधानमन्त्री के हाथों में आ गई और राजा केवल नाममात्र को ही रह गया। इसका विरोध महाराजा त्रिभुवन वीर बिक्रम शाह देव अपने सारे राज – कुटुम्ब के साथ ६ नवम्बर १९५० को किया जो १८ फरवरी १९५१ को सफल हुआ। तब से राज्य की पूरी सत्ता का वितरण प्रजा में पंचायत राज्य के नाम से कर दिया गया परन्तु विशेष अधिकार राजा के हाथ में ही रहे। नेपाल की जनता महाराजा त्रिभुवन को राष्ट्र का पिता मानती है।

लेखन कला

जिस प्रकार भारत की भिन्न भिन्न लिपियों की जन्मदात्री ब्राह्मी है उसी प्रकार नेपाल में भी ब्राह्मी ही सब लिपियों की जन्मदात्री बनी। भारत में ब्राह्मी से गुप्त व कुटिल आई उसी प्रकार नेपाल में भी ब्राह्मी से पूर्व लिच्छवि तथा उत्तर लिच्छवि आई। 'फ० सं० – १०२' पर निम्न प्रकार लिपियों के अक्षर दिये गये हैं :—१. **देवनागरी वर्णमाला :** वर्णों की ध्वनि के लिये दी गई है।

२. **किरात लिपि :** जो किरात प्रदेश (सगर माथा – प्रात) में अब भी प्रयोग की जाती है। इसका उद्भव लगभग आठवीं श० में हुआ।

३. **रंजना लिपि :** जो कुटिल लिपि से विकसित हुई। इसका काल विद्वानों ने लगभग दसवीं श० निर्धारित किया है।

४. **भुंजि मोल :** (अर्थ = मक्खी का सर) का विकास लगभग चौदहवीं श० में हुआ। इस पर मैथिली लिपि का प्रभाव पड़ा।

५. **नेवारी लिपि :** का प्रयोग नेवारी करते हैं। इसका विकास सत्ररहवीं श० में हुआ था।

कुछ और लिपियों के अक्षर दिये गये हैं जो सत्रहवीं से बीसवीं श० तक नुलेख के लिये विकसित की गई। इनके केवल 'क – ख – ग – घ – ङ' अक्षर ही दिये गये हैं। नीचे अंक भी दिये गये हैं (फ० सं० – १०३)।

संयुक्त वर्ण

निम्नलिखित प्राचीन लिपियों के संयुक्त अक्षर तथा अभिलेखों के आरम्भिक शब्द निम्नलिखित फलक संख्याओं पर दिये गये हैं :—१. **किरात लिपि :** (फ० सं० १०४)।

२. **रंजना लिपि :** (फ० सं० १०५)। ३. **भुंजि मोल लिपि :** (फ० सं० १०६)।

पठनीय सामग्री

Bendell : Journey in Nepal.

Hemraj Shakya Vansh : नेपाल लिपि संग्रह.

Regmi : Ancient Nepal.

श्री ५ को सरकार पुरातत्व र संस्कृति विभाग, नेपाल : प्राचीन लिपि वर्ण माला।

□

नेपाल की लिपियाँ

१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५
अ					छ					ब				
आ					ज					भ				
इ					झ					म				
ई					ञ					य				
उ					ट					र				
ऊ					ठ					ल				
ए					ड					व				
ऐ					ढ					श				
ओ					ण					ष				
औ					त					स				
क					थ					ह				
ख					द					क्ष				
ग					ध					त्र				
घ					न					ज्ञ				
ङ					प					ह्म				
च					फ					श्री				

फलक संख्या – १०२

सुलेख के लिए कुछ सुन्दर लिपियाँ

कुंमोल					
क्वेंमोल					
गोलमोल					
पाचूमोल					
हिंमोल					
लितुमोल					
थौकन्हे					
कूटाक्षर	का	खा	गा	घा	ङ

देव नागरी अंक	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
किरात अंक										
रञ्जना अंक										
भुजिमो अंक										
नेवारी अंक										

फलक संख्या – १०३

किरात लिपि के संयुक्त वर्ण

का	कि-की	कु-कू	के	कै	को	कौ
क्	क्र	ख्र	घ्र	ग्र	च्र	छ्र
ज्र	झ्र	क्य	ख्य	ग्य	घ्य	च्य
ज्य	म्य	त्य	ल्य	क्क	न्न	च्च
ज्ज	त्त	प्प	फ्फ	म्म	ल्ल	गग

फलक संख्या – १०४

रंजना लिपि के संयुक्त वर्ण

का	कि	की	कु	कू	के	कै
को	कौ	चृ	जृ	दृ	फृ	क्य
ख्य	च्य	ध्य	न्य	क्र	प्र	म्र
र्ष	र्क्ष	ण्ठ	न्ध	ष्या	क्त	क्स

रंजना लिपि के कुछ शब्द

महाराजाधिराज परमेश्वर

फलक संख्या – १०५

भुजिमोल लिपि के संयुक्त वर्ण

का	कि	कु	कू	के	कै	को
कौ	क्य	ध्य	क्ष्य	ष्ा	क्स	ष्ट
क्ते	ण्ड	ध्द	त्त	र्घ्य	क्ष्ण	न्य
म्य	स्प	कृ	क्ष्म	न्त	द्य	शु

मुजिँमोल लिपि के कुछ शब्द

वैशाली महानगरी

फलक संख्या – १०६

सिक्किम

इतिहास

१६४१ में जब पाँचवाँ धार्मिक – शासक (लामा = पूजनीय) लाब – साँग ग्यात्सो (Lob – Sang Gya – Tso) राजसिंहासनारूढ़ हुआ तब एक राजवंशीय कुमार ने ल्हासा छोड़ दिया और सिक्किम पहुँच गया। उस समय यहाँ के मूल निवासी राज्य करते थे। उसने (राजकुमार) यहाँ के राजा को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया तथा लामा – धर्म की नींव डाली। तब से और अठारहवीं शताब्दी तक सिक्किम का राज्य तिब्बत के अन्तर्गत माना गया तथा यहाँ का शासक प्रांतपति माना गया।

१८१६ से अंग्रेजों ने इधर भी अपनी दृष्टि डाली। १८३९ में उन्होंने दार्जिलिंग की कुछ भूमि एक सैनोटोरियम के लिये सिक्किम के राजा से माँगी। १८४९ में ब्रिटिशों ने पूरी तराई (हिमालय पहाड़ का सबसे निचला भाग जो जंगलों से भरा पड़ा है और जहाँ से लकड़ी धन राशि के रूप में प्राप्त होती है) पर अपना अधिकार कर लिया। ब्रिटिशों के प्रति सिक्किम में घृणा के भाव उत्पन्न होने लगे। इसी क्रोध की अग्नि में दार्जिलिंग के उच्चपदाधिकारी आर्कीबाल्ड कैम्पबेन (Archibald Campben) तथा जॉज़ेफ़ हूकर (Joseph Hooker), जो सिक्किम में यात्रा पर गये थे, वध कर दिया गया।

१८६१ में ब्रिटिश सरकार के पदाधिकारियों ने सिक्किम के महाराजा को बाध्य किया कि वह सन्धि पत्र पर अपने हस्ताक्षर करें। महाराजा तिब्बत गया और सहायता की याचना की जो तिब्बत सरकार ने ब्रिटिशों से युद्ध करने के लिये प्रदान की। १८८८ में युद्ध हुआ और सिक्किम परास्त हुआ।

१८९३ में एक और सन्धि – पत्र प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत सिक्किम ब्रिटेन के संरक्षण में आ गया। इस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर तो हुए परन्तु महाराजा ने इसको मान्यता नहीं दी और न अपना सहयोग दिया। महाराजा फिर तिब्बत की ओर जाने लगा। इस बार नेपाल के मार्ग से जाने पर नेपाल सरकार ने उसको रोक कर ब्रिटिश सरकार के हाथों सौंप दिया। तब से सिक्किम का महाराजा अपने सारे जीवन एक बन्दी के रूप में रहा। १९१४ में उसका स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् उसका उत्तराधिकारी ताशी नंगयाल सिंहासन पर बैठा।

१९४७ में ब्रिटिश राज्य समाप्त हो गया। भारत स्वतन्त्र हो गया और ब्रिटिश सरकार की पिछली सारी सन्धियाँ निरर्थक हो गईं और एक नई सन्धि हो गई। १९४९ में एक आंदोलन हुआ। भारत सरकार से सिक्किम द्वारा सहायता की याचना की गई। सहायता दी गई। आन्दोलन का दमन कर दिया गया। तत्पश्चात् एक और सन्धि – पत्र भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत किया गया जिस पर १९५० में हस्ताक्षर हो गये। कुछ दिनों सिक्किम एक स्वतन्त्र राज्य रहा परन्तु विदेशी मामलों में भारत सरकार की सम्मति अनिवार्य रही, तदनन्तर भारत का एक राज्य बन गया।

सिक्किम
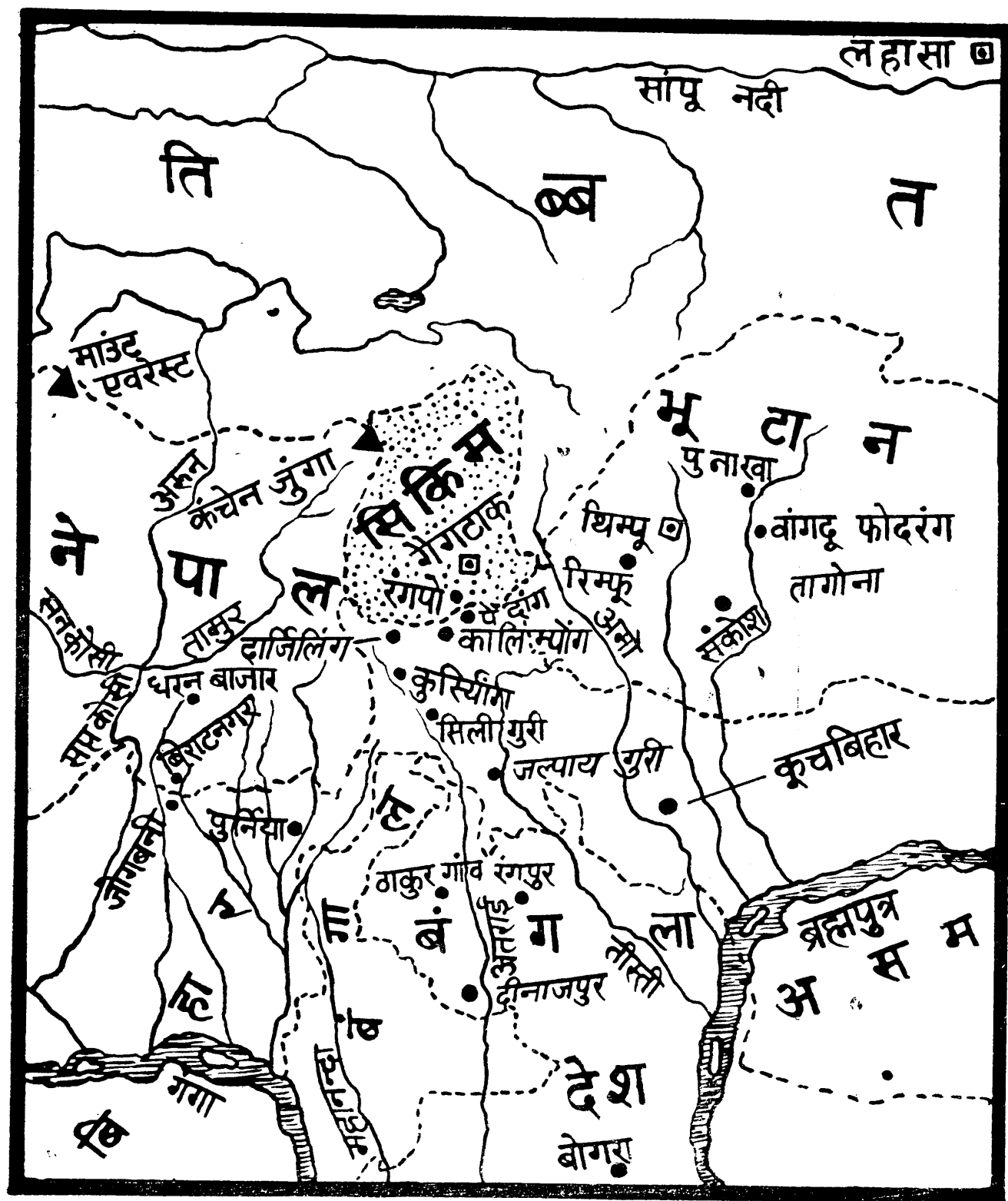
फलक संख्या – १०७

सिक्किम की लेप्चा या रोंग लिपि

क	ख	ग	ङ	च	छ	ञ
त	थ	द	न	प	फ	ब
म	त्स	थ्स	व	ज्य	स़	य
र	ल	श	स	ह	अ	फ़

स्वर-युक्त व्यंजन

न	ना	नाऽ	नि	नी
नो	नौ	नु	नू	ने

फलक संख्या – १०८

लिपि

यहाँ की लिपि का नाम लेप्चा या रोंग है। सिक्किम के मूल निवासी लेप्चा थे, उन्हीं के नाम पर इस लिपि का नाम भी रखा गया। इसमें २८ वर्ण हैं। १६८६ में इस लिपि का सिक्किम के राजा चकदोर नांगे ने आविष्कार किया (फ० सं० – १०८)।

पठनीय सामग्री

Grierson, G. : Linguistic Survey of India Vol. III, Part 1 (1966).

Morris, J. : Living with Lepchas (1938).

White, J. C. : Sikkim and Bhutan (1908).

श्रीलंका

इस देश को समय – समय पर विभिन्न नामों से पुकारा गया है। प्राचीन काल में सिंहल द्वीप या लंका, ग्रीक निवासी इसको टप्रोबेन (Taprobane), अरब – निवासी सेरनदीब, पुर्तगाल के निवासी जीलोन जिससे अंग्रेजों के लिये हो गया सीलोन (Ceylon) और कुछ दिनों पूर्व इसका नामकरण हो गया श्रीलंका।

इतिहास

पौराणिक वंशावली के अनुसार, जिसको महावंश कहते हैं, ४८३ ई० पू० में सर्वप्रथम सिंहली राजा विजय आर्यों के साथ आया, जिनकी भाषा संस्कृत थी। यहाँ के तात्कालिक मूल निवासी वेड्डा लोग थे। इन्हीं वेड्डा लोगों के राजा की एक पुत्री से राजा विजय ने विवाह किया। यह महावंश पाली भाषा में लिखा गया था। उस समय यहाँ की राजधानी राजारत्ते थी। तत्पश्चात् सिंहली राजाओं ने अनुराधापुर में स्थापित कर ली।

२४६ ई० पू० में भारत के सम्राट अशोक ने अपने भिक्षु पुत्र महिन्द को लंका भेजा जिसने बौद्ध धर्म के विषय में लंका निवासियों को ज्ञान प्रदान किया। १३० ई० पू० में अनुराधापुर के राजसिंहासन पर एक तमिळ इलाला ने अपना अधिकार जमा लिया परन्तु एक नेता दुत्ते गुम्मू ने उसका वध कर दिया।

सर विलियम ग्रेगरी (Sir William Gregory – १८७२ – ७७) ने एक पुरातत्त्व विभाग स्थापित किया जिसके अन्तर्गत लंका के शासकों की एक वंशावली तैयार की गई जिसमें राजाओं के अच्छे बुरे कर्मों तथा उनके आपसी – युद्धों का वर्णन किया गया।

११५३ में पिहिति (आधु० जाफ़ना) का एक राजा प्राक्रम बाहू राज्य करता था। ११५५ में इसने रोहूना के राजा के साथ युद्ध किया तथा उसको परास्त किया। उसने पुजारियों को अपनी छत्र – छाया प्रदान की परन्तु बौद्धों को बहुत सताया। उसने बर्मा (ब्रह्मा देश) पर भी आक्रमण किया। उसने मज़दूरों से बेगार करवा कर सुन्दर महलों तथा भवनों का निर्माण करवाया।

उत्तर की ओर से भारतीय राजाओं ने पिहिति पर कई आक्रमण किये। १४०८ में चीनियों ने आक्रमण किया तथा तत्कालीन शासक विजय बाहू चतुर्थ को बन्दी बना कर ले गये। लंका पर ३० वर्ष तक चीनियों का राज्य रहा। तत्पश्चात् विदेशी व्यापारियों का पश्चिम से आगमन आरम्भ हो गया।

सर्वप्रथम एक पुर्तगाली फ्रैंन्सिको डि अलमेडा (Fransico de Almeida) १५०५ में लंका पहुँचा। उस समय लंका सात राज्यों में विभाजित था। १५१७ में एक कोठी कोट्टा की राजाज्ञा से, कोलम्बों में बना ली गई और उसी के साथ एक छोटा सा दुर्ग भी। उस समय से पुर्तगालियों का किसी न किसी राज्य से युद्ध चलता ही रहा। जब उन्होने जाफना पर आक्रमण किया तब उन्होंने महात्मा बुद्ध का दांत प्राप्त कर लिया जिसको उन्होंने गोआ में जलाया परन्तु बाद में ज्ञात हुआ कि वह असली नहीं था। वह तो आज भी सुरक्षित रखा है।

मालडीव द्वीप समूह तथा श्रीलंका
लकाडीव द्वीप समूह
अरब सागर
मंगलोर
बंगलोर
वेल्लोर
मद्रास
पाण्डीचेरी
कालीकट
ट्रिची
तंजऊर
मदुरा
कोचिन
बंगाल की खाड़ी
जाफ़ना
कोलम्बो
मालडीव द्वीप समूह
भारतीय सागर
१. टुटीकोरिन
२. त्रिवेन्द्रम
३. अल्लेप्पी
४ कोयम्बटोर
५ ट्रिंकोमली
१. पोलन्नारूवा
२ सिगीरिया
३ कैन्डी
४. रत्नपुर
५. गम्पाहा
६. केलानिया
७. निगम्बो
८. पुत्तालम
९. अनुराधापुरा
भारत
धनुषकोटी
तलाईमन्नार
ट्रिंकोमली
बतीकलुवा
श्री लंका
भारतीय सागर
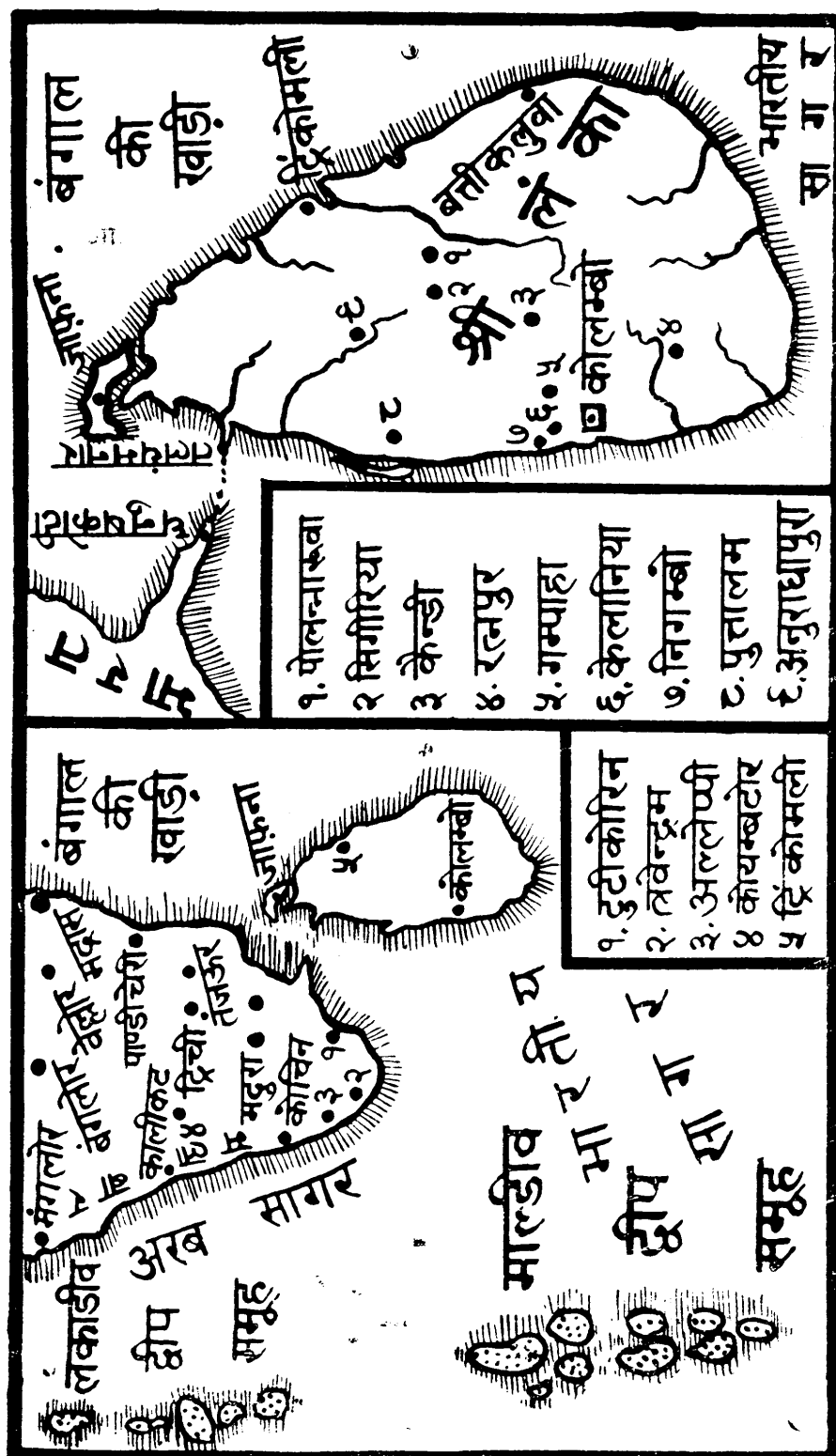
फलक संख्या – १०९

एक डच कैप्टेन योरिस स्पिल बर्ग (Joris Spilberg) १६०२ में पूर्वी किनारे पर उतरा और वहाँ के राज्य कैन्डी के राजा ने उसका स्वागत किया तथा उससे पुर्तगालियों के विरुद्ध सहायता की याचना की ताकि वे लंका के बाहर निकाल दिये जायें। इसी याचना के अनुसार डचों (हालैण्ड देश के निवासी) ने लंका पर आक्रमण कर पूर्वी किनारे की कोठियों को नष्ट कर दिया। १६४४ में निगाम्बो पर, १६५७ में जाफना पर तथा कोलम्बो पर डचों का अधिकार हो गया।

१७९५ में ब्रिटिशों ने पूर्वी किनारे पर आक्रमण करके डचों को परास्त कर दिया तथा कुछ दिनों पश्चात् पूरे देश पर अधिकार कर लिया। १८०२ में इसका शासनाधिकार इंगलैण्ड के सम्राट को मिल गया और उपनिवेश बन गया।[1]

कैण्डी के निवासी बौद्ध हैं वे सिंहल द्वीप निवासियों को गिरी हुई दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उन्होंने देश पर आक्रमण के लिये विदेशियों को बुलाया था। बाद में सिंहलद्वीप निवासियों तथा तमिळ लोगों ने मिलकर १९२१ में एक राष्ट्रीय कांग्रेस बनायी।

४ फरवरी १९४८ को यह देश स्वतंत्र हो गया परन्तु ब्रिटिशों का एक स्वतंत्र उपनिवेश (Dominion) जैसे ऑस्ट्रेलिया, कनाडा आदि माना गया। तदनन्तर गणतन्त्र हो गया और श्रीलंका नाम हो गया।

लिपि

'फ० सं० – ११० – ११० क' पर दी गई वर्णमाला के वर्ण दक्षिण भारत की लिपियों द्वारा लगभग अठारहवीं शताब्दी में विकसित किये गये। इस देश की प्राचीनता भारत देश से पृथक् नहीं है क्योंकि भारत की संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव इस देश पर पड़ा है।

पठनीय सामग्री

Codrington, H. W. : A short History of Ceylon (1939).
Hussey, D. M. : Ceylon and World History – 3 Vols. (1938).
Nicholas, S. E. N. : Handbook on Ceylon. (1939).

सिंहली लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए
ऐ	ऑ	ओ	औ	अं	अः	क	ख
ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब	भ	म	य
र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ

फलक संख्या – ११०

सिंहली लिपि के शब्द व संयुक्त अक्षर

प्र प्ट त्र ज्ञ क्ष

भि न् न(भिन्न) मातृत्व

स्वतंत्र मिश्रित

पिरूनु = भरा हुआ कले (घड़ा) दिय (जल) नो (नहीं)

सेले (हिलना)

अर्थात :
भरे हुये घड़े का पानी नहीं छलकता

फलक संख्या – ११० क

मालडीव द्वीप -- समूह

इतिहास

इस द्वीप समूह में लगभग ३०० द्वीप हैं जिनमें से १७ द्वीपों पर लोग निवास करते हैं।

सर्वप्रथम यहाँ पुर्तगाली १५७८ में पहुँचे परन्तु अपना राज्य स्थापित न कर सके। भारत के मलाबार के पश्चिमी किनारे पर निवास करने वाले मोपला इन द्वीपों पर लूट – मार करने के लिए आक्रमण करते रहते थे। १६४५ में मालडीव के निवासियों ने लंका के राजा से निवेदन किया कि उनकी रक्षा की जाये। तब यह लंका के संरक्षण में आ गया, परन्तु मालडीव पर राज्य सुलतान का ही बना रहा जो पैतृक होता था।

१९५२ में यह देश गण – तंत्र हो गया और अन्तिम सुलतान शासक का चचेरा भाई अमीन – दीदी इसका राष्ट्रपति बना।

इस द्वीप के तीन सांस्कृतिक खण्ड माने जाते हैं। पहला उत्तरी खण्ड जो भारत से सम्बन्धित है, दूसरा मध्य भाग जहाँ शासनाधिकारी आदि निवास करते हैं अरब – संसार से सम्बन्धित है तथा तीसरा खण्ड दक्षिण का है जिसमें आदिवासी अधिक संख्या में रहते हैं जिनका लंका से सम्बन्ध रहता है।

माले इसकी राजधानी है। यहाँ के आदिवासी भी माले ही कहलाते हैं। ६ अगस्त १९६५ को यह देश स्वतंत्र हो गया।

लिपियों का जन्म

इस द्वीप समूह में दो प्रकार की लिपियाँ मिली हैं।

देवेही लिपि : जो दक्षिण भारत तथा सिंहली से मिल कर बनी है जो दक्षिण के द्वीप समूह से प्राप्त हुई। इसका काल ईसा की १२वीं शताब्दी निर्धारित किया गया है।

जबालीटूरा : जो उत्तर के द्वीप समूह से प्राप्त हुई। इसमें अरबी तथा तेलुगु – कन्नड़ के अंक पाये जाते हैं। ९ अंक अरबी के तथा ९ अंक तेलुगु – कन्नड़ के लेकर बनाई गई।

इन दोनों लिपियों को प्रिंसेप तथा टेलर ने पहचाना है। प्रिंसेप ने एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल के जर्नल न० ५ (Journal of Asiatic Society of Bengal No. 5) में तथा टेलर ने अपनी पुस्तक "एल्फाबेट" – पृष्ठ ३५८ (Alphabet II – P. 358) में प्रकाशित करवा कर यह लिखा है कि यह लिपियाँ कई लिपियों के मिश्रण से प्रयोगात्मक बनाई गई हैं।

इन दोनों लिपियों के वर्ण 'फ० सं० – १११' पर दिये गये हैं। इन दोनों में ही केवल १८ वर्ण पाये जाते हैं।

देवेही हकूरा बायें से दायें लिखी जाती थी तथा जबाली टूरा दायें से बायें। स्वरों का प्रयोग हर वर्ण के साथ भारतीय पद्धति से ही किया जाता है।

पठनीय सामग्री

Hockley, F. W. : A Short Account of the People, History and Culture of Maldive Archipelago (1935).

Prinsep, James : JASB – No. 5.

Taylor, Issac : Alphabet, Vol II, Page – 358.

मालदीव की लिपियाँ

ध्वनियां →	ह	थ	ण	र	ब	ल
देवेही हकुरा						
जबाली टूरा						
ध्वनियां →	क	अ	व	म	फ	ध
देवेही हकुरा						
जबाली टूरा						
ध्वनियां →	ट	ल	ज	न	स	ड
देवेही हकुरा						
जबाली टूरा						

जबाली टूरा में स्वरों का प्रयोग

बं बू बु बौ बो बी बि बै बे बा ब

फलक संख्या – १११

अध्याय : ३

पश्चिम एशियाई देशों की लेखन कला का इतिहास

मेसोपोटामिया : १

इतिहास

मेसोपोटामिया का अर्थ है, 'दो नदियों के मध्य की भूमि'। इसी कारण यूनानियों (ग्रीस निवासी) ने इस देश का नाम "मेसोपोटामिया" रखा, क्योंकि यह दो नदियों – दजला (Tigris) और फ़रात (Euphrites) — के मध्य स्थित था। इसका आधुनिक नाम 'ईराक़' है। यहाँ लगभग ६००० से ४००० वर्षों के मध्य काल में तीन — सुमेर, बेबीलोन तथा असीरिया की सभ्यताओं ने जन्म लिया। इसी देश को बाइबिल में 'ईडिन का उपवन (Garden of Edin)' कहा गया है। यहूदी व ईसाई धर्मों के मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम मानव ने पृथ्वी पर आकर यहीं निवास किया।

मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग के मूल निवासी सेमिटिक (Semitic)[1] थे। सुमेर जाति के लोगों ने आकर इन मूल निवासियों को अपने अधीन कर लिया। उनकी संस्कृति व राजनीति नष्ट करके अपनी धार्मिक व राजनैतिक नीतियाँ चलाईं। सुमेर जाति के लोग कौन थे तथा कहाँ से आये यह कोई नहीं जानता। विभिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी कल्पनायें की हैं, जिनके विषय में यहाँ उल्लेख करना तथा किसी निश्चय पर न पहुँचना केवल विषय का विस्तार करना होगा। इतना अवश्य है कि सुमेर जाति के लोगों के आने से तथा मूलनिवासियों के साथ सम्मिश्रण होने से एक नये प्रकार की तथा एक उच्चकोटि की संस्कृति ने जन्म लिया। ईसा के लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व सुमेर जाति के लोग पूर्णतया बस गये, जिनके कारण इस देश का नाम सुमेर (जिसको अरबी में 'सूमर' कहते हैं) पड़ गया।

इस जाति का इतिहास आक्रमणों, युद्धों तथा नगर – राज्यों के निर्माणों से भरा पड़ा है। कितने नगर – राज्य बने तथा नष्ट हो गये कहना कठिन है। ३५०० ई० पू० तक कुछ स्थिरता आयी और सुमेर की भूमि पर लगभग १३ नगर राज्य स्थापित हो गये जिनके नाम निम्नखिखित थे :—सिप्पर, उर, उरुक, किश, अशकाब, लराक, निप्पुर, अदाब, उम्मा, लैगाश, बद – तिबिरा, लारसा और इरीदु।

प्रत्येक नगर – राज्य के चारों ओर लगभग १६००० वर्गमील का हरा भरा क्षेत्र होता था। इन नगर – राज्यों का एक मुख्य देवता होता था। इनका एक शासक होता था जो दिव्य – रक्षक, राज्याध्यक्ष तथा नगर – देवता का मुख्य सेवक होता था।

1. 'सेमिटिक' शब्द का प्रयोग शिलोज़र (Schlozer) ने १७८१ ई० में किया। इस जाति का सम्बन्ध नूह (Noah) के पुत्र साम (Shem) के कुटुम्ब से माना गया है।

प्राचीन मेसोपोटामिया
सभ्यता के आरम्भ से हम्मूराबी तक
४००० से १६०० ई०पू० तक
एशिया माइनर
हित्ती जाति
भूमध्य सागर
कैस्पियन सागर
उरार्तू
वान झील
उरमिया सागर
मीडिया
कस्साइट जाति
गूटी
हुरियन जाति
निनेवः
असीरिया
अशुर
दूरकुरीगाल्जू
यशनुन्ना
मितन्नी राज्य
मारी
फरात नदी
दजला नदी
अक्काद
सुमेर
अगादे
सिप्पर
बेबीलोन
आयसिन
उम्मा
उरुक
लारसा
उर
इरीदू
किश
निप्पुर
अदाब
लैगाश
एलाम
सूसा
अमोर जाति
समारिया
जेरुसेलाम
सेमेटिक जाति
डेड सागर
अरामियन जाति
कनआन
लाल सागर
पर्शिया की खाड़ी

फलक संख्या – ११२
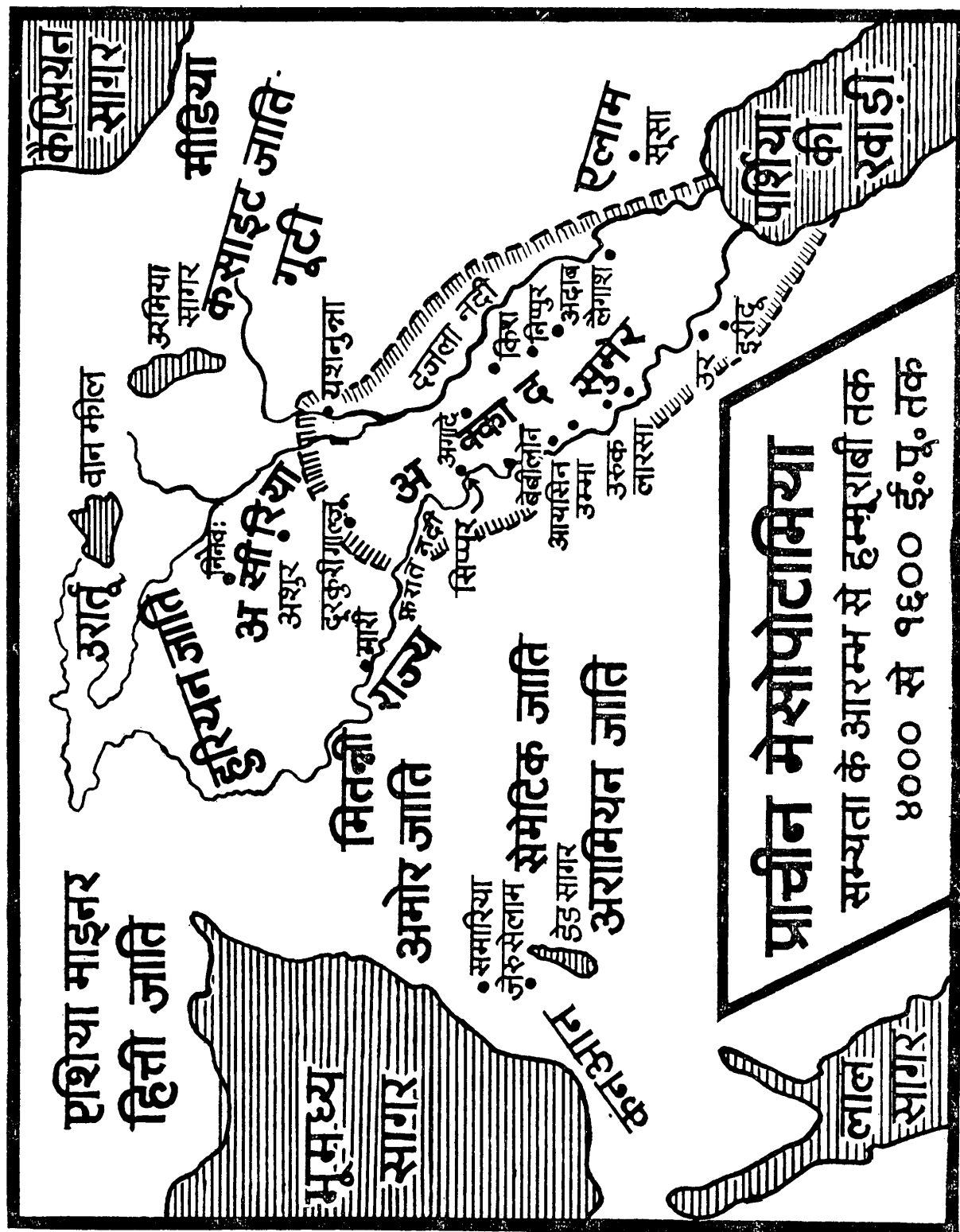
एलाम (Elam)[1] के निवासी जो सुमेर के पूर्वी पहाड़ों में निवास करते थे जब तब आकर सुमेर की भूमि पर आक्रमण करते रहते थे परन्तु लगभग २५५० ई० पू० में लैगाश (आधुनिक टेल्लों) के एन्सी (Governor) एन्नातुम्मे ने उनको परास्त कर के तथा उरुक (आ० वरक), उर (आ० मुकय्यर) तथा किश (आ० एल घेमिर) नगर – राज्यों को भी पराजित करके किश के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो गया।

सुमेर के उत्तर – पश्चिम में हुरियन जाति का मितन्नी राज्य था जिसकी राजधानी मारी (आ० हरीरी) थी। मारी के निवासियों ने सुमेर की भूमि पर आक्रमण आरम्भ कर दिये और कुछ दिनों के पश्चात् राज्य भी करने लगे। इनका राज्य लगभग १३६ वर्ष तक रहा। २४१० ई० पू० में एन्तेमना ने उनको मार भगाया और सुमेर को स्वतंत्र कर लिया।

तत्पश्चात् सुमेर के नगर – राज्यों में आपस में झगड़े तथा गृह – युद्ध चलते रहे। इन्हीं दिनों लगभग २४०० ई० पू० में उम्मा (आ० टेल[2] जोखा) के एन्सी लुगाल ज़ग्गेसी (लू के अर्थ हैं 'पुरुष' तथा 'गाल' के अर्थ हैं 'महान्' अर्थात् महान् पुरुष अथवा राजा) ने लैगाश के राजा उरकगीन को परास्त कर २३७० ई० पू० तक राज्य किया। इस राजा को मेसोपोटामिया के इतिहास में एक कड़ा शासक माना गया है। इसकी राजधानी उरुक थी।

इन्हीं दिनों एक पर्यटन – शील सेमिटिक जाति शनैः शनैः अगादे या अक्काद (आ० एल दीर) तथा किश के नगर – राज्यों में आकर बसने लगी। राजनीति में कुछ हस्ताक्षेप करने के पश्चात इस जाति ने अपना राज्य भी स्थापित कर लिया। अक्काद में निवास करने के कारण यह जाति भी अक्कादियन कहलाने लगी। इसी जाति में एक भाग्यशाली वीर उत्पन्न हुआ जो सरगोन के नाम से संसार के प्राचीन इतिहास में विख्यात हुआ। इसकी माँ एक पुजारिन थी जिसको तात्कालिक धार्मिक एवं सामाजिक बन्धनों के कारण आजीवन अविवाहित रहना पड़ा। फिर भी दुर्भाग्य से इसके एक पुत्र पैदा हुआ। अपयश के भय से इसने अपने पुत्र को त्याग दिया। सरगोन को बचपन में बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा। बड़े होने पर यह किश नगर के राजा उर-ज़बाबा का मुख्य – साक़ी (cup – bearer – in – chief) बन गया। उस समय महल में राजा के विरुद्ध चारों ओर एक षडयन्त्रों का जाल बिछा हुआ था। ऐसे अवसर को सरगोन ने हाथ से न जाने दिया और अवसर पाकर राजसिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। इसी समय से अक्काद की सेमिटिक जाति का प्रभुत्व स्थापित होने लगा। इस जाति के लोग तत्कालीन सुमेर निवासियों से देखने में तथा भाषा आदि में भिन्न थे। इसी काल से कीलाकार लिपि का प्रयोग अक्कादियन भाषा के लिये किया जाने लगा।

सरगोन ने उरुक पर अचानक आक्रमण कर दिया और लुगाल ज़ग्गेसी को जीवित पकड़ कर कुत्ते की तरह गले में जंजीर बांध कर निप्पुर (नूफ़र) ले गया। तत्पश्चात् उसने उर को भी जीत लिया और एक विशाल राज्य की आधार शिला रखी। अब उसका नाम सरगोन से महान् सरगोन हो गया जिसको अक्कादियन भाषा में सारु केनु (उचित तथा योग्य राजा) कहते थे। इसका राज्य २३६९ से २३१६ ई० पू० तक स्थित रहा। इसके मरणोपरांत उसका पुत्र मनीशतुम राजसिंहासनारूढ़ हो गया जिसने २२९२ ई० पू० तक राज्या किया। तत्पश्चात् उसके पौत्र नरमसिन ने लगभग २२५५ ई० पू० तक शासन किया। इसने एलाम को

1. बेबीलोनियन भाषा में एलाम कहा जाता था परन्तु पर्शियन भाषा में इसका नाम सुसियाना था। इसकी राजधानी का नाम सूसा एवं सूस था।
2. टेल के अर्थ हैं टीला।

परास्त कर अपने अधीन कर लिया तथा अपने अधीन एक एलाम – निवासी को एन्सी (गवर्नर) नियुक्त कर दिया जिसका नाम शिलहक इन्शुशिनाक था। इसी एन्सी ने अपनी शक्ति को बढ़ा कर अवसर पाकर नरमसिन पर ही आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में नरमसिन परास्त हुआ। इन्शुशिनाक ने अपने देश एलाम को पुनः स्वतन्त्र कर लिया तथा पड़ोस के नगर – राज्यों को भी अपने अधीन कर लिया और अपना उपनाम शरगाली शर्री (जिसके अर्थ हैं — राजाओं का राजा) रख लिया। इसने २२५४ से २२३० ई० पू० तक राज्य किया। इसके स्वर्गवास हो जाने पर इसके पुत्र दूदू तथा पौत्र शुदरल सिंहासन पर बैठे परन्तु उनका शासन अधिक दिनों तक न चल सका।

सरगोन राज्य के पतन के दिनों में जब राज्य अशक्त होने लगा तब उत्तर के पहाड़ों में निवास करने वाली एक जाति के आक्रमण होने लगे। यह जाति असभ्य थी, लूटमार किया करती थी तथा इसका नाम गूटी था। इसने सुमेर व अक्काद के नगर – राज्यों को परास्त कर अपना राज्य स्थापित कर लिया तथा लगभग सौ वर्ष तक राज्य किया। इसका राज्य फिर भी दृढ़ तथा स्थिर न हो सका। सुमेर के निवासियों पर अत्याचार होने के कारण व्यापार में कमी तथा कृषि की उपेक्षा होने लगी। इस जाति का सबसे प्रसिद्ध व उल्लेखनीय राजा जूडिया (गूडिया Gudea) था। वह बड़ा प्रतापी नरेश था।

गूटी जाति के राज्य को समाप्त करने वाला उर नगर – राज्य का राजा उर नम्मू था जिसने कुछ अन्य नगर – राज्यों को अपने अधीन कर एक विशाल राज्य की स्थापना की। इसने २११२ से २०९६ ई० पू० तक राज्य किया। इसी उर नम्मू ने संसार के सर्वप्रथम न्याय शास्त्र (Law Code) को पाँच इंच चौड़ी तथा आठ इंच लम्बी ईंटों पर उत्कीर्ण करवा कर निर्माण किया।

सम्भवतः इसी के शासन काल में इब्राहिम[1] ने उर नगर से हेबरोन (कनआन देश में स्थित) नगर को स्थानान्तरण किया। इब्राहिम (हेब्रू में अब्राहम) एक मूर्तिकार तथा मूर्ति – पूजक टेरा का पुत्र था। उसके मन में एकेश्वरवादी विचार उत्पन्न हुए जो उर के निवासियों के विचारों से विरुद्ध थे। इसी कारण इब्राहिम अपने कुछ मतानुयाईयों के तथा कुटुम्बियों के साथ कनआन चला गया। बाद में यही संसार के दो महान् धार्मिक मतों (इस्लाम तथा जूडा वाद) का पैग़म्बर माना जाने लगा।

उर नम्मू के वंश में निम्नलिखित शासक हुये :—

१. उर नम्मू	संस्थापक	२११२	से	२०९६	ई० पू०	तक
२. शुलगी	उर नम्मू का पुत्र	२०९५	से	२०४८	,,	,,
३. अमर सिन	शुलगी का पुत्र	२०४७	से	२०३९	,,	,,
४. शू सिन	अमर सिन का पुत्र	२०३८	से	२०३०	,,	,,
५. इब्बी सिन	शू सिन का पुत्र	२०२९	से	२००६	,,	,,

एलाम के आक्रमणकारियों ने इस वंश के अंतिम शासक इब्बी सिन को बन्दी बना लिया तथा अपने देश ले गये। इस प्रकार इस वंश का अंत हो गया। इन आक्रमणों के फलस्वरूप उर नगर नष्ट – भ्रष्ट हो गया।

पश्चिम से ई० पू० की बीसवीं श० में एक अन्य सेमिटिक जाति के लोग हुरियन जाति के आक्रमणों के कारण अपनी जन्म भूमि काडेश (कनआन) छोड़कर सुमेर तथा अक्काद की भूमि में आकर बसने लगे। इस

1. इब्राहिम अलह सलाम अर्थात् अल्लाह की इन पर सलामती हो।

जाति का नाम अमोर (अमूरू – Amorites) था। यह लोग या तो व्यापार करते थे या सेना में भर्ती होकर युद्ध करते थे। ये शनैः शनैः नगर – राज्यों की राजनीति में बाधा डालने लगे, अपनी सत्ता को बढ़ाने लगे और एक दिन ऐसा आया कि सुमेर निवासी अपना अस्तित्व खो बैठे।

अब दो राज्य स्थापित हुए। पश्चिम के राज्य में तीन नगर, बेबीलोन (आ० हिल्ला), आइसिन (आ० बहरियत) और लारसा (आ० सेनख़र्ब) तथा उत्तर के राज्य में दो नगर, अशुर (आ० शरकात) और एशनुन्ना (आ० टेल असमार) इन दोनों राज्यों ने मिलकर लगभग तीन सौ वर्ष राज्य किया।

इन राज्यों का प्रथम शासक सुम्मू अबूम था जिसने लगभग १८२६ से १८१३ ई० पू० तक राज्य किया। इसने दोनों राज्यों के मध्य एक नई राजधानी का निर्माण करवाया जिसका नाम सुमेर की भाषा में का – डिंगर – रा तथा अक्काद की भाषा में बाब – इलिम रखा गया। इन दोनों शब्दों का अर्थ था 'भगवान् का द्वार'। बाद में बाइबिल तथा बेबिल हो गया। ग्रीक लोगों ने 'यन' [N] अक्षर को जोड़ दिया जिस कारण बेबिलन तथा बेबीलोन कहलाने लगा। इस नगर ने निर्माण – कर्त्ताओं द्वारा कितने अच्छे दिन तथा आक्रमण – कर्त्ताओं द्वारा कितने बुरे दिन देखे हैं। लगभग ई० पू० की सातवीं श० में यह विश्वविख्यात नगर था जो आज केवल मिट्टी के तीन टीलों द्वारा दृष्टिगोचर होता है। उसी के निकट एक गाँव हिल्ला बसा है जो बेबीलोन का प्रतिनिधित्व करता है।

इन दो राज्यों के शासकों का वंश बेबीलोन के प्रथम वंश के नाम से ज्ञात है। इस वंश के निम्नलिखित शासक हुए :—

१. सुम्मू अबूम	१८२६	से	१८१३	ई०	पू०	तक
२. सुम्मू ला इलुम	१८१२	,,	१७७७	,,		,,
३. ज़बूम	१७७६	,,	१७६३	,,		,,
४. अपिल सिन	१७६२	,,	१७४५	,,		,,
५. सिन मुबालित	१७४४	,,	१७२५	,,		,,
६. हम्बू राबी[1]	१७२४	,,	१६८२	,,		,,
७. सम्सू इलूना	१६८१	,,	१६४४	,,		,,
८. अबी – एशु	१६४३	,,	१६१६	,,		,,
९. अम्मी दिताना	१६१५	,,	१५७९	,,		,,
१०. अम्मी ज़दूगा	१५७८	,,	१५५८	,,		,,
११. सम्सू दिताना	१५५७	,,	१५२६	,,		,,

इस वंश के राजा हम्मू राबी ने[1] अपनी प्रजा की भलाई के लिए बहुत कार्य किये। यह संसार के प्रसिद्ध शासकों की सूची में गिना जाता है। इसके नाम की व्याख्या इस प्रकार की जाती है :—

---

1. विभिन्न विद्वानों ने हम्मूराबी के निम्नलिखित शासन काल निर्धारित किये हैं :—
—सिडनी स्मिथ (Sydney Smith) ने १७९२ – १७५० ई० पू०।
—एडवर्ड मियर (Edward Meyer) ने तथा
—एल० डबल्यु० किंग (L. W. King) ने २१२३ – २०८१ ई० पू०
'Cambridge Ancient History'. Vol. I, p. – 156.
—'Encyclopaedia Britannica Vol. II, p. – 42. २०६७ – २०२५ ई० पू०
—ए० मूरगट (A. Moorgat) ने १७२४ – १६८२ ई० पू०

'हम्मू या अम्मू = चाचा तथा राबी = बड़ा अर्थात् बड़ा चाचा'। दूसरी व्याख्या द्वारा 'खम्मू से हम्मू बना'। खम्मू एक देवता का नाम था। इस नरेश का काल – निर्धारण में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। इस पुस्तक में मूरगट वाला काल ठीक मान लिया गया है।

हम्मू राबी का 'आँख के बदले आँख' का विधान, जिसमें लगभग दो सौ क़ानून थे, संसार का एक महान् कृत्य माना जाता है। उसने इस विधान के कई शिलालेख उत्कीर्ण करवा कर लगवाये। वह कहता था कि उसके परम पूज्य सूर्य देवता ने उसको यह क़ानून प्रदान किये हैं (बहुधा लोगों ने देवताओं व भगवान के नाम पर ही अपने बनाये क़ानून चलाये)। इस विधान का एक शिलालेख एलाम का एक आक्रमणकारी ई० पू० की सोलहवीं श० में सूसा ले गया जो १९०१ ई० के उत्खनन में जे० डी० मॉर्गन द्वारा प्राप्त हुआ।

इस वंश का अन्तिम राजा शम्सू दिताना था जिसके मरणोपरांत यह वंश समाप्त हो गया। एशिया माइनर की ओर से हित्ती जाति के आक्रमणों के कारण यह राज्य क्षीण अवस्था को प्राप्त होने लगा। हित्ती लोग राज्य में घुस पैठ कर एवं लूट मार कर चले जाया करते थे। उनको इतनी दूर से राज्य की व्यवस्था करना कठिन था। ऐसे संकट काल में एलाम के उत्तर की ओर पर्वतों में निवास करने वाली एक कसाइट जाति के लोगों ने १७४० ई० पू० में बेबीलोनिया के देश पर विनाशकारी आक्रमण आरम्भ कर दिये थे। १५२६ ई० पू० में इस जाति ने बेबीलोनिया पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया। बेबीलोन नगर का नाम कार – दुनियाश रखा। इसी वंश के एक नरेश कुरी गाल्ज़ू द्वितीय ने अपने राज्य काल (१३३७ से १३१३ ई० पू० तक) में एक नई राजधानी दुर – कुरी गाल्ज़ू के नाम से निर्माण करवाई। इस जाति के राजाओं ने लगभग चार सौ वर्ष राज्य किया।

सुमेर के उत्तर की ओर के एक छोटे से राज्य का नाम, अशुर देवता के नाम पर, एक ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस (Herodotus) के अनुसार जो इतिहास का जन्मदाता माना जाता है, असीरिया (Assyria) रखा। अशुर नूह (Noah) के पुत्र साम का पुत्र था जो इस राज्य का मुख्य देवता था तथा जिसके नाम पर असीरिया का मुख्य नगर अशुर भी बसाया गया था। यहाँ के शासक अपने नाम के पूर्व इस देवता का नाम जोड़ दिया करते थे। आरम्भ में यह मितन्नी राज्य का एक प्रान्त था। जब हित्ती राज्य के एक शासक शुप्पी लूली उम्मा (या शुप्पिलूली माश) ने मितन्नी राज्य का पश्चिमी भाग अपने अधीन कर लिया तब असीरिया का शासक अशुर उबालित प्रथम ने अपने राज्य को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

वैसे तो असीरिया के कई शासक हुए परन्तु प्राचीन इतिहास में उन्हीं राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने या तो कुछ स्मारकों का निर्माण करवाया अथवा शिलाओं पर कुछ लेख उत्कीर्ण करवाये। क्योंकि इतिहास की आधार शिला के लिये इसी प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ उल्लेखनीय शासकों के निम्नलिखित नाम :—

१. **तिघलत पलेसर प्रथम :** जिसने १११४ से १०७६ ई० पू० तक राज्य किया। कसायट जाति का राज्य समाप्त किया। छोटे – छोटे राजाओं को अधीन करके एक विशाल राज्य की नींव डाली।

२. **अदाद निरारी द्वितीय :** ने ९१० से ८९० ई० पू० तक राज्य किया।

३. **तुकुल्टी निनुरता द्वितीय :** ने ८८९ से ८८४ तक।

४. **अशुर नसीर पाल द्वितीय :** ने ८८४ से ८५९ तक राज्य किया। राज्य का विस्तार किया तथा कुछ उपनिवेशों पर अधिकार कर लिया।

शलमनासर तृ० (८४८ – ८२७) व असुरबनीपाल (६६९ -- ६२५) का राज्य
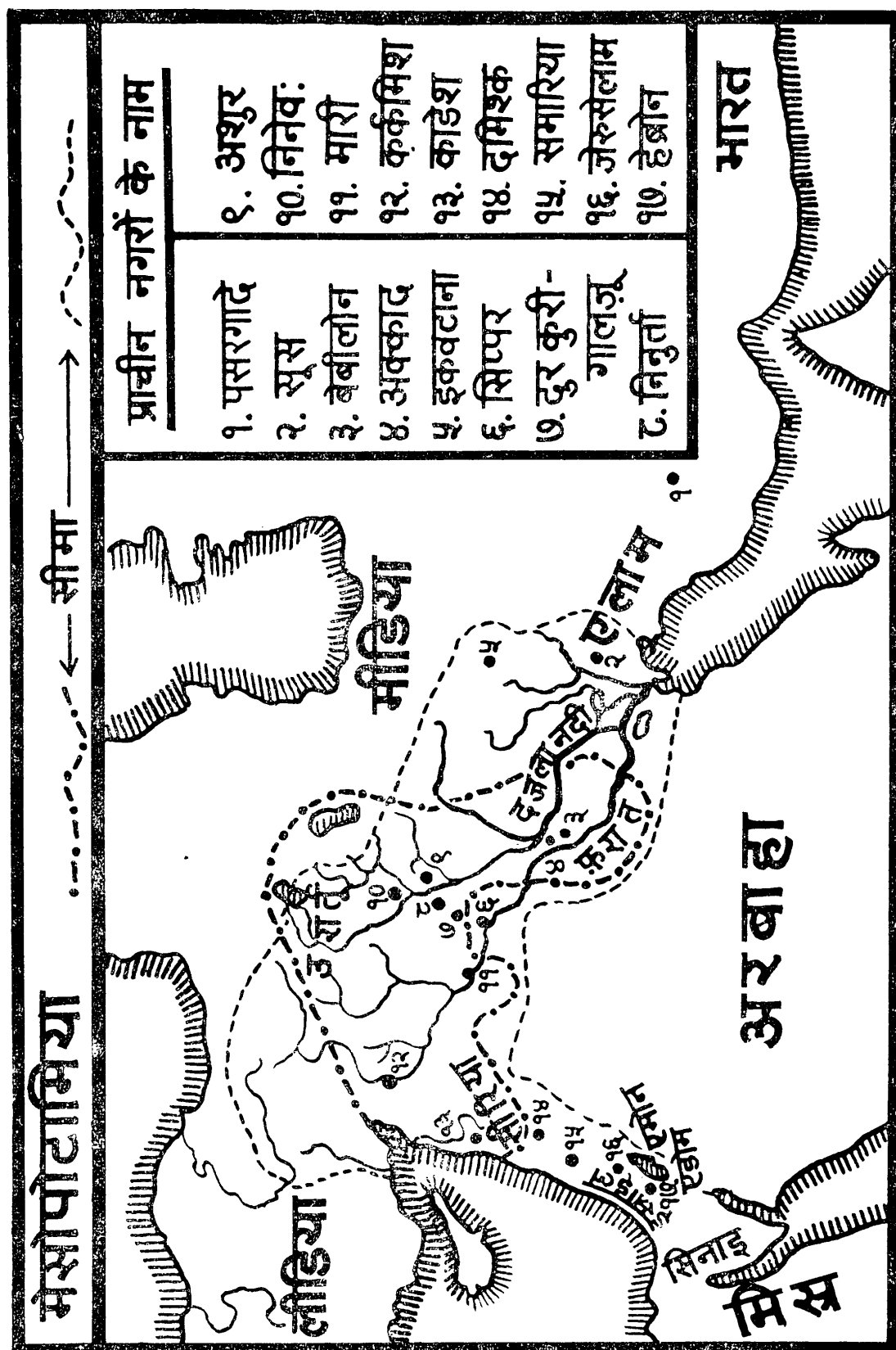
फलक संख्या – ११३

५. **शलमनेसर तृतीय** : ने ८५८ से ८२७ ई० पू० तक राज्य किया।

६. **तिघलत पलेसर तृतीय** : ने ७४५ से ७२७ तक।

७. **शलमनेसर चतुर्थ** : ने ७२६ से ७२२ ई० पू० तक राज्य किया। अपने राज्य काल के चार वर्ष युद्ध के मैदान में ही बिताये। राज्य का और विस्तार किया। ७२५ ई० पू० में इसने इस्राइल देश की राजधानी समारिया (आ० सिबास्तीया) को, जो एक पहाड़ी पर स्थित थी, घेर लिया। तीन वर्ष तक युद्ध करते रहने पर भी विजय प्राप्त न कर सका और युद्ध काल में ही वीरगति को प्राप्त हुआ।

८. **सरगोन द्वितीय** : ने ७२२ से ७०५ ई० पू० तक राज्य किया। यह शलमनेसर चतुर्थ का सेनापति था और शलमनेसर की सेना का परिचालन कर रहा था। राजा के मरणोपरांत यह राजा बन बैठा। इसने केवल समारिया को ही परास्त नहीं किया अपितु इस्राइल जाति को ही समूल नष्ट कर दिया। इसने इस्राइल की दस जातियों के लगभग सत्ताइस हज़ार व्यक्तियों को बन्दी बना कर असीरिया व मीडिया भेज दिया। सरगोन ने अपने मुख्य विरोधी उरार्तू राज्य को भी परास्त कर दिया।

९. **सेन्नाखरिब** : ने ७०४ से ६८१ तक राज्य किया। अपनी एक नई राजधानी का निर्माण करवाया और उसका नाम निनेव (आ० कुयेंजिक) रखा। इसने बेबीलोन के नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

१०. **अशुर हेदन** : ने ६८० से ६६९ ई० पू० तक राज्य किया तथा मिस्र को परास्त किया।

११. **अशुर बनी पाल** : ने ६६९ से ६२६ ई० पू० तक राज्य किया। इसने विश्व के इतिहास में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। यह साहित्य, ज्ञान, विज्ञान व कला का बड़ा प्रेमी था। इसने एक विशाल पुस्तकालय का निर्माण करवाया। इसके पुस्तकालय में पुस्तकें न थीं परन्तु मिट्टी की बनी तथा पकी हुई ईंटें या पाटियाँ थीं जिन पर इसने बारीक कीलाकार लिपि में धार्मिक कथायें, तात्कालिक विधि – विधान, इतिहास, जादू – टोना, विज्ञान, गणित, चिकित्सा – शास्त्र तथा खगोल – शास्त्र जैसे गूढ़ विषय उत्कीर्ण करवाये। जब यह ईंटें गीली होती थीं उस समय (पकने से पूर्व) बहुत मुलायम होती थीं। कीलाकार लिपि को विशेष लेखनी या नाखून द्वारा दबा दबा कर अंकित किया जाता था। तदनन्तर वे ईंटें पका ली जाती थीं। ऐसी सहस्रों ईंटें निनेवः के उत्खनन से प्राप्त हुईं। यह उत्खनन सर आस्तिन लेयर्ड (Sir Austin Layard) द्वारा १८४५ ई० में सम्पन्न हुआ। ऐसी ही लगभग तीस सहस्र ईंटें आज भी ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

अशुर बनी पाल ने युद्ध से सदैव घृणा की परन्तु फिर भी अपनी प्रजा के लिए, देश की सुरक्षा के लिए तथा बाहर के आक्रमणकारियों को परास्त करने के लिए इसको युद्ध में भाग लेना ही पड़ा। इसने बेबीलोनिया व मीडिया आदि के आक्रमणों को कितनी बार विफल किया। अन्त में विरोधी देशों ने मिलकर एक बड़ा विध्वंसक आक्रमण किया और देश व राजधानी को नष्ट-भ्रष्ट किया। अशुर बनी पाल के मरणोपरान्त भी आक्रमण होना बन्द नहीं हुये। ६१२ ई० पू० में असीरिया राज्य का अन्तिम शासक सियुरिश कुन इन्हीं आक्रमणों की ज्वाला में कूद कर भस्म हो गया। सुन्दर व भव्य राजधानी निनेवः धूल में मिल गई जो आज मिट्टी के बड़े टीलों के रूप में दिखाई देती है।

कैल्डियन जाति के लोग अरबी भाषा में ख़ालेदीन के नाम से पुकारे जाते थे। इनकी दो शाखायें थीं। एक तो वे लोग थे जो उर नगर में लगभग चार सहस्र वर्ष पूर्व निवास करते थे जिनमें से हज़रत इब्राहिम भी थे। दूसरे इस जाति के वे लोग थे जो अरारत के पहाड़ के आसपास रहते थे।

अरारत का नाम उरार्तू हो गया था। उरार्तू राज्य की राजधानी वान झील पर बसा वान नगर थी। यह जाति ई० पू० की आठवीं श० में बड़ी शक्तिशाली हो गई थी और असीरिया के राज्य पर बहुधा आक्रमण करती रहती थी। सम्भव है इसी जाति के कुछ वीर व उच्चवंश के लोग आकर बेबीलोन में बस गये हों और इन्हीं लोगों में से एक वीर ने नये बेबीलोन साम्राज्य की नींव डाली हो। इस नये वंश का संस्थापक – राजा का नाम नेबू पलासर था। जिस प्रकार असीरिया के राजा अपने मुख्य देवता के नाम को अपने नाम के आरम्भ में अशुर का प्रयोग करते थे ठीक उसी प्रकार नव – बेबीलोनिया साम्राज्य के शासक अपने मुख्य देवता 'नेबू' का नाम अपने नाम के पूर्व प्रयोग करते थे। यह नेबू देवता ज्ञान व साहित्य का देवता था। नेबू पलासर ने मिडिया के राजा सियाक्सरीज़ (Cyaxares) के साथ असीरिया पर विनाशकारी आक्रमण करके उसकी राजधानी निनेव: को धूल में मिला दिया।

नेबू पलासर के मरणोपरांत उसका पुत्र नेबू कदनेज़ार (Nebuchadnezzar) ६०५ ई० पू० में राजसिंहासनारूढ़ हुआ। इसी शासक के शासनकाल में बेबीलोन ने असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त की। नेबू कदनेज़ार ने मीडिया की राजकुमारी से विवाह किया। अपनी इसी सुन्दर रानी को प्रसन्न करने के लिये राजा ने एक भव्य सीढ़ीदार उद्यान का निर्माण करवाया जो प्राचीन संसार के सात आश्चर्यजनक भव्य निर्माणों में से एक माना जाता था और जो हैंगिंग गार्डेन्स के नाम से विख्यात था।

५९९ ई० पू० में नेबू कदनेज़ार ने दक्षिण की दो इस्राइल जातियों (जूडा और बेंजिमन) की राजधानी जेरुसलाम पर विध्वसंक आक्रमण कर दिया। जेरुसलाम के भव्य मन्दिर को नष्ट कर दिया और जूडा की दस व बेंजिमन की दो जातियों के लोगों को तथा उनके राजा जेहोईयाकिस[1] को बन्दी बना कर बेबीलोन ले आया। इस प्रकार इस्राइल की १२ जातियाँ छिन्न – भिन्न हो गईं। इस शासक के अंतिम दिनों में बेबीलोन के मन्दिरों के पुजारियों ने यहाँ की राजनीति में हस्ताक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। इसी कारण नेबू कदनेज़ार के मरणोपरांत एक शक्तिशाली पुजारी नेबू नयद (Nebu Nedus) शासक बन गया। तत्पश्चात् उसका पुत्र निदिन्तू बेल (Nidintu Bel) शासक बना।

पर्शिया राज्य का संस्थापक राजा सायरस, जिसको पर्शिया की भाषा में किरूश के नाम से सम्बोधित किया जाता है, ने बेबीलोन पर आक्रमण कर दिया तथा उसके अंतिम राजा निदिन्तू बेल का वध करवा दिया और बेबीलोन को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सायरस ने इस्राइल की उन दो जातियों को, जो नेबू कदनेज़ार द्वार ५९९ ई० पू० के आक्रमण में बन्दी बना ली गईं थीं, साठ वर्ष के बन्दी – जीवन बिताने के पश्चात् स्वतंत्र कर दिया परन्तु अब इन दो जातियों का नाम जूडा से जूडी, यूडी तथा यहूदी पड़ गया। अरेबिया में यहूदी नाम से और योरोप में यह ज्यूज़ (Jews) के नाम से विख्यात हुए।

३३१ ई० पू० में सिकन्दर (Alexander) ने बेबीलोनिया को अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात् ५० ई० पू० में रोमन साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया। सातवीं श० में अरब के मुसलमानों ने इसको अपने अधीन कर लिया और इसको अल – ईराक़ (जिसके अर्थ अरबी भाषा में 'किनारा' होते हैं) के नाम से इस कारण सम्बोधित करने लगे कि यह देश अरब के किनारे पर था।

1. जेहोईयाकिस; जेहोवा+आकिस, जेहोवा (यहोवा) = यहूदियों के भगवान् का नाम; आकिस (अक्स = प्रतिरूप) अर्थात् 'जेहोवा का प्रतिरूप'।

तेरहवीं श० में यह मंगोल शासकों के अन्तर्गत चला गया। तदनन्तर कभी टर्की तथा कभी पर्शिया के अधीन रहा और अंत में (१८३१ में) पूर्णतया टर्की के अधीन हो गया। प्रथम महायुद्ध के अंत में (१९१८ में) इसका नाम ईराक़ पड़ गया और ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में दे दिया गया। १९२१ में हेजाज (अरेबिया) के शासक हुसैन के पुत्र फैज़ल (Feisal) को ईराक का बादशाह बना दिया गया। १९५८ में एक सैनिक पदाधिकारी अब्दुल करीम क़ासिम ने बादशाह का वध कर डाला और एक सैनिक शासन स्थापित किया तत्पश्चात् एक गणतंत्र राज्य स्थापित हो गया।

पठनीय सामग्री

Barton, G. A. : The Origin and Develop nent of Babylonion Writing (1913).

Bork, F. : Elamische Studien (1932).

Brice, W. C : The Writing System of the Proto – Elamite Account Tablets of Susa (1962).

Clark, C. : The Art of Early Writing – With Special Reference to the Cuneiform Writing (Lcnd. 1938).

Chiera, E. : They Wrote On Clay (1938).

Finegan, J. : Archaeological History of the Ancient Middle East (1979).

Ibid : Light from Ancient Past (Lond. 1946).

Frankfort, H. : The Birth of Civilization in the Near East (1956).

Gadd, C J. : Fall of Nineveh (1923),

Gyles, M. F. : Ancient World (1937).

Hamlyn, P. : The River Peoples of Long Ago (1932).

King, L. W. : The History of Sumer and Accad (1910).

Loftus, W. K. : Travels and Researches in Chaldea and Susiana (London – 1957)

Luckenbill, D. D. : Ancient Records of Assyria and Babylonia (Chicago -- 1926).

Oppenheim, A. L. : Ancient Mesopotamia – Portrait of the Dead Civilization (1964).

Pallis, S. A. : The Antiquity of Iraq (1956).

Pike, E. R. : Finding out about Assyrians. (1963).

Rogers, R. W. : A History of Babylonia and Assyria (1901).

Roux, G. : Ancient Iraq.

Saggs, H. W. F. : The Greatness that was Babylon (NY – 1962)

Smith, S. : Early History of Assyria (London – 1928).

Swain, J. E. : History of World Civilization (1961).

Woolley, C. L. s The Sumerians (1928).

Ibid : History Unearthed (1926).

मेसोपोटामिया : २

लेखन कला

लगभग ३५०० ई० पू० में सुमेर के निवासियों ने कुछ रेखाओं को अंकित कर लिपि को जन्म दिया। यह रेखायें नगर – राज्यों के स्थानीय देवी – देवताओं के आकार मात्र थे। शनैः शनैः यही रेखाचित्र दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुओं तथा विचारों को भी व्यक्त करने लगे, जिनसे चित्रात्मक एवं चिह्नात्मक (मिली जुली) लिपि बन गयी। इसका प्रयोग ३००० ई० पू० में पुजारियों, राजाओं तथा उच्चपदाधिकारियों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार की लिपि की लगभग एक सहस्र मुद्रायें (Seals) तथा पाटिया (Tosblets) और उनके टुकड़े (fragments) उरुक (आ० वरक) से उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए। यह उत्खनन कार्य जर्मनी के पुरातत्त्व – वेत्ताओं द्वारा १९२८ से १९३१ तक किया गया।

सुमेर की रेखा चित्रात्मक लिपि : १८७८ में फ्रांस के राजदूत अर्नेस्ट दि सार्जेक (Earnest de Sarzec) ने लैगाश (आ० टेल्लो) के प्राचीन नगर के टीले पर उत्खनन आरम्भ किया। उस उत्खनन में अनेक पाटियाँ निकलीं। इन पाटियों पर रेखाचित्र अंकित थे। यह रेखाचित्र सूखी मिट्टी की पाटियों पर अंकित किये जाते थे। उनमें से एक पाटिया ऐसी प्राप्त हुई जिस पर लैगाश के शासक एन्नातुम का नाम अंकित था। इसका अनुवाद दाइमल (Deimal) ने अपनी पुस्तक[1] में किया है। उस पाटिया का चित्र भी उसी पुस्तक से लेकर 'फ० सं० – ११४' पर दिया गया है। इसका काल लगभग ३००० ई० पू० माना गया है। इसको ऊपर से नीचे पढ़ा जायेगा तथा प्रथम कालम सीधे की ओर से आरम्भ होगा। इसका लिप्यन्तरण इस प्रकार है :—

१ — ए – अन – न – तुम – मे; २ — सूस (दिव्य अस्त्र) गाल (महान्); ३ — बब्बर (सूर्य देव); ४ — लुगाल ज़ल – सी – ग – क; ५ — लू गिस – हू – र; ६ — ए – म – सूम। अनुवाद "मैं नरेश एन्नातुम, बब्बर का, जो बड़ा शक्तिशाली तथा महान् है, बड़ा जाल उम्मा नगर के निवासियों पर फेंकता हूँ।"

सुमेर के अन्य रेखा – चित्र : इस चित्रात्मक – चिह्नात्मक रूपी मिश्रित लिपि में कुछ सुधार किये गये। उसको सरल बनाने के प्रयत्न किये गये ताकि इसका प्रयोग अधिक से अधिक निवासी कर सकें। इस प्रयास के क्रम द्वारा लगभग ९०० चिह्न निर्धारित कर लिये गये और उनको प्रयोगात्मक बनाया गया। इस प्रकार रेखाचित्र चिह्नात्मक – लिपि द्वारा प्रयोग में आने लगे। इस लिपि का काल ३००० से २५०० ई० पू० निर्धारित किया गया है। इसी लिपि के ९०० चिह्नों में से कुछ चिह्न 'फ० सं० – ११५' पर दिये गये हैं। पहले

---

1. Diemal : Sumer Grammar der Archaist Texte – (Rome – 1924), page – 45.
अंग्रेजी का अनुवाद : "I Ennatum, the great net of Babbar, of the King, of he, who is filled with high over the inhabitants of Umma, I threw it.

सुमेर की रेखा -- चित्रात्मक लिपि, एक पाटिया पर अंकित
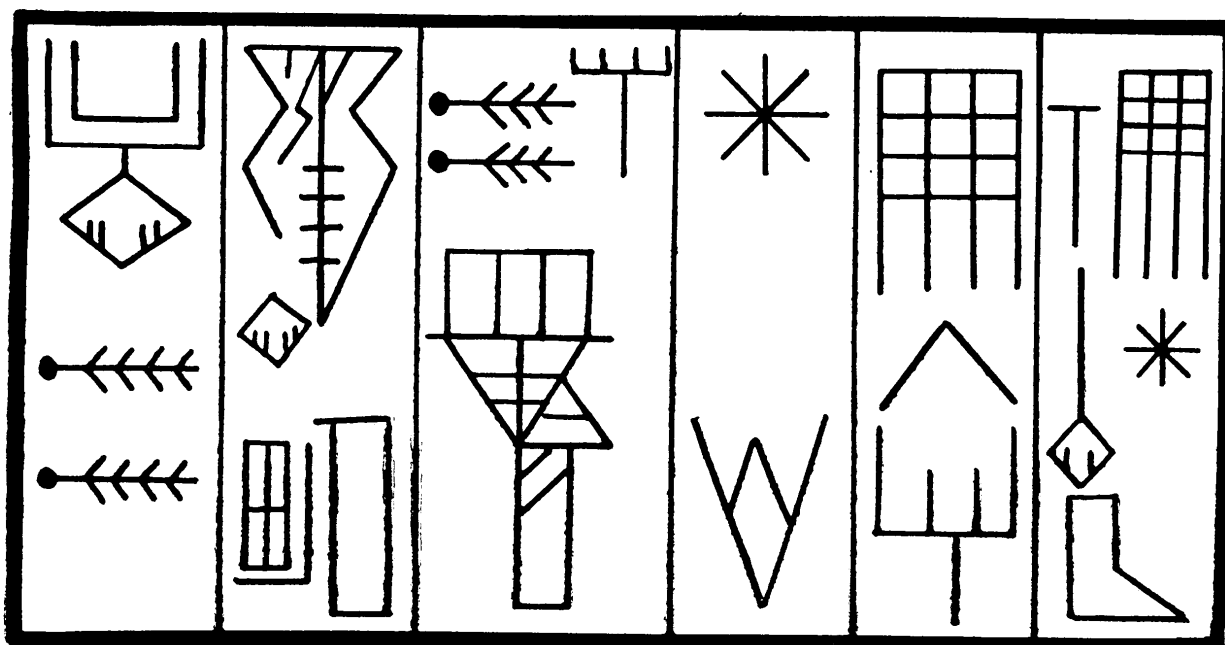
फलक संख्या – ११४

कॉलम में चित्र बनाये गये हैं। दूसरे कॉलम में तात्कालिक भाषा में उन चित्रों के नाम दिये गये हैं तथा तीसरे कॉलम में उस चित्र का प्रतिनिधित्व करने वाला शब्द लिखा गया है। उदाहरणार्थ तारे के चित्र के कॉलम में तारा लिख दिया गया है और साथ ही साथ वह किस भाव को प्रकट करता है, लिख दिया गया है, जैसे तारे का चित्र वहाँ की भाषा में "अन" कहलाता था परन्तु 'आकाश' तथा 'देवता' का भाव व्यक्त करता था।

इस लिपि के दो तीन उदाहरण और प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जैसे सिर के सामने प्याला बनाने से 'भोजन करना' व्यक्त किया जाता था। इस भाव में काल (भूत, वर्तमान व भविष्य) व्यक्त नहीं किया जाता था। यह मनुष्य अपनी ओर से प्रयोग कर लिया करते थे। इसी प्रकार सिर के सामने पानी का चिह्न बनाने से 'पानी पीना' व्यक्त किया जाता था। पुरुष व स्त्री को उनके लिंगों के चित्र बनाकर व्यक्त किया जाता था। इस प्रकार के चित्रों व चिह्नों के अंकित करने के लिए अच्छी धार वाली तथा नोक वाली चाकू जैसी लेखनी का प्रयोग किया जाता था जिसके द्वारा चाक – मिट्टी की सूखी पाटियों पर खुरेच खुरेच कर चिह्न उत्कीर्ण होते थे। 'फ० सं० – १२१' इस प्रकार के प्रयोगात्मक चिह्न उत्खनन सामग्री में प्राप्त हुए। यह उत्खनन कार्य फ्रांस के अन्तर्गत de Sarzec द्वारा १८७८ में उरुक में किया गया।

जब मानव का विकास हुआ और उसकी आवश्यकतायें बढ़ीं तो शब्दों का प्रयोग भी बढ़ा। इस प्रगति के साथ साथ क़दम बढ़ाने के लिए लिपि में भी प्रगति व सुधार होने लगे। लगभग २६०० ई० पू० में इस प्रकार की प्रगति की ओर अनुसन्धान होने लगे। खुरेच खुरेच कर सूखी मिट्टी की पाटियों पर चित्र अंकित करने में बहुत समय लगने लगा। इस कारण गीली मिट्टी की पाटियों पर यह चित्र अंकित करने के प्रयोग होने लगे। इसमें लिपिकारों को गोलाकार चित्र बनाने में कष्ट होने लगा तो वे गीली मिट्टी पर अपने नाखूनों की दाब

सुमेर के रेखाचित्र

	अन	तारा = आकाश, देवता		कू	सिर व प्याला = भोजन करना
	की	पृथ्वी		आ	नदी = पानी
	लू	पुरुष लिंग = पुरुष		नाग	सिर व नदी = पीना
	साल	स्त्री लिंग = स्त्री		दू	पैर = चलना
	कुर	तीन टीले = पहाड़		मुशेन	चिड़िया = उड़ना
	जिमे	पहाड़ व स्त्री = दास-स्त्री		हा	मछली
	साग	सिर		गुद	बैल
	का	मुंह		अब	गाय
	मिन्डा	प्याला = भोजन		शी	अनाज

फलक संख्या – ११५

देकर चिह्न – चित्र अंकित करने लगे और जब इस प्रकार से भी काम न चल सका तो उन लोगों ने ऊपर से चौड़ी तथा नीचे को पतली होती गई लेखनी (Stylus) का प्रयोग किया जिसका रूप कुछ कील जैसा था। अब इसी प्रकार की लेखनी द्वारा गीली मिट्टी की पाटियों पर लेटे, खड़े, आड़े व तिरछे निशान अंकित किये जाने लगे। इस लिपि में कुछ चित्रात्मक, कुछ चिह्नात्मक तथा कुछ भावमूलक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा और उस तत्कालीन जीवन की सारी उपलब्धियों, आवश्यक वस्तुओं तथा विचारों को व्यक्त करने में यह लिपि दिन पर दिन समर्थ होने लगी। यहाँ तक की असीरिया के राजा अशुर बनी पाल के पुस्तकालय से इस लिपि की लगभग तीस हज़ार की पकी हुई पाटियाँ प्राप्त हुईं। इन पाटियों पर गणित, खगोल – शास्त्र, धर्म, दर्शन, विधि, इतिहास आदि अंकित पाये गये।

वेबीलोनिया में इस लिपि का जन्म हुआ था परन्तु असीरिया निवासियों ने इसको अच्छी तरह से विकसित किया। इसका विकसित रूप लौट कर फिर बेबीलोनिया नव – बेबीलोनी लिपि के नाम से आ गया।

इस लिपि का जन्म तो २५०० ई० पू० में हुआ परन्तु इसका नामकरण[1] संस्कार ४२०० वर्ष पश्चात् अठारहवीं श० में हुआ।

पश्चिम – एशिया में लगभग २००० ई० पू० में इस लिपि का प्रयोग प्रचलित हो चला था। विभिन्न देशों की विभिन्न भाषाओं को व्यक्त करने के लिए इस कीलाकार लिपि का प्रयोग उपयुक्त समझा गया। इसी कारण सुमेरियन, अक्कादियन, हुरियन, हित्ती एलामी तथा उरार्ती भाषायें इसी लिपि में लिखी जाने लगीं। इस लिपि का एक चिह्न सभी भाषाओं में एक अर्थ अथवा एक ही भाव व्यक्त करता था, केवल उच्चारणों तथा नामों में अन्तर था। उदाहरणार्थ तारे के चित्र का प्रत्येक भाषा में अर्थ स्वर्ग ही था परन्तु इसको सुमेरियन भाषा में 'अन', अक्कादियन भाषा में 'समू', हित्ती में 'नेपिस' आदि कहते थे। इस तारे के चिह्न से देवता का भाव भी व्यक्त किया जाता था। इस लिपि का प्रयोग पाँचवीं श० में इतना कम रह गया कि आँखों से ही ओझल हो गया परन्तु फिर भी १५०० ई० सन् तक इस लिपि का प्रयोग सिसकियाँ लेता रहा। तत्पश्चात् इसका प्रयोग सदैव के लिए लोप हो गया।

ई० पू० की आठवीं श० में एक पर्यटनशील सेमिटिक जाति सीरिया में स्थिर हो गई। अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसी जाति के सहस्रों लोग धीरे – धीरे आकर मेसोपोटामिया में जमने लगे। यह लोग अरामियन थे जो अपने साथ एक भाषा तथा एक लिपि लाये जिसका नाम था अरमायक। यह उत्तरी सेमिटिक लिपि की एक शाखा थी तथा २२ व्यंजनों की वर्णात्मक लिपि थी। इसका प्रयोग व्यापारियों में अधिक बढ़ता गया। अब कीलाकार लिपि केवल राजकीय होकर रह गई।

उत्खनन तथा रहस्योद्घाटन

इस प्राचीन मेसोपोटामिया देश में अर्वाचीन पाश्चात्य देशों के अनेक पुरातत्त्व वेत्ताओं द्वारा लगभग ६४०० उत्खनन कार्य सम्पन्न हुए जिनके फलस्वरूप सहस्रों मुद्रायें, पाटियाँ, उत्कीर्ण ईंटें, मिट्टी के चित्रकारी किये हुए बर्तन तथा उनके टुकड़े, उभरे हुए मिट्टी या पत्थर पर बने चित्र (Basreliefs) मानव कंकाल तथा उत्कीर्ण समाधियों – के – पत्थर एवं शिलालेख (Stele and Rock inscriptions) और उनके अनेक टुकड़े भूगर्भ से प्राप्त हुए जो संसार के सैकड़ों संग्रहालयों में सुरक्षित रखे हैं ताकि भावी पीढ़ियाँ अपने अतीत काल का ज्ञान प्राप्त कर एकता का भाव जीवित रख सकें।

1. विवरण पर्शिया के अभिलेखों के रहस्योद्घाटन की कहानी में देखिये।

इस कीलाकार लिपि के रहस्योद्‌घाटन कार्य को योरोप निवासी विद्वानों ने बड़ी संलग्नता के साथ किया। किस प्रकार यह शोध आरम्भ हुआ तथा किस प्रकार सारे संसार के विद्वानों ने इस कार्य की सराहना की और एकमत होकर मान्यता प्रदान की, जिसमें किसी प्रकार का भ्रम शेष न रहा, यह पर्शिया के पाठ में पूर्ण विवरण सहित दिया गया है।
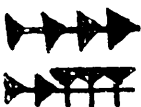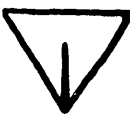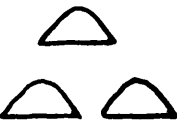
१८४३ में ईरान स्थित फ्रांसीसी – दूतावास के एक उच्च पदाधिकारी पाल एमाइल बोत्ता (Paul Emile Botta) ने असीरिया में सरगोन द्वितीय के राजभवन का उत्खनन किया। यह मेसोपोटामिया में उत्खनन के जन्मदाता समझे जाते हैं। इसके पश्चात् ब्रिटेन के सर आस्टिन लेयार्ड (Sir Austin Layard, १८१७ – १८९४) ने १८४५ में निनेवः का उत्खनन किया और अशुर बनी पाल के पुस्तकालय से बारीक कीलाकार लिपि में उत्कीर्ण की हुई तीस हज़ार ईंटें प्राप्त कीं जो आज भी ब्रिटिश संग्रहालय – लन्दन में सुरक्षित हैं। १८५० में एक आयरलैण्ड निवासी विद्वान् एडवर्ड हिन्क्स (Edward Hincks) ने असीरिया के अभिलेखों का रहस्योद्‌घाटन किया। (असीरियाई कीलाक्षरों का विकास) हिंक्स ने सुमेरियन रेखाचित्रों से कीलाकार लिपि का विकास दिखाने के लिए चार्ट तैयार किये जिसके कुछ चित्र 'फ० सं० – ११६' पर दिये गये हैं। इस चार्ट में छः कॉलम बनाये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

१. मूल चित्र दिये गये हैं जिनको सुमेर निवासियों ने लगभग ३००० ई० पू० में बनाये थे।
२. उनकी दिशा का परिवर्तन किया अर्थात् जो शिरोवृत्त (Vertical) बनाये गये थे उनको क्षैतिज (Horizontal) बनाया।
३. उन चित्रों के सुमेरियन भाषा में नाम तथा उनका हिन्दी में अनुवाद दिया गया है।
४. उन शब्दों को कीलाकार लिपि का प्रथम रूप दिया गया। यह २५०० ई० पू० में सुमेर में हुआ।
५. उन शब्दों को कीलाकार लिपि में अधिक सरल बनाने का प्रयास किया गया। यह बेबीलोन तथा अशुर में हुआ। इसको प्राचीन असीरियाई माना जाता है।
६. यह कीलाकार लिपि का उच्चतम् विकसित रूप है जिसको अशुर एवं निनेवः में तैयार करके सब विषयों के लिये प्रयोगात्मक बनाया गया। इस लिपि को बाद में बेबीलोनियन, अक्कादियन तथा असीरियन लिपियों के नाम से भी सम्बोधित करने लगे। इस लिपि में ६४२ आधार चिह्न थे।

१८६० में फ़्रांस के विद्वान् यूलिस ओपर्त (Jules Oppert, १८२५ – १९०५) ने असीरिया के प्राचीन लेखों से एक व्याकरण तैयार किया।

तत्पश्चात् भिन्न भिन्न देशों से पुरातत्त्व तथा भाषा – विज्ञान – वेत्ता मेसोपोटामिया में आये और उत्खनन कार्य किये। अभिलेखों का रहस्योद्‌घाटन किया तथा इस देश के प्राचीन इतिहास की कड़ियों को क्रमबद्ध किया। इन्हीं विद्वानों के परिश्रम के फलस्वरूप इस देश का अन्धकारमय अतीत प्रकाशमय हो गया। इस लिपि के गूढ़ चिह्नों का रहस्योद्‌घाटन् सर हेनरी रॉलिन्सन ने सन् १८५१ ई० में किया। इस लिपि में २४२ चिह्न निश्चित किये गये हैं। यह प्राचीन बेबीलोन से कुछ भिन्नता रखती है। नीचे दी गईं पंक्तियाँ पर्शिया के विशाल व प्रसिद्ध शिलालेखों से ली गईं हैं। साथ में अर्थ भी लिखे हैं।

असीरियाई कीलाक्षरों का विकास

१	२	३	४	५	६
		अन = स्वर्ग			
		की = पृथ्वी			
		लू = पुरुष			
		मुन्नुस = स्त्री			
		कुर = पर्वत			
		मिन्डा = भोजन			
		गुद = बैल			

फलक संख्या – ११६

बेबीलोन की कीलाकार लिपि
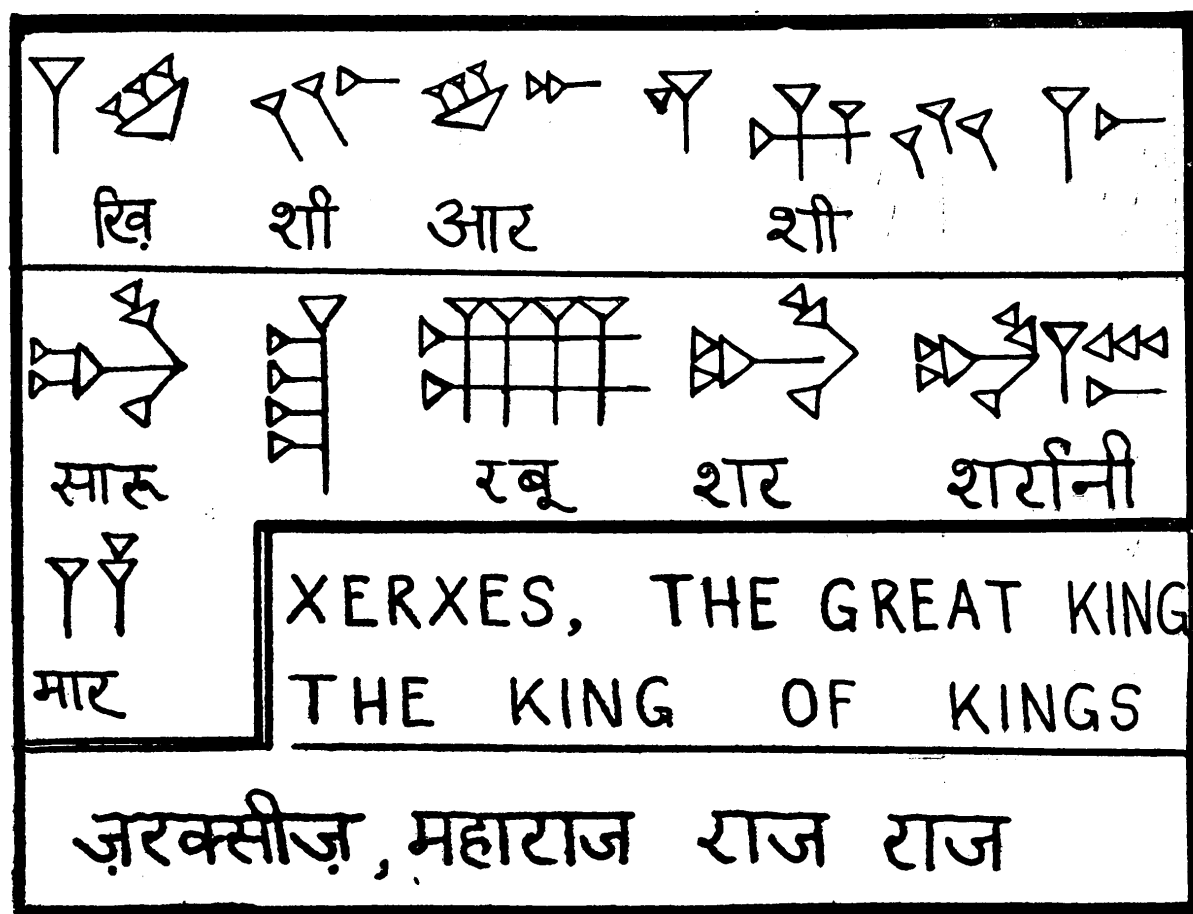
फलक संख्या – ११७

हम्मूराबी का प्रसिद्ध शिलालेख

हम्मूराबी ने अपने शासन काल में एक विधि – संहिता का निर्माण किया जिसको वह सूर्य देवता 'शम्स' का वरदान मानता था। संसार का यह सर्वप्रथम उच्चकोटि का विधान था जिसके कारण हम्मूराबी विश्व – विख्यात राजा हो गया। उसने इन कानूनों को शिलाओं पर उत्कीर्ण करवा कर मुख्य मुख्य स्थानों पर स्थापित करवाया। हम्मूराबी के शिलालेख प्राचीन बेबीलोनी (अक्कादी) कीलाकार लिपि में उत्कीर्ण कराये गये थे।

ई० पू० की अठारहवीं श० में कीलाकार लिपि ऊपर से नीचे अंकित की जाती थी। पहली पंक्ति समाप्त होने पर दूसरी ऊपर से नीचे वाली पंक्ति पहली पंक्ति के बाईं ओर अंकित की जाती थी। ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली पंक्तियाँ दाएँ से बाएँ अंकित होती थीं। तत्पश्चात् यह खड़ी पंक्तियाँ परिवर्तित होकर क्षैतिज (दायें से बायें) अंकित की जाने लगीं। परन्तु ई० पू० की पन्द्रहवीं श० में जब कि बेबीलोनिया पर कसाइट जाति के शासक शासन कर रहे थे इस लिपि की दिशा परिवर्तित होकर बायें से दायें हो गई।

हम्मू राबी (१७२४ -- १६८२ ई० पू०) की विधि -- संहिता
(LAW -- CODE)
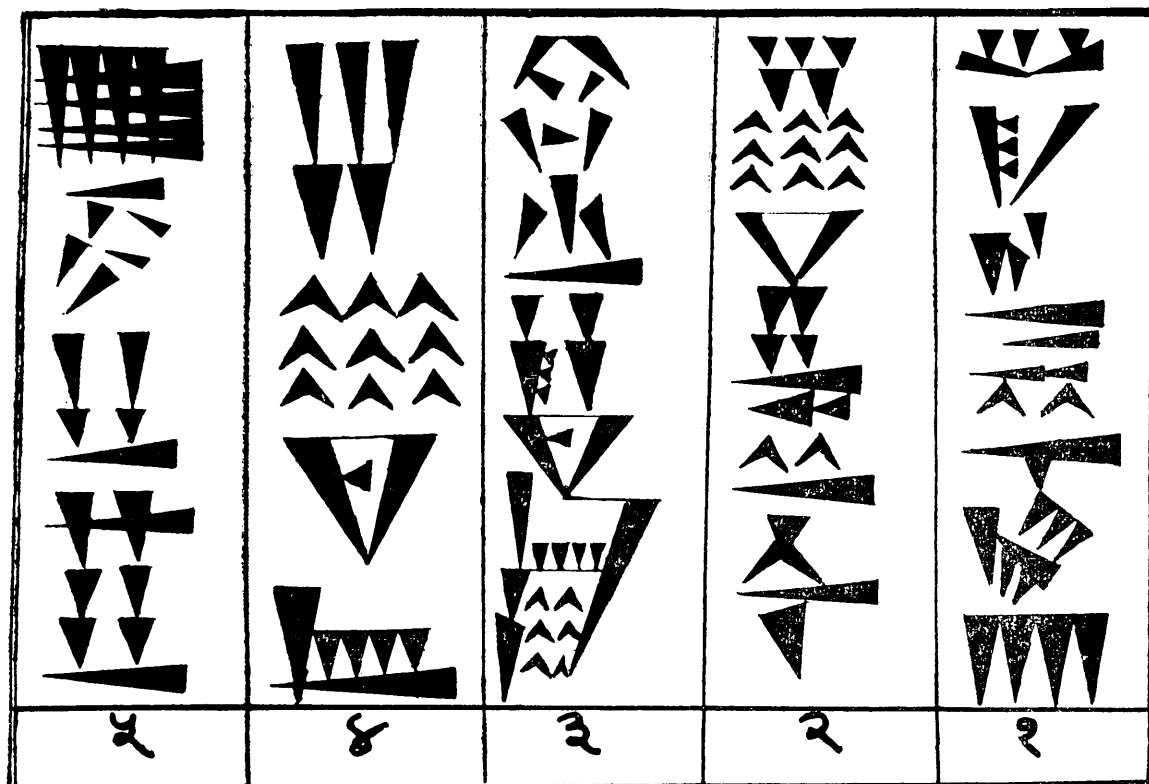
फलक संख्या – ११८

यह शिलालेख ऊपर से नीचे तथा सीधी ओर से इस प्रकार पढ़ा जायेगा :—

१. सूम – मा अ – वी –लूम।
२. ईन – इन – मार अवी – लोम।
३. उह् – ताब – बी – इत ।
४. ई – इन – सू ।
५. ऊ – हा – अप – पो – दू ।

इसके अर्थ हैं :—"यदि कोई मनुष्य किसी की आँख नष्ट करता है तो वे उसकी आँख नष्ट कर देंगे।"

१२२० ई० पू० में सूसा (एलाम) के राजा शुत्रुक नाखुन्टे ने बेबीलोन पर एक विनाशकारी आक्रमण किया तथा सिप्पर (आ० अबू हबा) को भी बिना नष्ट किये नहीं छोड़ा, जहाँ से हम्मूराबी की विधि संहिता वाली काली शिला भी लूट के माल के साथ सूसा ले गया। इसी सूसा के उजड़े स्थान को, जिस पर एक दिन एलाम देश की भव्य राजधानी खड़ी थी, डबल्यू० के० लोफ्तस (W. K. Loftus) ने सर्वप्रथम पहचाना।

उसके एक टीले पर एम० दियुलाफ़ी (M. Dieulafoy) ने उत्खनन कार्य आरम्भ किया तथा १८९७ में जे० डी मॉरगन (J. de Morgan) ने दूसरी बार इस प्राचीन नगर में उत्खनन कार्य आरम्भ किया। १९०१ में नरमसिन तथा हम्मूराबी के दो शिलालेख प्राप्त हुए। हम्मूराबी की शिला सात फ़िट छः इंच ऊँची थी तथा उसमें २८२ प्रकार के नियम एवं उपनियम उत्कीर्ण थे। आज यह शिलालेख फ्रांस के प्रसिद्ध लूगॅ संग्रहालय (Louvre Museum)[1] में सुरक्षित है। इसी शिला लेख की पाँच ऊपर से नीचे उत्कीर्ण पंक्तियाँ 'फ० सं० – ११८' पर दी गई हैं और उनके नीचे उनके उच्चारण लिप्यान्तरण तथा अनुवाद भी दिया गया है।

असीरियन लिपि के व्यंजन व स्वर : सुमेरियन कीलाकार लिपि से प्राचीन बेबीलोनियन का विकास हुआ तत्पश्चात् लगभग २००० ई० पू०[2] में असीरियन कीलाकार लिपि का विकास आरम्भ होने लगा। इस समय तक लगभग ६०० निर्धारक चिह्नों का प्रयोग किया जाता था जो शनैः शनैः कम होकर लगभग १००० ई० पू० तक केवल १००[3] निर्धारक शब्द रह गये। 'फ० सं० – ११९' पर, ऊपर की ओर व्यंजन व स्वर दिये गये हैं।

असीरियन लिपि के कुछ निर्धारक शब्द[4] : उसी के नीचे 'फ० सं० – ११९' पर कुछ निर्धारक शब्द दिये गये हैं। उन पर क्रम संख्या दी गई है जिसका विवरण नीचे दिया गया है :—

१. ईलू = देवता।
२. अशरू = स्थान।
३. शीना = दो।
४. सुबातू = वस्त्र।
५. ईसू = लकड़ी, वृक्ष।
६. शरु = आँधी।
७. अलू = स्थान।
८. अमेलू = पुरुष।
९. शम्मू = पौधा।
१०. नुनू = मत्स्य।
११. अरखू = माह।

प्राचीन तथा नव – बेबीलोनी लिपि : 'फ० सं० – ११९' पर नीचे की ओर प्रथम पंक्ति में प्राचीन बेबीलोनी कीलाकार लिपि (लगभग २२०० ई० पू०) में हम्मूरबी[5] का नाम लिखा है और अन्त में नृप का एक निर्धारक चिह्न भी लिखा है जिसको 'लुगाल' कहते हैं (लु = पुरुष; गाल = महान्) अर्थात् 'नृप'। नीचे की पंक्ति में संशोधित असीरियन कीलाकार लिपि है (लगभग १२०० ई० पू० काल की)।

कीलाकार लिपि का कालानुसार परिवर्तन[6] : आदि काल से ई० पू० की तृतीय शताब्दी तक यह लिपि निम्नलिखित काल में परिवर्तनशील रही :—

१. **रेखा – चित्र** : इस लिपि के लगभग ३००० से २५०० ई० पू० तक अनेक अभिलेख उरुक, किश, उर तथा जेम्द नस्र से प्राप्त हुये। इसमें सर्वप्रथम लगभग ८०० शब्द रेखा – चित्रों द्वारा अंकित किये जा सकते थे। इनको सूखी पाटियों पर या शिलाओं पर अंकित किया जाता था।

---

1. लूग्र संग्रहालय (पेरिस) में अपनी विश्व सायकिल यात्रा काल में लेखक ने स्वयं इसको देखा है। (१९७५)
2. Breasted. J. H. : Semitic Writing (London, 1948), p. – 22.
3. Friedrich, D. : Sumerische Grammatik (Leipzig, 1914), p. – 107.
4. Deimal, A. : Keilschrift Palaeographic (Rome, 1929), p. – 134.
5. Friedrich, J. : Entzifferung Verschollener Schriften and Sprachen (Berlin, 1954), p. – 34.
6. Jensen, H. : Syn, Symbol, Script (London, 1970), p. – 90.

असीरियन लिपि के व्यंजन तथा स्वर

फलक संख्या – ११९

२. **रेखा – चित्रों से कीलाकार लिपि का विकास :** लगभग २५०० से २३०० ई० पू० तक अन्तर्कालीन रही। शनैः शनैः परिवर्तन आये।

३. **कीलाकार लिपि :** लगभग २३०० से १८०० ई० पू० तक चिकनी मिट्टी की पाटियों पर अंकित की जाती रही।

४. **कीलाकार लिपि :** (१८०० से १७५० ई० पू० तक) हम्मूरबी काल में यह लिपि पाटियों तथा शिलाओं पर अंकित की जाती रही।

५. **कीलाकार लिपि का घसीट रूप :** आरम्भ होने लगा। लगभग १७५० से १२५० ई० पू० तक रहा।

६. **असीरियन लिपि :** यह तो २००० ई० पू० से ही आरम्भ होने लगी थी जो २०० वर्षों के पश्चात् दृष्टिगोचर होने लगी और लगभग १२५० ई० पू० तक पूर्ण विकसित हो चुकी थी। इसका प्रयोग ६०० ई० पू० तक होता रहा।

७. **नव – बेबीलोनियन :** ६०० ई० पू० से इसका पतन आरम्भ हो गया परन्तु इसका प्रयोग पर्शिया के साम्राज्य के अन्त तक (ई० पू० की तीसरी श० तक) एक राज्य लिपि के रूप में जीवित रही। इसके पश्चात् इसका लोप होने लगा।

सुमेर की संख्या पद्धति

लिपि के साथ साथ अंकों का भी निर्माण लगभग २५०० ई० पू० में हुआ। जिस प्रकार संसार के सभी सभ्य प्राचीन देशों में खड़ी या लेटी रेखायें बना कर अंकों का जन्म हुआ उसी प्रकार मेसोपोटामिया में भी अंकों का जन्म तथा प्रयोग हुआ। अन्तर केवल इतना था कि यहां लकीरों के स्थान पर पच्चड़ों (Wedges) के प्रकार की अथवा कीलों के प्रकार की लकीरों का प्रयोग हुआ। अन्य देशों में १०० तक गणना होती थी परन्तु यहाँ की गणना पद्धति केवल ६० पर आधारित थी इसलिए अंक भी ६० ही थे। वे १ से ५९ तक की सभी संख्याओं को जोड़ की योजना से लिखते थे। केवल दो चिह्नों का प्रयोग करते थे।

खड़ी कील 𒁹 १ को व्यक्त करने के लिए और लेटी कील 𒌋 १० को व्यक्त करने के लिए।

संख्या ४३ इस प्रकार लिखी जाती थी 𒌋𒌋𒌋𒌋𒁹𒁹𒁹 ६० का चिह्न वही होता था जो १ का होता था। यदि ८२ लिखना हो तो इस प्रकार 𒁹𒌋𒌋𒁹𒁹 लिखा जाता था। ६० वाली पद्धति हमको आज भी घण्टा, मिनट, सेकण्ड में मिलती है।

असीरिया की संख्या पद्धति

इस पद्धति में सैकड़ा व हजार भी सम्मिखित थे और उसके चिह्न भी निर्धारित कर लिये गये थे। इन दोनों पद्धतियों में शून्य का पता नहीं था। शून्य भारत से गया इसी कारण 'हिन्दसा' अर्थात् 'हिन्द जैसा' सम्बोधित किया गया। असीरिया की संख्या इस प्रकार है :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

= ४३३२

४ x १००० ३ x १०० १०,१०,१०,२

फलक संख्या – १२०

पठनीय सामग्री

Allen, A. B. : Romance of Alphabet (1937)

Barton, G. A. : The Origin and Development of Babylonian Writing (1913)

Budge, E. A. W. : Rise and Progress of Assyriology (London 1925)

Chiera, E. : They Wrote on Clay (1938)

Clark, C. : The Art of Early Writing With special Reference to the Cuneiform Writing (London. 1938)

Clodd, E. : The Story of the Alphabet (N. Y – 1938)

Cottrell, L. : Reading of the Past – the Story of Deciphering Ancient Languages (London – 1972)

Doblhofer, E. : Voices in Stone (1961)

Gelb, I. J. : A Study of Writing (London – 1963)

Jensen, H. : Syn, Symbol and Script. (1970)

King, L. W. : Assyrian Language (1901)

Luckenbill, D. D. : Ancient Records of Assyria and Babylonia (Chicago – 1926)

Mercer, S. A. B. : A Sumero-Babylonian Sign List.

Moorhouse, A. C. : The Triumph of the Alphabet – A History of Writing (NY – 1953)

Pallis, S. A. : The Antiquity of Iraq (Copen – 1956)

पर्शिया (ईरान)

इतिहास

मेसोपोटामिया के दक्षिण – पूर्व में एक प्राचीन देश सूसियाना, जो बाइबिल में एलाम (Elam) कहलाता है, स्थित था। इस देश की राजधानी सूसा (शूशा) थी। सुमेर की भाषा में इस का नाम एलामतू तथा ऐलामू था। बेबीलोन के नरेश सरगोन – प्रथम ने लगभग २३६० ई० पू० में एलाम को परास्त किया परन्तु २२८० में यह फिर स्वतंत्र हो गया। एलाम के तत्कालीन शासक कुतुर नाखुन्टे (Kutur Nakhunte) ने बेबीलोन पर आक्रमण किया परन्तु परास्त न कर सका। लगभग २२६१ ई० पू० में बेबीलोन के राजा नरमसिन (२२९१ – २२५५ ई० पू०) ने एलाम को परास्त कर एक स्थानीय राजा शिलक इन्शु शिनाक (Shilak Inshushinak) को अपना प्रान्तपाल बना कर एलाम का शासक नियुक्त कर दिया। कुछ समय के पश्चात् इसी प्रान्तपाल ने नरमसिन को परास्त कर एलाम तथा बेबीलोन का शासक बन बैठा। इसके पश्चात् एलाम इतिहास के पृष्ठों से लगभग ९०० वर्ष के लिये लोप हो गया।

लगभग १३३० ई० पू० में बेबीलोनिया के कसायट शासक कुरी गाल्जू तृतीय ने एलाम के शासक खुर्बातिला को परास्त किया। १३०० ई० पू० में एलाम देश में एक नये राज – वंश की नींव पड़ी जिसका प्रथम राजा उन्ताश उबन (१२६५ – १२४५ ई० पू०) था। लगभग १२२० ई० पू० में शुत्रुक नाखुन्टे नामक शासक ने बेबीलोनिया देश पर फिर आक्रमण किया, नष्ट – भ्रष्ट किया, बेबीलोन नगर में अग्निकाण्ड मचा दिया तथा वहाँ के तत्कालीन शासक जमामा सुमुद्दीन का वध करवा डाला। नरमसिन का शिलालेख तथा सिप्पार (आ० अबू हबा) से हम्मूराबी (१७२४ से १६८२ तक) के विधि संहिता के शिलालेख भी अपने साथ सूसा लेगया। एलाम का साम्राज्य राजा शिलक इन्शुशिनाक के शासन काल (११६५ – ११५१ ई० पू०) में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गया था परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् छिन्न – भिन्न हो गया। एलाम ने फिर ४०० वर्षों के लिए इतिहास के पृष्ठों से अवकाश ग्रहण कर लिया।

लगभग ७५० ई० पू० में एलाम का इतिहास फिर एक शासक उम्बा दारा के शासन से आरम्भ हुआ। ७४२ में खुम्बा निगस उम्बा दारा का उत्तराधिकारी बना। ७२० में सरगोन द्वितीय ने एलाम पर आक्रमण कर दिया तथा ७१५ में मीडिया के राजा को परास्त कर बन्दी बना लिया और अधीन राजा से कर वसूल करता रहा। ७०० ई० पू० में एलाम का राजा भी बन्दी बना लिया गया। तदनन्तर उसका भाई खल्लूसू उसका उत्तराधिकारी बना। खल्लूसू ने ६९४ ई० पू० में बेबीलोन पर आक्रमण कर दिया तथा वहाँ के तत्कालीन शासक सेनाख़रिब के पुत्र को बन्दी बना लिया। उसने अपने अधीन एक अपने प्रतिनिधि नर्गल युसेज़िब को बेबीलोन का शासक नियुक्त कर दिया। खुल्लूसू का वध एलाम में करवा दिया गया। उसके मरणोपरांत कुदुर नाखुन्टे ने, जो शासक बन गया था, पुनः बेबीलोन पर आक्रमण कर दिया परन्तु दस माह पश्चात् उसका भी वध करवा दिया गया। उसके पश्चात् उसका भाई उम्मान मेनान उत्तराधिकारी बना। इसने एक विशाल सेना का संगठन किया और असीरिया पर आक्रमण कर दिया परन्तु परास्त न कर सका।

एलाम का राज्य निर्बल हो कर पतन की ओर अग्रसर होने लगा। लगभग ६८९ ई० पू० खुम्बा खालदस द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। असीरिया तथा एलाम के सैनिक – झगड़े निरन्तर चलते रहे और एलाम फिर एक बार ६४० में पराजित हुआ। शासक तथा अन्य कई उप – शासक बन्दी बना लिये गये।

अख़मेनिज़ (ग्रीक – Achamanes; पर्शियन – हख़मनिश) ने लगभग ६७० ई० पू० में, जब मीडिया, असीरिया का एक उपनिवेश था, अपनी मातृभूमि छोड़ दी। कुछ दिनों में कुछ भूमि पर अधिकार करके एक छोटे से राज्य को स्थापित कर लिया जिसका नाम था परसूमाश और जिसको पारसा व अनशन भी कहते थे। उसके पुत्र तिशपिश (ग्रीक – Teispes; पर्शियन – किशपिश) ने अपने राज्य को अपने दो पुत्रों आर्यारमिनिज़ (Ariyaramnes) तथा सायरस (लैटिन – Cyrus; पर्शियन – किरुश; हेब्रू – कुरेश) में विभाजित कर दिया।

इतिहासकारों को असीरिया की पराजय के विषय में कुछ ज्ञात नहीं था परन्तु भाग्यवश १९२३ ई० में सी० जे० गैड[1] (C. J. Gadd) का 'फ़ाल आफ़ निनेव' के नाम से एक इतिहास (ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है) हस्तगत हुआ जिसमें घटनाओं की सही तिथियाँ भी दी हुई थीं। तब संसार को वहाँ के इतिहास का ज्ञान प्राप्त हुआ।

उसी के अनुसार ६१६ ई० पू० में बेबीलोन के राजा नेबू पलासर (Nebu Palaser) तथा मीडिया उपनिवेश के अर्ध – स्वतन्त्र राजा सियाक्सरीज़ (ग्रीक – Cyaxares; पर्शियन – सिअक्शरीज़ व उवाकिश्तर) ने मिलकर असीरिया पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में मिस्र ने भी सहयोग दिया। ६१२ में असीरिया की राजधानी निनेव: को जला कर भस्म कर दिया गया। मीडिया के राजा को इतने ही से संतोष न मिला। वह आगे बढ़ा। उसने अर्मेनिया, एशिया माइनर के राज्यों को तथा पूरे ईरान को अपने अधीन कर लिया और एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जो अधिक दिनों तक स्थित न रह सका। इस साम्राज्य की राजधानी एकबहान (आ० हमादान; प्राचीन पर्शियन – हगमतान) थी। सियाक्सरीज़ ने परसूमाश राज्य के दो छोटे राजाओं (सायरस और आर्यरमिनिज़) को भी अपने अधीन कर लिया।

सियाक्सरीज़ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अश्तेगीज़ (ग्रीक Astyages; पर्शियन – अश्तुवेगु) मीडिया का नरेश बना। क्योंकि मीडिया की शक्ति दिन पर दिन क्षीण हो रही थी, सायरस ने अवसर पाकर ५५३ ई० पू० में मीडिया की अधीनता के विरुद्ध क्रान्ति कर दी। अश्तेगीज़ ने इस क्रान्ति का दमन करने के लिये परसुमाश पर आक्रमण कर दिया। तीन वर्ष निरन्तर युद्ध के पश्चात् एक छोटे से नगर के निकट, जिसका नाम पसरगादे[2] था, सायरस की विजय हुई। उसने अश्तेगीज़ को बन्दी बना लिया, हमादान को लूटा और नष्ट कर दिया। तदोपरांत उसने ५४६ ई० पू० में लीडिया के नरेश क्रोशस (Croesus) तथा ५३८ में बेबीलोनिया के एक पुरोहित – राजा नेबुनिडस को परास्त कर एक विशाल पर्शियन साम्राज्य की नींव डाली। इस साम्राज्य की एक नई राजधानी उसी स्थान (पसरगादे के निकट) पर बनवाई गई जहाँ पर सायरस ने अश्तेगीज़ को परास्त किया था। उसका नाम भी पसरगादे (आधुनिक मुरग़ाब) ही रखा गया। मिडिया के निवासी पर्शिया के निवासियों से इतने घुल मिल गये कि वे अपनी पृथकता स्थिर न रख सके और परसगादे[2] कहलाने लगे।

1. C. J. Gadd – Fall of Nineveh, (1923).
2. पर्शिया की एक जाति का नाम पसरगादे था।

पश्चिम -- एशिया के राज्य -- ६०० से ५०० ई० पू० तक
कैल्डियन साम्राज्य
१. निप्पुर
२. अशुर
३. निनेव:
४. करकेमिश
५. जेरुसेलम
६. समारिया
मीडिया साम्राज्य
बख्त्रिया
ग्रीस
लीडिया साम्राज्य
मीडिया साम्राज्य
क्रीट
मिस्र का राज्य
एकबताना
बिहुस्तुम
पार्थिया
सूसा
बेबीलून
पसरगादे
अरबाया
भारत
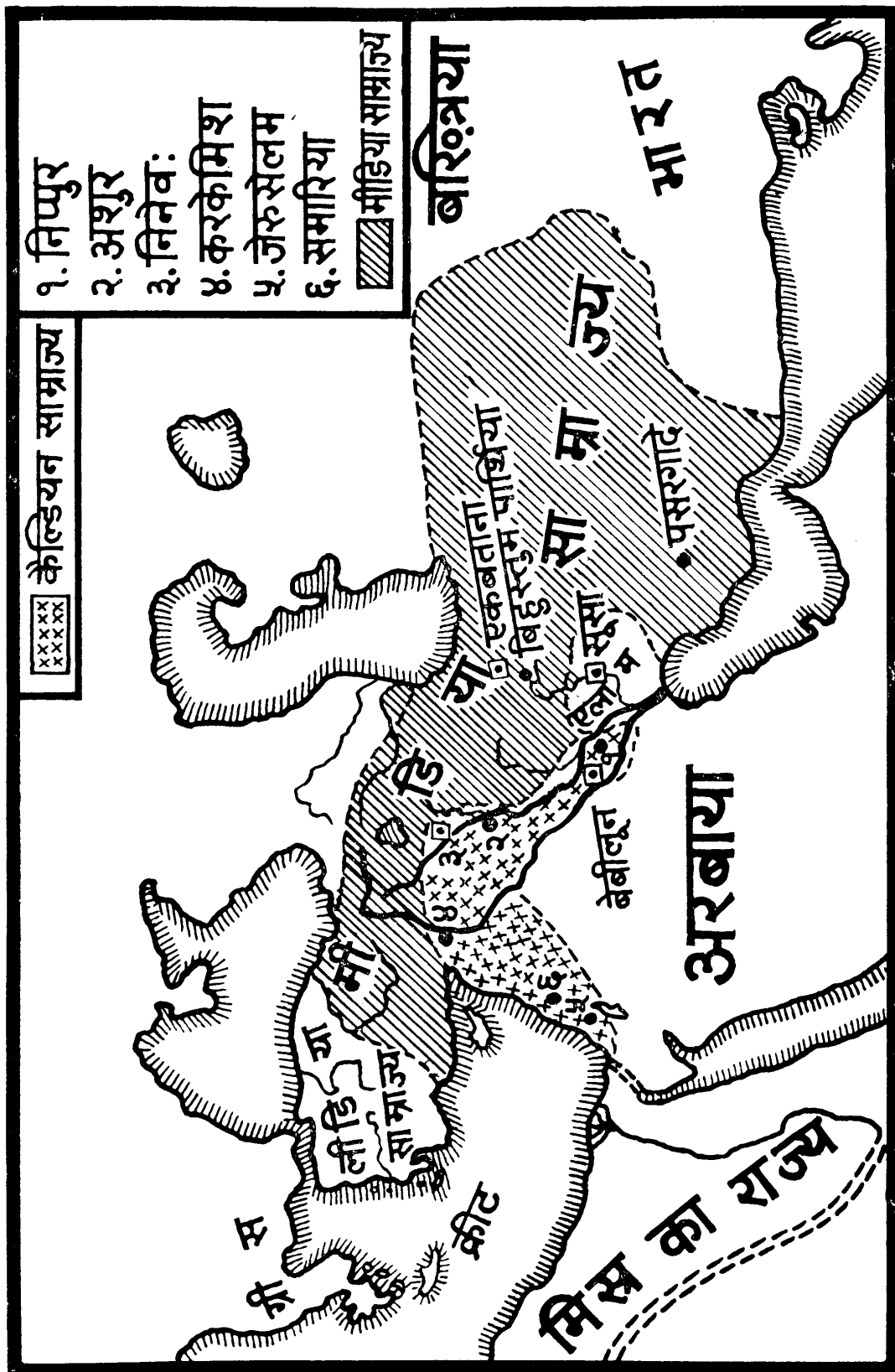
फलक संख्या - १२१

५२९ ई० पू० में सायरस के मरणोपरांत उसका पुत्र कैम्बेसिज़ (Cambyses) शासक बना। उसने ५२५ में मिस्र देश पर विजय प्राप्त की और वहाँ रह कर कुछ वर्ष राज्य भी किया। ५२२ ई० पू० में जब वह मिस्र से लौट रहा था तब हमादान के निकट उसका देहांत हो गया। इसका कोई शक्तिशाली उत्तराधिकारी न था।

कैम्बेसिज़ के मरणोपरांत एक मागी[1] पुरोहित गौमाता (Smerdes)[2] ने क्रान्ति करके राजसिंहासन पर आरूढ़ हो गया। इस राजद्रोह का अन्त अख़मिनी कुल के वंशज डैरियस प्रथम (Darius – I प्राचीन पर्शियन – दरयूश; आ० दारा) ने किया। डैरियस ने कुछ अन्य साथियों के सहयोग से गौमाता को पकड़ कर वध कर दिया और स्वयं पर्शिया के विशाल साम्राज्य का १ जनवरी ५२१ ई० पू० को सम्राट बन गया। इसने एशिया माइनर व बासफ़ोरस आदि को पार कर ग्रीस पर आक्रमण कर दिया। ४९२ से ४९० ई० पू० अर्थात् दो वर्ष तक युद्ध होता रहा जो मराथन नगर के पास डैरियस की पराजय में समाप्त हुआ। ४८६ में इसका स्वर्गवास हो गया।

इसके पश्चात् डैरियस का पुत्र ज़रक्सीज़ (ग्रीक Xerxes – I; प्राचीन पर्शियन – खिशियारशा; बाइबिल अख़शवेरोश या अक्शावर्शी और अरमायक में खिशायार्श) प्रथम, जो सायरस की पुत्री अतोशा द्वारा हुआ था, सम्राट की पदवी से सुशोभित हुआ। ४८० ई० पूर्व में इसने एक विशाल सेना का संगठन किया जिसमें लाखों जल व थल सेना के योद्धा थे और ग्रीस पर आक्रमण कर दिया। ग्रीस के मुख्य नगर एथेन्स को नष्ट – भ्रष्ट करके आग लगवा दी। सलामिस नगर के पास उसकी नौसेना को थेमिस्टाकिल्स (Themistocles) ने नष्ट कर दिया। ज़रक्सीज़ ने अपने तीन लाख सैनिकों को मारडोनियस की अध्यक्षता में युद्ध करते रहने के लिए वहीं छोड़ दिया और जिस रास्ते गया था उसी रास्ते से वापस आ गया। इसकी सेना बुरी तरह परास्त हुई। ४६५ ई० पू० में ज़रक्सीज़ के एक अंग – रक्षक आर्त बेनस (Artabanus) ने उसका वध कर दिया।

उसके मरणोपरांत उसका बेटा आर्तज़रक्सीज़ प्रथम[3] (ग्रीक – Artaxerxes I; प्राचीन पर्शि० आर्त ख़शास्त्र तथा अख़ज़ेराख़) ने ग्रीस से सन्धि कर ली और थेमिस्टाकिल्स को दरबार में बुला कर सम्मानित किया। ४२४ ई० पू० में इसका देहांत हो गया और इसका पुत्र ज़रक्सीज़ द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ परन्तु ४५ दिन के पश्चात् ही उसके भाई ने वध कर दिया। तत्पश्चात् उसका पुत्र डैरियस द्वितीय शासक बना। ४०४ में इसका देहांत हो गया। तदनन्तर आर्तज़रक्सीज़ द्वितीय (४०४ से ३५८ ई० पू० तक), आर्तज़रक्सीज़ तृतीय (३५८ से ३३८ तक), अर्साकीज़ (Arsaces) (३३८ से ३३६ ई० पू० तक) तथा इस विशाल साम्राज्य का अंतिम और भीरु सम्राट् डैरियम तृतीय था, जो सिकन्दर के आक्रमण के समय ३३१ ई० पू० में, अपने ही कर्मचारियों द्वारा मार डाला गया। सिकन्दर ने ऐथेन्स के बदले की भावना से राजधानी के कुछ भाग को जलवा दिया। एक विशाल साम्राज्य ही नष्ट – भ्रष्ट नहीं हुआ अपितु उसकी संस्कृति भी ग्रीक की संस्कृति के रंग में डुबोई जाने लगी।

---

1. मागी मीडिया की एक पुजारी जादू – टोना करने वाली जाति का नाम था। इस जाति का बड़ा आदर होता था। यह जाति सारे धार्मिक रीति रिवाज़ किया करती थी ठीक उसी प्रकार जैसे भारत में कर्मकाण्ड करने वाली ब्राह्मण जाति। 'मागी' (Magi) शब्द से ही मैजिक (Magic) बना।
2. इसने अपना नाम स्मर्डीज़ रख कर लोगों को धोखा दिया।
3. 'आर्त' एवस्त भाषा के 'अश' शब्द से, जिसके अर्थ हैं दिव्यसत्य, बना।

डैरियस का विशाल साम्राज्य

ई० पू० की ५२१ से ४८५ तक
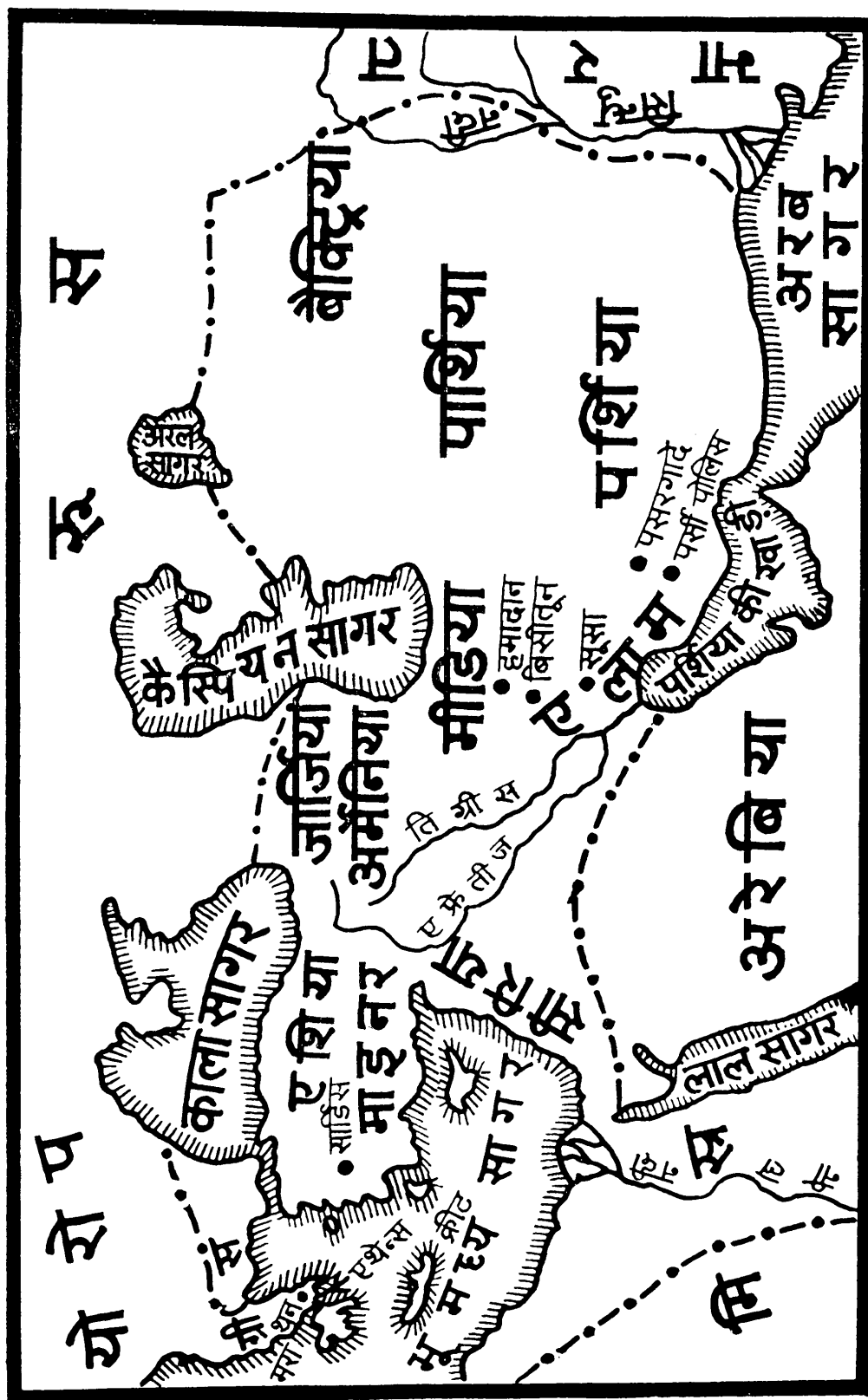
फलक संख्या – १२२

सिकन्दर के स्वर्गवास होने के पश्चात् उसका जीता हुआ भू – भाग उसके उच्च – सैनिक – पदाधि – कारियों में बिभाजित कर दिया गया। उन्हीं में से एक सेल्युकस (Seleucus) था जो बड़ा वीर और प्रतापी था। उसने अपने सारे प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर सम्पूर्ण पश्चिमी तथा मध्य – एशिया पर अपना अधिकार करके एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसका केन्द्र था सीरिया। जब भारत के मौर्य वंश का पतन २३० ई० पू० में आरम्भ हुआ तो इधर सेल्युकस के साम्राज्य का भी पतन आरम्भ हुआ।

कैस्पियन सागर के दक्षिण में एक पहाड़ी देश स्थित था जिसमें पार्थव जाति के लोग निवास करते थे। उसका नाम (डैरियस के अभिलेखों के अनुसार) पार्थिया था। यह देश ३३० ई० पू० तक पर्शिया के साम्राज्य एक अंग था और बाद में सेल्युकस साम्राज्य का प्रान्त बन गया। कुछ पूर्व – उत्तर की ओर बैक्ट्रिया (बाख्त्रिया), जिसकी राजधानी बल्ख् थी, यूनानी संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। जब २५५ ई० पू० में बैक्ट्रिया प्रान्त का अर्ध-स्वाधीन डायडोटस (Diodotus दयोदत) शासक बना और उसने दमन नीति का अनुसरण करके अत्याचारों का श्रीगणेश किया उस समय ईरान की एक पर्यटन – शील जाति पर्नी (पर्ण) बैक्ट्रिया छोड़कर पार्थिया में आकर बस गई। उसी जाति के एक वीर नायक आर्साकिज् (ग्रीक Arsacs; पर्शियन – अरशाक) ने अपने भाई तिरिदेतिज् (ग्रीक Tiridates, पर्शि० तिरिदात) के सहयोग से राजनैतिक क्रान्ति कर दी। पार्थिया के यूनानी प्रान्तपाल ऐन्द्रागोरस (Androgorus) का वध कर दिया और २४७ ई० पू० में एक स्वतन्त्र राज्य की एवं आर्सासिड वंश की स्थापना की जिसने पर्शिया में लगभग ५०० वर्ष तक राज्य किया। इस राज्य का अन्तिम नरेश आर्त बेनस चतुर्थ (Artabenus IV) था जिसका देहान्त २२४ ई० में हो गया।

तत्पश्चात् पर्शिया के निवासी ससान के पौत्र आर्देशर प्रथम (ग्रीक में इसको आर्तज़रक्सीज़् चतुर्थ के नाम से सम्बोधित करते हैं) ने पार्थिया साम्राज्य का तख्ता उलट दिया और एक नये पर्शियन साम्राज्य की स्थापना की। इसके शासकों से रोम व बैज़ेन्ताइन राज्यों से युद्ध होते ही रहे। इस वंश का अन्तिम नरेश यज़्दगर्द तृतीय था। इसने ६३२ से ६५१ ई० तक शासन किया।

तदोपरान्त अरब के मुसलमानों ने सम्राट का वध करके अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। अब पर्शिया निवासी अग्नि पूजक न रहकर एक ख़ुदा के मानने वाले मुसलमान बन गये। इनमें से कुछ अग्नि – पूजक अपने देश से भाग कर भारत में बम्बई के उत्तर में (सौ मील पर) आकर संजान में निवास करने लगे जिनको 'पारसी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वह अपने अग्नि-पूजन के धर्म को अब भी उसी प्रकार मानते हैं।

ईसवी सन् की चौदहवीं श० से मंगोल जातियों के आक्रमणों से पर्शिया नष्ट-भ्रष्ट होने लगा।

सूफ़ी धर्म के प्रवर्तक सफ़ीउद्दीन के अनुयायी सफ़ावीस कहलाते थे। उन्होंने संगठित होकर तथा मंगोलों को देश से निकाल कर १५०२ में राजसत्ता अपने हाथ में ले ली और १७३६ तक राज्य किया।

नादिरशाह एक बड़ा साहसी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। यह ख़ुरासानी तुर्क था। इसका नाम नादिरकुली था सफ़वी वंश के अन्तिम व अयोग्य शासक तहमास्प को राजगद्दी से उतार कर १७३६ में स्वयं नादिरशाह के नाम से पर्शिया के सिंहासन पर बैठ गया। उसने अफ़गानिस्तान एवं भारत पर बड़े विध्वंसक आक्रमण किये। दिल्ली में क़त्लेआम करवाया। इसके उत्तराधिकारियों ने १९०६ तक निरंकुश राज्य किया। तत्पश्चात् एक क्रान्ति हुई जिसने तत्कालीन शाह मुज़फ़्फ़रउद्दीन को एक राजनैतिक विधान मानने पर विवश किया। विधान के अनुसार शासक के पास नाममात्र की सत्ता रह गई।

सिकन्दर का साम्राज्य -- ई० पू० की चौथी शती
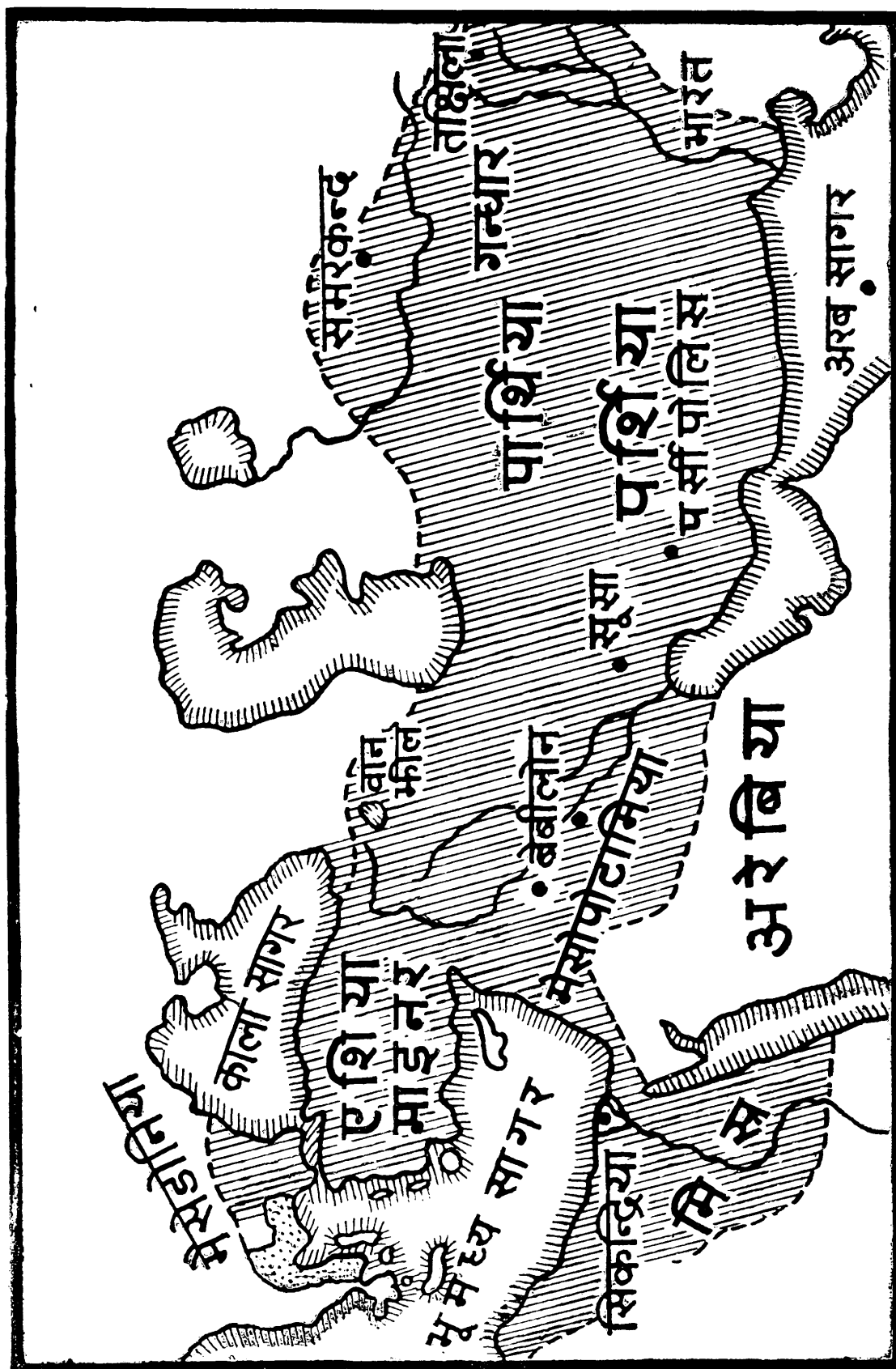
फलक संख्या – १२३

पर्शिया से दो बड़े देश ब्रिटेन और रूस मैत्री – सम्बन्ध रखना चाहते थे। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् १९२० में रूस से सन्धि हो गई। १९२५ में शाह सुल्तान अहमद को राजसिंहासन से उतार दिया गया और तत्कालीन प्रधान मंत्री रज़ा शाह पहलवी पर्शिया का शासक निर्वाचित हो गया और एक नये पहलवी राजवंश की स्थापना हो गई।

१९३५ में इस देश का नाम पर्शिया से ईरान (आर्य, एरियन, इरियन व ईरान) पड़ गया। १९४२ में जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था रज़ा शाह पहलवी ने स्वयं राजगद्दी को छोड़कर अपने सुपुत्र मुहम्मद रजा पहलवी को ईरान का शाह बनाया जो अब तक सिंहासनारूढ़ रहा परन्तु खुमैनी के आने से एक क्रान्ति हुई जिसमें ईरान के शाह को देश छोड़कर भागना पड़ा। १९८१ में उसकी मृत्यु मिस्र में हो गई। ईरान एक इस्लामिक प्रजातन्त्र बना दिया गया परन्तु देश में विद्रोहात्मक तत्त्वों के कारण पूर्ण शान्ति स्थापित न हो सकी।

पठनीय सामग्री

Arberry, A. J. : Legacy of Persia (1931).
Camerson, G. C. : History of Early Iran (1936).
Colledge, M. A. E. : The Parthians (London – 1967).
Ghirshman, R. : Iran – Parthians and Sassanians (London – 1962).
" " : Persia – From the Origin to Alexander the Great (London – 1964).
Schmidt, E. F. : Persepolis (1953).
Vaux, W. S. W. : Ancient History from the Monuments – Persia (1911).
Wilber, D. N. : Iran – Past and Present (1955).

□

पर्शिया की लेखन कला

आरम्भिक काल

जिस प्रकार अन्य प्राचीन देशों में चित्रों एवं रेखा – चित्रों से लिपियों का उद्भव हुआ उसी प्रकार यहाँ भी रेखा – चित्रों से हुआ। अन्य प्राचीन देशों में विद्वानों ने आरम्भ काल की लिपियों का रहस्योद्घाटन करने के लिए बड़ा गहन अध्ययन व अथक परिश्रम किया परन्तु यहाँ सूसा के उत्खनन में एक द्वि – भाषिक पाटिया प्राप्त हो गई जिस पर प्राचीन बेबीलोन (अक्काद) की भाषा तथा एलाम के प्रारम्भिक काल की लिपि अंकित थी। यह उत्खनन फ्रांस की सरकार के पुरातत्त्व विभाग की ओर से आरम्भ किया गया था। यह पाटिया शिलहाक इन्शु शिनाक के काल की (लगभग २७०० ई० पू०)[1] मानी गई है। इस अभिलेख[2] के गूढ़ाक्षरों का रहस्योद्घाटन जी० हुसिंग (G. Hüsing)[3] तथा एफ० बोर्क (F. Bork)[4] बेबीलोनी भाषा की सहायता से किया। इसमें कई शासकों के नाम दिये थे जो तुलना करने से पहचाने जाने लगे। इस प्रकार उन दोनों विद्वानों ने उस द्विभाषिक पाटिया को निम्नलिखित प्रकार से पढ़ लिया :—

(१) "अपने देवता इन्शुशिनाक, जो मनुष्य को बनाने वाला; (२) मैं शिलहाक इन्शुशिनाक; (३) सूसा का प्रांतपाल; (४) एलाम देश का राजा; (५) शेम्पी शुकियान; (६) एक स्तम्भ को सर्मपित करता है।

इसका अर्थ है :—"मैं शिलहाक इन्शुशिनाक, एलाम देश का राजा तथा सूसा का प्रांतपाल, शेम्पी शुकियान में, मनुष्यों की उत्पत्ति कर्ता भगवान इन्शुशिनाक के नाम पर यह स्तम्भ स्थापित करता हूँ।" (फ० सं० – १२४)।

इसके चिह्न अक्षरात्मक (Syllabic) हैं। इस लिपि का कोई सम्बन्ध सुमेर के रेखा चित्रों से नहीं है। इसका उद्भव स्वतंत्र रूप से हुआ।

कीलाकार लिपि का रहस्योद्घाटन

संसार की यही एक प्राचीनतम लिपि है जिसका रहस्योद्घाटन बिना किसी द्विभाषिक एवं त्रैभाषिक अभिलेख के सहारे स्वतंत्र रूप से कर लिया गया[5]। इस रहस्योद्घाटन कार्य का शुभारंभ पर्शिया (आ० ईरान) से हुआ।

---

1. कुछ विद्वान् इस काल का समर्थन नहीं करते। वे २२०० ई० पू० मानते हैं।
2. यह अभिलेख बोर्क की पुस्तक "Zur protoelamischen Schrift" in 'Orientalist – Literary zeiting.' Vol. VIII (1905), Page – 323.
3. Hüsing, G. : Elamische Studien (1932), Page – 203.
4. Bork, F. : 'Zur protoelanmischen schrift' – Orientalist, VII (1905), Page – 323.
5. Pope, Maurice : The Story of Decipherment (1975), page – 99.

एलाम की प्राचीन रेखा -- चित्र -- लिपि

१	२	३	४	५	६
ते	शित	क्वा	चक	ली	उक
इप	अ	ति	किन	इन	कि
तुन	केन	ल	अक	पिस	चुक
की	लू	अक	इक	उक	कर
इन	लि	लि	कि	कुर	रु
लू	मा	लू		ही	उक
लि	उक	लू		अक	इक
मा	कि	उंकी			अ
अक	इक				तू
रुकू	अ				ल
र					अह
ति					
कर					
रि					
कि					

फलक संख्या – १२४

सायरस ने ५४६ ई० पू० तक लीडिया, मीडिया तथा बेबीलोनिया के राज्यों को अपने अधीन करके संसार के सर्वप्रथम विशाल साम्राज्य की नींव डाली। इसने पसरगादे[1] (आ० मुरग़ाब) के एक छोटे से नगर के निकट, जहाँ तीन वर्षीय युद्ध में इसको विजय प्राप्त हुई थी, अपने साम्राज्य की एक भव्य राजधानी, पसरगादे के नाम से ही, का निर्माण कराया।

डॅरियस ने अपनी विजय (५२१ ई० पू०) के स्मरणार्थ दो स्मारकों का निर्माण करवाया। प्रथम ५१८ ई० पू० में पसरगादे से ४५ किलोमीटर दूर दक्षिण की ओर एक पहाड़ी के नीचे मर्वदश्त के चौरस मैदान में एक नई राजधानी का निर्माण[2] करवाया, जिसके सम्पूर्ण होने में ५६ वर्ष लगे। इसका आद्य नाम तो कोई जानता नहीं परन्तु यूनानी इसको पर्सीपोलिस (पर्शिया का नगर राज्य) के नाम से सम्बोधित करते थे, जो सारे संसार के लिये प्रसिद्ध हो गया। आधुनिक पर्शियन (फ़ारसी) में इसका नाम तख्ते-जमशीद[3] है।

द्वितीय स्मारक डॅरियस ने ५१६ ई० पू०[4] में बेहिस्तून[5] (बिसीतून; बिसूतून) ग्राम के निकट कुर्डिस्तान[6] की पहाड़ियों में एक शिलालेख[7] के रूप में निर्माण करवाया। यह शिलालेख सागर-तल से ३८०० फ़ुट तथा भूमि-तल से ५०० फुट ऊँचा है। पूरे शिलालेख की लम्बाई ५८ फुट ६ इंच[8] है तथा पूरे शिला[9] की लम्बाई १५० फुट तथा ऊँचाई १०० फुट है। इस शिलालेख में कीलाकार लिपि की तीन भाषायें उत्कीर्ण की गई हैं जो इस प्रकार है :— (फ० सं० – १२५)।

१. **नीचे सीधी ओर के पांच कालम :** इनमें प्राचीन पर्शियन भाषा में ४१४ पंक्तियाँ अंकित हैं। सामान्यतया इनमें से चार की ऊँचाई ११ तथा १२ फुट के मध्य है। पांचवें कालम की ऊँचाई ५ फुट ८ इंच है। चार कालम की चौड़ाई सामान्यतया ६ फुट २ इंच है तथा पाँचवें की ५ फुट है।

२. **नीचे बायीं ओर के तीन कालम :** इनमें सूसियन (नव-एलामाइट; ख़ूज़ियन भी कहते हैं) भाषा में २६३ पंक्तियाँ अंकित हैं। सामान्यत: इनकी ऊँचाई भी उपर्युक्त चार कालम के समान है। अन्तर बहुत कम है।

३. **ऊपर बायीं ओर के दो कालम :** इन दो कालम में :—

- पहला बायीं ओर का जिसकी ऊपरी चौड़ाई ३ फुट ३ इंच तथा नीचे की चौड़ाई ५ फुट ६ इंच है।
- दूसरा सामने का जिसकी ऊपरी चौड़ाई ७ फुट ८ इंच तथा नीचे की चौड़ाई ८ फुट १० इंच है।

इसके अतिरिक्त ऊपर सीधी ओर चार कालम परिशिष्ट पाठ (Supplementary Texts) के हैं।

---

1. पसरगादे पर्शिया की एक जनजाति का नाम है।
2. Frankfort, H : The Art and Architecture of the Ancient Orient (1954), Page – 218.
3. जमशीद पौराणिककालीन पर्शिया का एक नरेश था। १००० ई० पू० में एक अरब ज़ोहक ने इसको सिंहासनच्युत कर दिया था।
4. Pike, E. R. : Finding out Assyrians (1963), page – 126.
5. इसका प्राचीन नाम 'बागस्तान' (बाग=देवता, जेण्ड भाषा में; स्तान=स्थान) अर्थात् देवता का पवित्र स्थान।
6. कुर्द एक पहाड़ी जाति जा नाम है जिससे कुर्डिस्तान बना।
7. सारे विश्व में 'बेहिस्तून शिलालेख' के नाम से प्रसिद्ध है।
8. Budge, E. A. W. : Sculptures and Inscriptions of Behistun (London – 1907), Page – XXII.
9. Cleater, P. E. : Lost Languages (1950), Page – 91.

अभिलेखों के ऊपर एक कुशल शिल्पकार ने १४ मूर्तियों को उत्कीर्ण किया है जिनका निम्नलिखित वर्णन है :—(फ० सं० – १२६ के बायीं ओर से)।

१. पहले सेवक के हाथ में भाला है।

२. दूसरे सेवक के हाथ में धनुष है।

३. सम्राट डैरियस की ५ फुट ८ इंच की मूर्ति उत्कीर्ण है।

४. सम्राट के चरणों से दबा हुआ तथा क्षमा याचना करता हुआ मुख्य क्रान्तिकारी गोमाता है जो सम्राट बन बैठा।

५. सबसे ऊपर अहुरामज़्द देवता की मूर्ति है।

६. इसके अतिरिक्त ९ मूर्तियाँ अन्य क्रान्तिकारियों की हैं। उनके गले में एक रस्सी का फन्दा पड़ा है और बन्दी के रूप में लज्जित हुए खड़े हैं इस प्रकार १० क्रान्तिकारियों को 'B' से लेकर 'K' तक रोमन वर्ण लिख कर दिखाया गया है। प्रत्येक बन्दी का नाम तथा स्थान तीनों भाषाओं[1] में अंकित किया गया है। जिसका वर्णन 'पृष्ठ – २५९ – २६०' पर दिया गया है।

फलक संख्या – १२६ का विवरण

क्र० सं०	विवरण	Per.	Sus.	Bab
१	सम्राट् डैरियस की वंशावली।	A	A	
२	गोमाता, मुख्य क्रान्तिकारी है।	B	B	B
३	बाईं ओर से प्रथम बन्दी सूसा का बन्दी अत्रीना है।	C	C	C
४	दूसरा बन्दी निदिन्तू बेल है, जो बेबीलोनिया का क्रान्तिकारी था।	D	D	D
५	तीसरा बन्दी मिडिया का क्रान्तिकारी फ़ाओर्तीज़ है।	E	E	E
६	चौथा बन्दी सूसा का मार्तिया है।	F	F	F
७	पाँचवाँ बन्दी सित्रान्तख्मा है।	G	G	G
८	छठवाँ बन्दी फ़ारस का वहयाज़्दा है।	H	H	H
९	सातवाँ बन्दी बेबीलोनिया का अरख़ है।	I	I	I
१०	आठवाँ बन्दी फ़ाद है।	J	J	J
११	नवाँ बन्दी सीथिया का स्कुन्खा है (लम्बी टोपी में)।	K	K	K
१२	बाईं ओर ऊपर के एक कॉलम में प्रकाशन का आलेख है।		L	

1. Per.=Persian; Sus.=Susian; Bab.=Babylonian.

बेहिस्तून का शिलालेख । मध्य में शिल्प कला में मूर्तियाँ ।
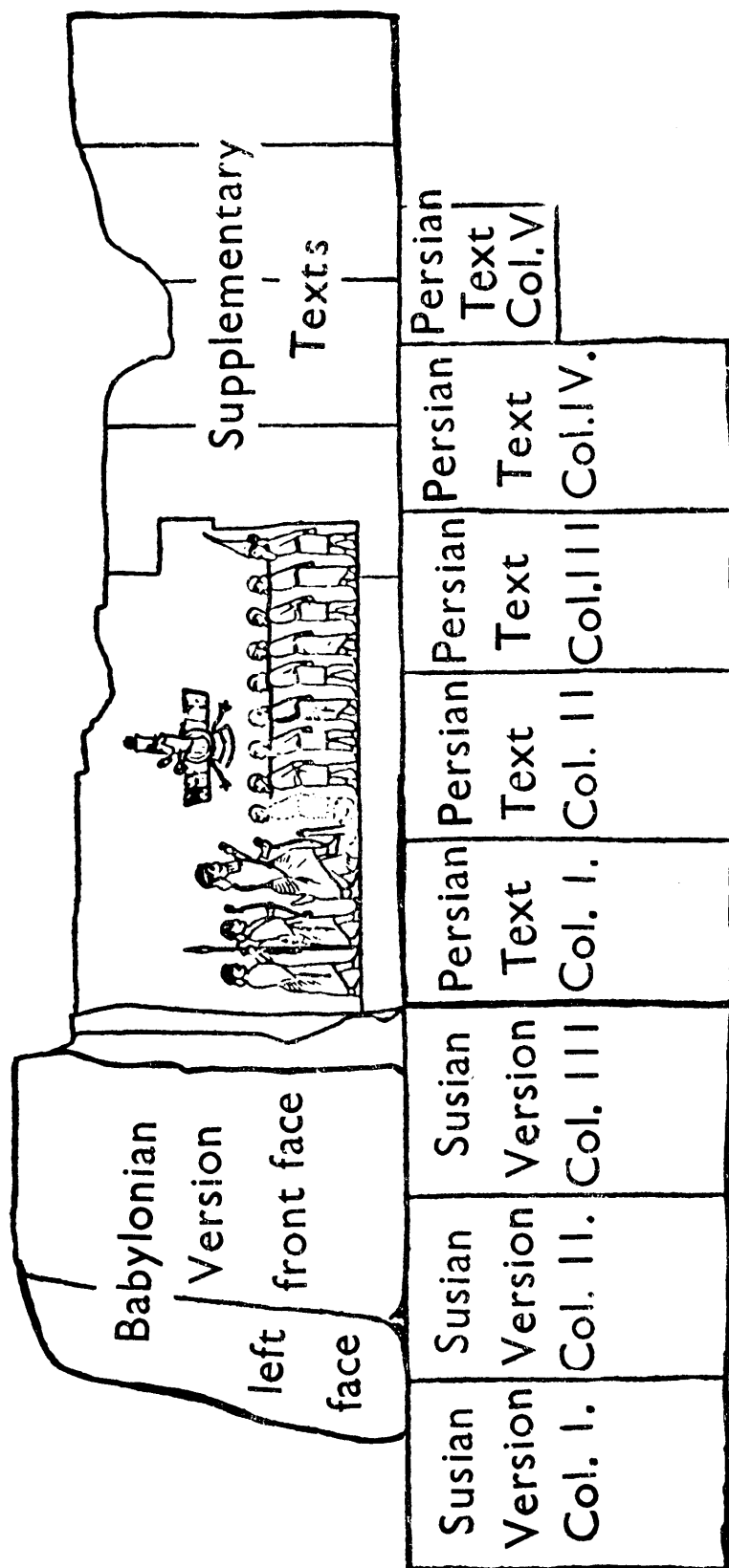
फलक संख्या – १२५

(ब्रिटिश संग्रहालय के सौजन्य से)

बेहिस्तून की शिला पर मूर्तियों का विवरण
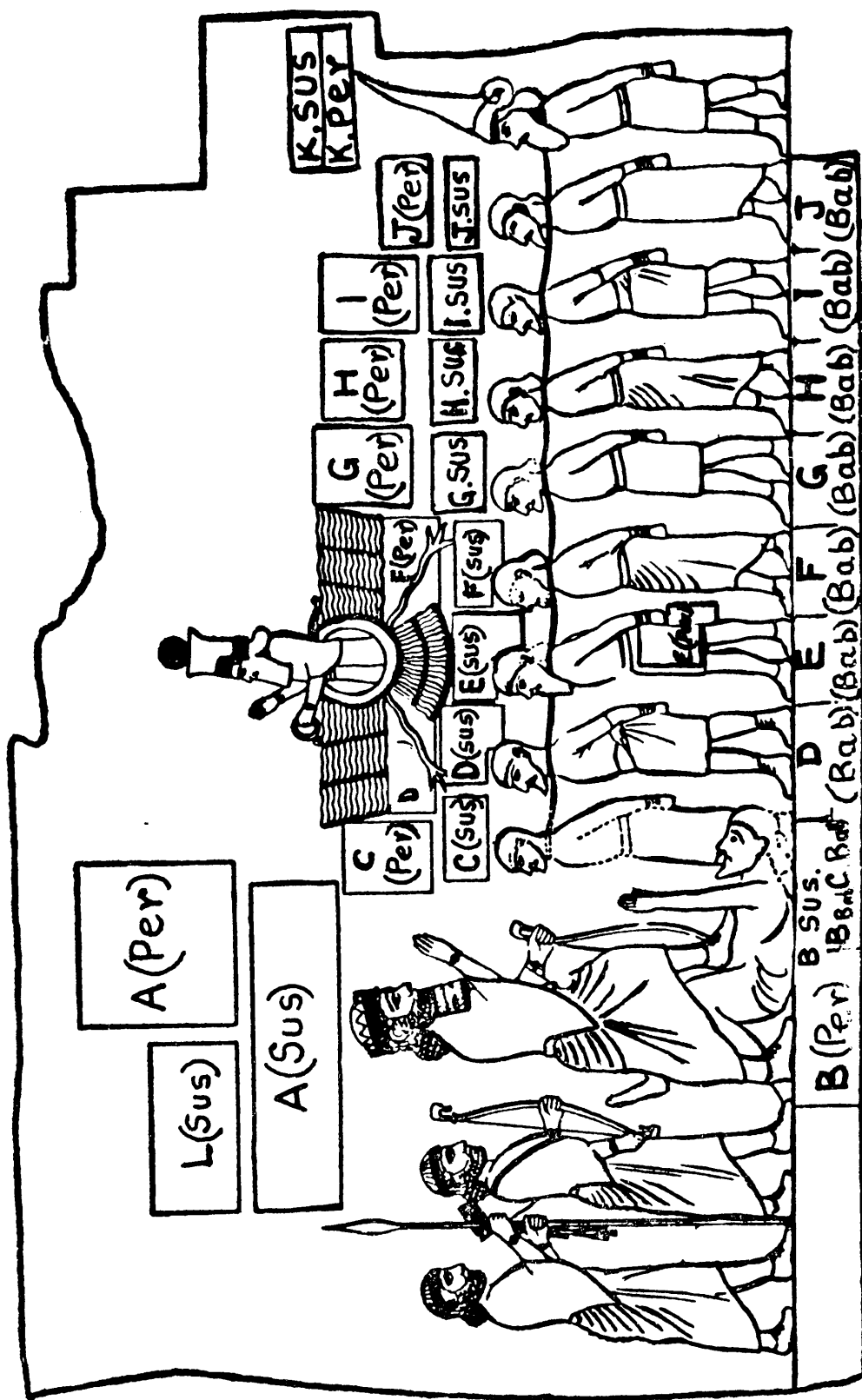
फलक संख्या – १२६

(ब्रिटिश संग्रहालय के सौजन्य से)

पर्सीपोलिस के खण्डहरों के निकट सस्सानी शासकों ने 'इस्तख़र' के नाम से अपनी नई राजधानी का निर्माण ईसा की प्रथम शताब्दी में करवाया था। जब ६३२ ई० में ख़लीफ़ा उमर ने इसको नष्ट करके ४० मील पर एक नवीन नगर 'शीराज़' बसाया, तब इसका नाम प्राचीन शीराज़ तथा चेलेल मीनार (चालीस स्तम्भ) पड़ गया।

पर्शिया में अरबों के आने से २५० वर्ष तक अरबी लिपि का प्रयोग होता रहा। इस काल में पर्शियन भाषा का तथा अरबी लिपि का समावेश हो गया और एक नई लिपि नस्तालिख़ (नसूख़ = अरबी खत या लिपि; तालीक = प्राचीन फ़ारसी) का उद्‌भय हुआ जिसको आधुनिक युग में पर्शियन (फ़ारसी) कहा जाता है।

उपर्युक्त स्मारकों के अतिरिक्त हमादान[1] के दक्षिण में एक पहाड़ी, माउण्ट अलवेन्द[2] पर, दो अभिलेख ज़रक्सीज़ ने तथा डैरियस ने उत्कीर्ण करवाये जिनको ईरानी गंजे – नामः[3] के नाम से सम्बोधित करते हैं।

पर्सीपोलिस तथा परसगादे के मध्य पहाड़ियों की चट्टानों में अखमेनीज़ वंशीय चार शासकों – डैरियस, ज़रक्सीज़, अर्तज़रक्सीज़ तथा डैरियस द्वितीय – की समाधियाँ निर्मित हैं। इनकी दीवारों पर सस्सानी शासकों के उभरे चित्र भी अंकित हैं। इनकों ईरानी नक्शे – रुस्तम[4] कहते हैं।

पर्शिया के उपर्युक्त भव्य स्मारकों के समाचार निम्नलिखित प्राचीन इतिहासकारों — कुइन्टस कर्टियस (Quintus Curtius), डायडोरस (Diodorus),[5] अथेनियस (Athenaeus) आदि — द्वारा योरोप निवासियों तक पहुँच चुके थे। इसके पश्चात् कुछ यात्री आये और उनके द्वारा कुछ अन्य विवरण मिले। शनैः शनैः पन्द्रहवीं श० से इन स्मारकों को देखने तथा लिपियों को पढ़ने का प्रयास करने के लिए विद्वानों का आना आरम्भ हो गया। उनका परिचय तथा योगदान निम्नलिखित है :—

१४७२ में : सर्वप्रथम ज्ञासोफ़त बारबरो (Giasofat Barbaro – जन्म १४३१, मृत्यु १४९३) वेनिस राज्य के राजदूत बन कर पर्शिया आये। इन्होंने नक्शे – रुस्तम में सस्सानी शासक शापुर प्रथम (Shapur – I, २४१ – ७२) के उभरे चित्र को सालोमन (Solomon) समझ लिया। इनका यात्रा विवरण १५४३ में प्रकाशित हुआ।

१४७९ में : स्पेन देश के एक प्रतिनिधि दॉन गार्शिया दि सिल्वा फ़िग्युरोआ (Don Garcia de Silva Figueroa – १४२६ – १४९१) पर्शिया आये। इन्होंने पर्सीपोलिस के खण्डहरों को डैरियस का एक प्राचीन नगर बताया। यह अपने साथ एक चित्रकार भी लाये थे जिसने कीलाकार लिपि की कुछ पंक्तियाँ उतारीं, जो प्रकाशित नहीं हुईं।

१६१९ में : इटली निवासी एक यात्री पेत्रो देल्ला वल्ले (Pietro della Valle – १५८६ – १६५१)[6] वेनिस से कान्सटैण्टीनोपिल जल – यात्रा द्वारा आया और १६२१ में पर्शिया पहुँचा। इसने अपने मित्र मैरियो शीपान्स (Mario Schipans) को एक पत्र २१ अक्टूबर १६२१ को लिखा। इसमें

1. प्राचीन एकबटान, जो मिडिया की राजधानी थी।
2. अलवेन्द को जेण्ट – अवेस्त भाषा में औरन्त; यूनानी भाषा में ओरीण्टीज़ (Orontes) कहते हैं।
3, इसका अर्थ है 'खज़ाने की पुस्तक' अर्थात् धनराशि मिलने की कुंजी।
4. "रुस्तम के चित्र" रुस्तम पर्शियन राष्ट्र का एक महान् शूरवीय हुआ है।
5. सर्वप्रथम प्रथम शताब्दी में इसी इतिहासकार ने इस डैरियस के बेहिस्तून शिलालेख को सेमीरामिस का स्मारक समझा।
6. Cleater, P. E. : Lost Languages (1962). p. – 71.

कीलाकार लिपि के चार वर्ण भी बना कर भेजे 'फ० सं० – २७' और लिपि की दिशा बाएँ से दाएँ बतलाई। यह भारत भी आया था। सात वर्ष पश्चात् १६२६ में रोम पहुँचा। इसका यात्रा विवरण १६५७ में प्रकाशित हुआ।

फलक संख्या – १२७

१६२६ में : एक इङ्गलैण्ड निवासी टॉमस हर्बर्ट (Thomus Herbert) केवल दो दिन के लिए पर्शिया आया। इसी ने सर्वप्रथम पर्सीपोलिस के महल के चित्र खींचे तथा लिपि की तीन पंक्तियों को उतारा। इसने लिपि को रहस्यपूर्ण कहा। अपनी यात्रा के वृत्तान्त को १६३४ में प्रकाशित कराया। पाश्चात्य देशवासियों में एक नई जागृति उत्पन्न हुई।

१६६४ में : एक फ्रांसिसी जौहरी ईयन चार्दिन (Jean Chardin, १६४३ – १७१३) आया। पुनः १६७० में आया। यह इंगलैण्ड का नागरिक तथा चार्ल्स द्वितीय (Charles – II) के राजदरबार का जौहरी बन गया। इसने १६८१ तक यात्रा की और अपने विवरण में, जो १७११ में प्रकाशित हुए, पर्शिया के प्राचीन अभिलेखों को धार्मिक बताया। उसने यह भी कहा कि "यह कीलों जैसी लिखावट कोई सजावटी कला नहीं है अपितु सुलिखित वर्ण हैं।"

१६८६ मे : एक जर्मन भौतिक शास्त्री एञ्जिलबर्ट कैम्फ़र (Engelbert Kampfer)[1] ने जब इस लिपि का निरीक्षण किया तो सर्वप्रथम इस लिपि के लिए एक नाम, "पच्चड़ – आकार लिपि" (Wedge – Shape Writing – "Litterae cuneatae"), का आविष्कार किया। दुर्भाग्य से इसका यात्रा – विवरण १२ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ, जिसमें यह नाम मुद्रित हुआ था। अभिलेखों की कुछ प्रतिलिपियाँ भी तैयार कीं।

१७०४ में : एक डच (हॉलैण्ड निवासी) कार्नेलियस वान ब्रूइन[2] (Cornelius Van Bruyn), जो बाद में फ्रांस का नागरिक हो गया और ली ब्रून (Le Brun) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, पर्शिया आया। इसने इस लिपि को क्षैतिज (Horizontal) प्रतिपादित किया।

१७१८ में : एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकारी सैमुयल फ़लावर (Samuel Flower) आया जिसने कुछ प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा सर्वप्रथम प्रत्येक कीलाकार वर्ण के मध्य एक बिन्दी लगाने की पद्धति आरम्भ की।

१७६२ में : काउण्ट केलस (Count Caylus) ने एक लघु – अभिलेख प्रकाशित किया। यह अभिलेख मिस्र के एक एलाबस्तर कलश पर चार भाषाओं में प्राचीन पर्शियन, एलामाइट, बेबीलोनियन तथा मिस्री – अंकित था। इसमें 'ज़रक्सीज़' का नाम भी अंकित था। यह अभिलेख प्राचीन पर्शियन पढने के कार्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

1. Lemgo K. M. : Engelbert Kämpfer (1937), p. – 116.
2. Bruyn C. Van : Reizen : Amsterdam – 1708.

१७६५ में : एक डेन (डेनमार्क निवासी) कर्सटेन नीब्हुर (Cursten Niebuhr, १७३३ – १८१५) पर्शिया आया। नीब्हुर १७६० तक सेना के अभियन्ता के पद पर रहा। १७६१ में डेनमार्क के महाराजा फ्रेड्रिक पंचम ने कोपेनहेगेन से पाँच साहसिक – यात्री विद्वानों को पर्शिया भेजा जिनमें एक नीब्हुर भी था। यह मिस्र, अरेबिया तथा भारत (बम्बई) होता हुआ अकेले १७६५ में पर्शिया पहुँचा क्योंकि इसके चारों सहयात्री रास्ते में ही — दो अरेबिया में और दो बम्बई में — मृत्यु के ग्रास हो गये। नीब्हुर लिपि – विशेषज्ञ तो नहीं था परन्तु इसके सुझाव व प्रयास से लिपि के रहस्योद्घाटन कार्य में न्यास बन गये। इसी ने सर्वप्रथम कहा कि अभिलेख त्रैभाषिक हैं तथा बाएँ से दाएँ की ओर लिखे गये हैं। इसने अनेक प्रतिलिपियाँ तैयार करके विद्वानों के पास भेजीं। ४२ वर्णों की एक वर्णमाला भी तैयार की, जिसमें से १० अशुद्ध निकलीं। इसका यात्रा वृत्तान्त[1] १७७४ में प्रकाशित हुआ। इसी वृत्तान्त से प्रेरित होकर नैपोलियन ने १७९९ में मिस्र पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

१७६५ में : एक ऑक्सफ़ोर्ड का हेब्रू भाषा का प्राध्यापक टॉमस हाइड[2] (Thomas Hyde) आया। लिपि को देख कर इसने इसका नाम 'क्यूनीफ़ार्म' (Cuneiform) रखा। यह शब्द लैटिन (इटली की प्राचीन भाषा) के शब्द क्यूनियस (Cuneus) से, जिसके अर्थ पच्चड़ (wedge) या कील हैं, बना तथा 'फ़ार्मा' (forma) जिसके अर्थ हैं आकार (shape), अर्थात् कीलाकार लिपि अथवा कीलाक्षर 𒁹𒁹 (Cuneiform) के नाम से प्रसिद्ध हो गई। अरबी में खत्ते – मेख़ी (मेख़ के अर्थ भी कील या पच्चड़ हैं)।

१७६६ में : एक फ्रांसिसी विद्वान् अनक्वेतिल दूपेरों (Anquetil Duperron, १७३१ – १८०५) यहाँ आया। यह बड़ा साहसिक यात्री था। अपनी सात वर्षीय भारत यात्रा काल में ही पर्शिया गया था। यह सर्वप्रथम १७५४ में पॉण्डीचेरी आया और वहाँ से बंगाल होता हुआ सूरत, जो फ्रांस के अधिकार में था, पहुँचा। यहाँ पर इसने एक पारसी पुरोहित (दस्तूर) दारा से परिचय प्राप्त किया तथा ज़ेण्ड – अवेस्त भाषा सीखने के लिए निवेदन किया। दस्तूर ने छिप कर (पार्सियों के अतिरिक्त उनकी धार्मिक पुस्तक पढ़ने का किसी अन्य को अधिकार नहीं है) धार्मिक पुस्तक के एक एक शब्द का अनुवाद दूपेरों को पर्शियन में करवाया, क्योंकि यह पर्शियन भाषा का विद्वान् था। यह अनुवाद[3] १७७१ में प्रकाशित हुआ तथा रहस्योद्घाटन कार्य में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

१७७० में : एक अन्य फ्रांसिसी विद्वान् सिलवेस्त्रे दि सेसी (Silvestre de Sacy, १७५८ – १८३८) ने अपने शोध किये तथा उनको अपनी एक पुस्तक[4] में प्रकाशित कराया। इससे विद्वानों को एक नया उत्साह तथा मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

१७८५ में : एक जर्मन विद्वान् ओलाव गेरहार्ड टाइख़ज़ेन (Olav Gerhard Tychsen, १७३४ – १८१३), जिसको आरम्भ से ही प्राच्य भाषाओं में रुचि थी, ने हेब्रू तथा पुरा – अरबी लिपियों का गहन

1. "Description of a Voyage to Arabia and Neighbouring Lands."
2. Hyde, Thomas : Historia religionis veterum Persarum (1768), page – 121.
3. "Zend – Avesta", Paris – (177).
4. "Memoires Sur diverses antiquites de Perse" — Paris (1793).

अध्ययन किया। १७९० में यह रॉस्टॉक नगर के प्राच्य – भाषा पुस्तकालय का अध्यक्ष बन गया। इसने पर्शिया के अभिलेखों पर अपना शोध आरम्भ कर दिया। इसने इनको त्रैभाषिक – पर्शियन, मीडियन तथा बैक्ट्रियन – माना। कीलाकार लिपि के एक शब्द 'अ – क – स – क' को पढ़कर इसका अर्थ पर्शियन राज्य के संस्थापक – शासक असीकीज़ प्रथम मान लिया तथा सारे अभिलेखों को इसी शासक से सम्बन्धित बतलाया। अपनी एक पुस्तक[1] भी १७९८ में प्रकाशित की। इसी ने तिरछे

कीलाकार चिह्न को शब्दों को पृथक् करने (Word – divider) वाला चिह्न

फलक सं० – १२८

पहचाना। यह पद्धति प्राचीन पर्शियन की कीलाकार लिपि में पाई जाती है।

१७९६ में : आरनॉल्ड हरमन लुडविग हीरेन (**Arnold Hermann Ludwig Heeren**) ने इन अभिलेखों को अख़मेनीज़ वंशीय शासकों के बतलाये तथा एक पुस्तक[2] भी प्रकाशित की।

१७९७ में : जे० जी० हर्डर (J. G. Herder) ने इस लिपि को अख़मेनीज़ शासकों की नहीं मानी।

१७९८ में : फ्रेडरिख़ क्रिश्चियन कार्ल हाइनरिख़ मुण्टर[3] (Friedrich Christian Carl Heinrich Münter, १७६१ – १८३०) ने अपना शोध कार्य नीब्हुर की भेजी हुई प्रतिलिपियों के आधार पर आरम्भ कर दिया। अपने निष्कर्षों को रॉयल अकादमी, कोपेनगेन के समक्ष पढ़ा। इसने तीन अक्षरों – 'अ, य, ई' को पहचान कर इनके प्रयोग की संख्या निर्धारित की 'फ० सं० – १२९' 'अ' – १८३ बार;

फलक संख्या – १२९

'य' – १४६ बार तथा 'ई' – १०७ बार। इसने भी इन लिपियों को निम्नलिखित प्रकार से त्रैभाषिक माना :

१. ज़ेण्ड (प्राचीन पर्शियन) – वर्णात्मक।

२. पहलेवी (मध्य पर्शियन) – अक्षरात्मक।

३. असीरियन (नव पर्शियन) – भावात्मक।

---

1. "de Cuneatis Inscriptionibus Persepolitanis Lucubraito" — Rostock (1798).
2. "Asiatic Nations" — Vol. II., Page – 350.
3. Münter, F. C. C. H. : Researches into Persepolitan Inscriptions (1803).

१८०२ में : एक जर्मन अध्यापक जार्ज फ्रेड्रिक ग्रोटेफ़ेण्ड (George Frederick Grotefend, १७७५ – १८५३) ने रहस्योद्घाटन में पर्याप्त योगदान दिया। भाषा विज्ञान के अध्ययन काल में जब इसने टाइख़ज़ेन, दूपेरों, नेब्हुर, मुण्टर, दि सेसी आदि विद्वानों के शोध कार्यों का अवलोकन किया तो इसका ध्यान भी इन अभिलेखों के पढ़ने में आकर्षित हुआ। इसको कई विद्वानों द्वारा इन अभिलेखों की प्रतिलिपियाँ भी प्राप्त हो गई। सर्वप्रथम इसने दो बातों पर विचार किया।[1] पहली यह कि कीलाकार चिह्न अक्षरात्मक हैं, वर्णात्मक हैं या भावात्मक हैं। दूसरी यह कि पहले सेसी के पहलेवी अभिलेखों के रहस्योद्घाटन को समझा जाय। इसने तीन शासकों के नाम पढ़ लिये परन्तु उनमें कुछ त्रुटियाँ रह गईं 'फ० सं० – १३०' उदाहरणार्थ ऊपर की प्रथम पंक्ति में 'अ' को 'ए'; 'य' को 'ह्', 'व' को ''इ;

द (ए) र (ह) (इ) ऊ श

(ख) श (ह) (ए) र श (ए)

(ग) (ऊ) श त (ए) स प

फलक संख्या – १३०

दूसरी पंक्ति में 'ख़' को 'ख'; 'य' को 'ह्'; 'अ' को 'ए'; तथा तीसरी पंक्ति में 'वि' को 'ग'; 'इ' को 'ऊ' या 'ओ' पढ़ा। इस प्रकार इसने १३ अक्षरों को पढ़ लिया। इसके प्रयास आंशिक रूप में प्रकाशित हुए परन्तु पूरे निष्कर्ष दि सेसी ने एक विश्वकोष[2] में प्रकाशित कराये। निष्कर्षों की कड़ी आलोचना होने के कारण इसने अपना प्रयास स्थगित कर दिया।

१८१० में : जेम्स जस्टिन मोरियर (James Justine Morier) पर्सीपोलिस, सायरस की समाधि देखने आया। इसने यूनानी इतिहासकार एरियन (Arrian) की पुस्तक में पढ़ा था कि सायरस की व सालोमन की माँ की समाधि एक जैसी हैं। उसने भी कुछ प्रतिलिपियाँ तैयार कीं।

1. Maurice Pope : The story of Decipherment (London, 1975), page – 99.
2. Millin : "Magasin encyclopedique."

१८११ में : क्लाडियस जेम्स रिच्छ (Claudius James Rich, १७६५ – १८२१) इंगलैण्ड का मुख्य प्रदूत बनकर बग़दाद आया। इसने अभिलेखों की प्रतिलिपियाँ बनवाकर कई विद्वानों के पास भेजता रहा, मुख्यतया ग्रोटेफ़ेण्ड के पास भेजीं। एक महामारी में इसका स्वर्गवास हो गया।

१८१२ के अन्त में : एक प्राच्य – वेत्ता विलियम गोरे आउस्ले (William Gore Ouseley) पर्सीपोलिस के खण्डहरों को देखने आया। इसने खिड़की के १८ अभिलेखों का निरीक्षण किया। मोरियर इसका पथप्रदर्शक बन गया।

१८२३ में : फ्रांस का एक प्राच्यवेत्ता ऐन्तोने यान सेन्त मार्तिन (Antoine Jean St. Martin, १७९५ – १८७३) ने लिपि को पढ़ने के प्रयास में तीन वर्णों 'व' 'य' 'ई' को पहचाना। इसने भी मिस्र में एक अलंकृत कलश देखा जिस पर मिस्री व कीलाक्षरों में ''ज़रक्सीज़'' का नाम अंकित था।

१८२६ में : विद्वानों द्वारा यह बात प्रचलित हो गई कि प्राचीन पर्शियन अभिलेखों को पढ़ने के लिए ज़ेण्ड – अवेस्त का ज्ञान होना अनिवार्य है। इस वर्ष एक डेन विद्वान् रासमुस क्रिश्चियन रस्क (Rasmus Christian Rask, १७८७ – १८३२) जिसने ज़ेण्ड, पहलवी, संस्कृत, अरबी, हिन्दुस्तानी, पाली आदि का पर्याप्त अध्ययन किया था, कोपेनहेगेन से पर्शिया आया। इसने ग्रोटेफ़ेण्ड के निष्कर्षों का अध्ययन किया तथा एक शब्द 'अनाम' 'फ० सं० – १३१' पढ़ लिया जिससे दो नये अक्षर 'न' और 'म' पहचान लिये गये।

फलक संख्या – १३१

१८३२ में : एक फ्रांसिसी युगेन बर्नोफ़ (Eugene Burnouf, १८०१ – १८५२) की 'कालेज दि फ्रांस' में संस्कृत के अध्यक्ष – पद पर नियुक्ति हो गई। यहाँ इसको दो ग्रन्थ — दुपेरों की ज़ेण्ड – अवेस्त, जो आंशिक अशुद्ध थी तथा 'यास्न', जो ज़ेण्ड – अवेस्त का एक भाग था और जिसमें पार्सियों के पूजा – पाठ – विधि का वर्णन था — प्राप्त हुए। इसने 'यास्न' का अनुवाद[1] फ्रेञ्च भाषा में किया। यह पुस्तक कीलाकार लिपि के विद्यार्थियों को अमूल्य सिद्ध हुई। अब यह पर्शियन भाषा का एक विद्वान् माना जाने लगा। इसके पश्चात् इसको दो त्रैभाषिक अभिलेख — एक तो वान (अर्मेनिया) से तथा एक हमादान[2] (मीडिया) से प्राप्त हुए। हमादान के अभिलेख एलवेन्द की पहाड़ी की दो शिलाओं पर उत्कीर्ण थे। इन अभिलेखों को हमादान के निवासी गंजे – नामा ('कोष की किताब' अर्थात् 'कुञ्जी') के नाम से सम्बोधित करते थे। एक शिला डैरियस के नाम पर तथा दूसरी ज़रक्सीज़

1. Commentaire Sur le Yasna (Paris), 1834.
2. मीडिया की प्राचीन राजधानी 'एकबटान' का आधुनिक नाम हमादान है।

के नाम पर उत्कीर्ण थी। दोनों त्रैभाषिक अभिलेख बर्नोफ़ की पुस्तक[1] में प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् इसने ३३ अक्षरों की एक वर्णमाला बनाई जिसमें से आठ अशुद्ध सिद्ध हुए। इसने दो नये अक्षर 'क' तथा 'ज' ठीक पहचाने।

१८३३ में : एक नॉर्वे निवासी विद्वान् क्रिश्चियन लासेन (Christian Lassen, १८०० – १८७६) पेरिस आया और बर्नोफ़ का एक सहयोगी मित्र बन गया। यह भी एक प्राच्य – वेत्ता था। १८२६ में यह बॉन चला गया। इसने भी अपना शोध – कार्य एक पुस्तक[2] में प्रकाशित किया।

१८३५ में : फ़र्ग्यूसन (Fergusson)[3] आया, जो पर्सीपोलिस के खण्डहरों को देख कर चकित रह गया और कहा कि "इतने भव्य महल इंगलैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी में भी नहीं हैं।"

१८३७ में : दो विद्वाद् ई० ई० यफ़ बियर (E. E. F. Beer, १८०५ – १८४१) तथा ई० वी० यस० जैकुयेट (E. V. S. Jacquet, १८११ – १८३८) पर्शिया आये। अपने शोध कार्य द्वारा क्रमशः दो और चार अक्षरों को पहचाना।

१८३९ में : फ्रांस के तीन विद्वान् (राजनैतिक प्रतिनिधि बनकर) – काउन्त दि सारज़ी (Count de Sarzy), पासकल कोस्ते (Pascal Coste) तथा युगेन फ़्लान्दीन (Eugene Flandin) आये और बेहिस्तून शिलालेख की प्रतिलिपियाँ तैयार करने के प्रयत्न किये परन्तु असफल रहे। कोस्ते और फ़्लान्दीन ने अपने यात्रा विवरण प्रकाशित[4] किये।

१८४३ में : एक डेन नीलस लुडविग वेस्टरगार्ड (Neils Ludwig Westergard, १८१५ –१८७८) अपने दो सहयोगियों — लुई कैगनार्त दि सालसी (Louis Caignart de Saulcy,) तथा एडवर्ड हिंक्स (Edward Hincks) के साथ पर्शिया उन अभिलेखों की खोज में आया, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुये थे। उसको दो अभिलेख – एक पर्सीपोलिस में तथा दूसरा नक़्शे – रुस्तम में – मिल गये। इसने एलामाइट के ९० शब्द पहचान लिये। एलामाइट भाषा का नाम मार्तिन तथा वेस्टरगार्ड ने मीडियन, मोर्डमान (Mordtmann) ने सूसियन, सेसी ने अमारदियन तथा हुसिंग (Hüsing) ने नव – एलामाइट रखा। १८४६ में वेस्टरगार्ड ने अपना शोध – लेख रॉयल आयरिश अकादमी के समक्ष पढ़ा।

१८४६ में : एक स्वेड (स्वीडन निवासी) लोवेनस्टर्न (Löwenstern) ने सर्वप्रथम ज़रक्सीज़ के अभिलेखों को पढ़ने का प्रयास किया।

अब तक पर्सीपोलिस, नक़्शे – रुस्तम तथा पसरगादे के अभिलेखों का निरीक्षण तथा लिपि के रहस्यो – द्घाटन के प्रयास अनेक विद्वान् कर चुके थे तथा कई चिह्न पहचान भी लिये गये थे परन्तु अभी तक बेहिस्तून शिलालेख अछूता रह गया था। इसका मुख्य कारण यह था कि इसको स्थानीय निवासी धार्मिक दृष्टिकोण से पवित्र मानते थे और किसी विदेशी को उसके निकट जाने की अनुमति नहीं देते थे। फिर भी निम्नलिखित विद्वानों ने दूर से ही देख कर अपने मत प्रगट किये: —

---

1. "Memoire Sur deax inscriptions Cuneiformes trouvees Pres d' Hamadan" (Paris) 1836.
2. "Die altpersischen kielin schriften–(Bonn), 1836.
3. "Palaces of Nineveh and Persepolis"–page 214.
4. "Voyage en Perse."

१. **पाल आंगे लुई दि गार्दने** (Paul Ange Louis de Gardanne) : अपने भाई का, जो तेहरान में फ्रांसिसी राजदूत था, सचिव बन कर १८०७ में आया। इसने डैरियस के उभरे चित्र को क्रास पर ईसा की मूर्ति मानकर दस बन्दियों को धर्मदूत (10. Apostles) माना।

२. **राबर्ट कर पोर्टर** (Robert Ker Porter) : ने डैरियस को शलमनेसर तृतीय (८५९ – ८२४ ई० पू०) समझा और दस बन्दियों को इस्रायल की दस जातियाँ समझीं।

३. **जे० एम० किन्नाइर** (J. M. Kinneir) : ने शिलालेख को पर्सीपोलिस से सम्बन्धित बतलाया। इसके अतिरिक्त भी यात्री आये परन्तु वे उल्लेखनीय नहीं हैं।

अंत में एक इंगलैण्ड निवासी हेनरी क्रेसविक रॉलिन्सन (Henry Creswick Rawlinson, १८१० – १८९५) को इस कीलाकार लिपि के रहस्योद्‌घाटन करने का श्रेय प्राप्त हुआ। इसी के निष्कर्षों द्वारा पश्चिम एशियाई देशों के समस्त कीलाकार अभिलेख पढ़ लिये गये। रहस्योद्‌घाटन कार्य भी इसने अपने निजी प्रयास तथा ज्ञान से आरम्भ कर दिया तथा आंशिक सफलता प्राप्त होने के पश्चात् इसने अपने पूर्व के विद्वानों के निष्कर्षों का अवलोकन किया। किस प्रकार इसने अपना जीवन दाँव पर लगा कर सफलता प्राप्त की, एक वृत्तान्त के रूप आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत है।

रॉलिन्सन का जन्म १८१० में इंगलैण्ड के एक नगर ऑक्सफ़ोर्डशायर में हुआ। इसने युनानी (Greek) व लातीनी (Latin) भाषाओं का गहन अध्ययन किया। सोलह वर्ष की आयु तक पहुँचते पहुँचते यह छः फुट लम्बा एक स्वस्थ नवयुवक हो गया। तदनन्तर इसने सेना में प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा १८२७ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सेना विभाग का पदाधिकारी होकर भारत की ओर प्रस्थान किया। जल – यात्रा काल में इसका परिचय सर जॉन मैलकॉम (Sir John Malcolm) से हुआ, जो बम्बई के राज्यपाल नियुक्त होकर भारत आ रहे थे। इन्होंने रॉलिन्सन को पर्शियन (फ़ारसी) भाषा सीखने के लिये प्रेरित किया। आठ साल भारत में रह कर इसने अरबी व फ़ारसी का गहन अध्ययन किया।

१८३५ में रॉलिन्सन एक सैनिक परामर्श – दाता के रूप में कुर्डिस्तान के गवर्नर के पास करमनशाह पहुँचा। जब रास्ते में इसने हमादान के त्रैभाषिक शिलालेखों के विषय में सुना तो उनको देखने माउण्ट एलवेन्द पर चला गया तथा सर्वप्रथम उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा अध्ययन करने बैठ गया। तत्पश्चात् इसने बेहिस्तून शिलालेख के विषय में सुना, जो करमनशाह से ३५ किलो मीटर दूर था। अब जब भी उसे अवसर मिलता वह उसी ओर अपने घोड़े पर निकल जाता। अभी तक न तो इसको ग्रोटेफ़ेण्ड के निष्कर्षों का पता था और न ही बर्नोफ़ के निष्कर्ष प्रकाशित हुये थे। १८३६ में इसने गंजे – नामा के तीन नाम — विश्ता – स्पीज़ (Hystaspes), डैरियस तथा जरक्सीज़ – पढ़ लिये तथा १३ अक्षर पहचान लिये। अपने इन निष्कर्षों को १८३७ के रॉयल एशियाटिक सोसायटी के तत्कालीन उप – सचिव एडविन नॉरिस (Edwin Norris, १७९५ – १८७२) के पास भेज दिये। अब इसने समझ लिया कि यह लिपि वर्णात्मक है।

इसी बीच रॉलिन्सन ने अपनी जान पर खेलकर बेहिस्तून के शिलालेख के प्राचीन पर्शियन तथा सूसियन कॉलमों की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं और उन पर अपना शोध आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप उसने १८३८ के अन्त तक पाँच नाम तथा १८ वर्ण पहचान लिये। यह नाम थे :—(फ० सं० – १३२)[1]।

---

1. Cleater, P. E. : Lost Languages. p. – 87.

यूनानी भाषा	पर्शियन भाषा
१. अर्सामीज़ (Arsames)	अरशाम
२. आर्यरमेनीज़ (Aryaramnes)	अर्यारमन
३. पर्शिया (Persia)	पारसिय
४. अख़्मेनीज़ (Achaemenes)	ह़ख़ामनिशे
५. तेस्पीज़ (Teispes)	चिशपिश
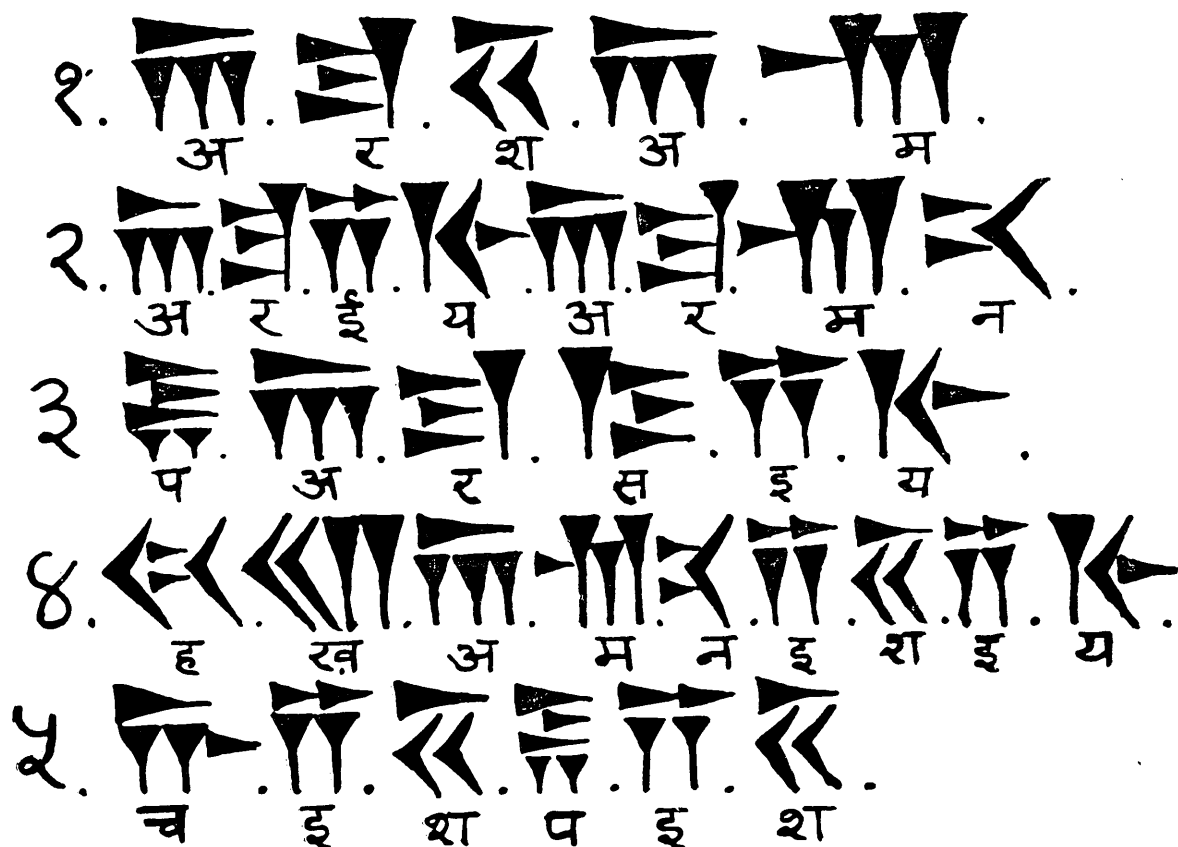
फलक संख्या – १३२

इस प्रकार रॉलिन्सन ने शोध करके अपना यह निबन्ध भी एडविन नॉरिस के पास लन्दन भेज दिया। इस निबन्ध को जब निरीक्षणार्थ नॉरिस ने पेरिस भेजा तो इसका बड़ा स्वागत हुआ और रॉलिन्सन को फ्रेंच एशियाटिक सोसायटी का एक सम्मानित अवैतनिक सदस्य बना लिया गया। इसका परिचय बर्नोफ़, लासेन आदि विद्वानों से कराया गया जिनके सामूहिक सहयोग से प्राचीन पर्शियन की एक वर्णावली बना ली गई (फ० सं० – १३३)।

१८३९ में अफ़ग़ान युद्ध आरम्भ होने के कारण रॉलिन्सन को कन्धार भेज दिया गया। वहाँ उसने एक मुठभेड़ में भाग लेकर विजय प्राप्त की। जब कर्नल टेलर (Col. Taylor) जो ब्रिटेन का राजनैतिक प्रतिनिधि था १८४३ में वापस इंगलैण्ड चला गया, तो रॉलिन्सन को पुनः १८४४ में राजनैतिक प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त करके पर्शिया भेज दिया गया। उसने बचे हुये अभिलेख के पर्शियन तथा एलामाइट के पाठों की

पर्शिया की कीलाकार वर्णावली -- ई० पू० छठी श०

	अ	ई	ऊ		अ	ई	ऊ	निर्धारक
अ इ उ				न				
ब				प				१
च				र				
क़				स				२
द				श				३
फ़				त				
ग				थ				४
ह				व				
ख़				य				५
ज				ज़				
क								
ल								
म								

द अ र य व ऊ श

दरपूश = डैरियस

फलक संख्या – १३३

भी प्रतिलिपियाँ तैयार कर लीं। किन किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा इसका पूर्ण विवरण अनेक पुस्तकों में प्रकाशित हुआ। अब केवल बेबीलोनियन लिपि का पाठ शेष बच गया जिसकी प्रतिलिपि तैयार करना असम्भव था। क्योंकि उस स्थान पर सीढ़ी आदि द्वारा पहुँचना सरल नहीं था। सौभाग्य से रॉलिन्सन को एक फ़ुर्तीला कुर्दी नवयुवक मिल गया जिसने अपनी जान पर खेल कर उस अभिलेख की प्रतिलिपियाँ भी तैयार करवा दीं। १८४७ में रॉलिन्सन ने हेब्रू तथा सिरियाई भाषायें भी सीख लीं।

अब बेहिस्तून के शिलालेख की तीनों भाषाओं — प्राचीन फ़ारसी, नव एलामाइट (सूसियन) तथा नव बेबीलोनियन (अक्कादियन) — की कीलाकार लिपि की प्रतिलिपियाँ तैयार थीं। इसमें से प्राचीन फ़ारसी तो रॉलिन्सन ने पूर्णतया पढ़ ली थी। एलामाइट को पढ़ने का भार एडविन नॉरिस ने ले लिया था। रॉलिन्सन पुनः अक्कादियन पाठ का रहस्योद्घाटन करने बैठ गया।

(नव एलामाइट का रहस्योद्घाटन) : इस भाषा में कीलाकार लिपि के १११ चिह्नों की वर्णावली थी। इसमें कोई शब्दों को पृथक् करने वाला चिह्न नहीं था। इसको पढ़ने में सर्वप्रथम वेस्टरगार्ड ने १८४३ में नक़शे – रुस्तम के अभिलेखों से इस भाषा की कुछ प्रतिलिपियाँ तैयार कीं और उनको भले प्रकार समझा। उसने कुछ नाम पढ़े तथा एक लघुपाठ का अनुवाद भी किया। भाषा के दृष्टिकोण से एलामाइट एक विलगित भाषा है। किसी अन्य भाषा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। तत्पश्चात् नॉरिस ने १८५४ में इसका पूर्णतया रहस्योद्घाटन कर दिया (फ० सं० – १४०)।

अक्कादियन भाषा का रहस्योद्घाटन : अब त्रैभाषिक बेहिस्तून के शिलालेख में केवल यही भाषा शेष रह गई। जिसका भार पुनः रॉलिन्सन पर आया। जब शोध कार्य के भँवर में रॉलिन्सन फँसकर हताश हो गया और यह कार्य छोड़ने का विचार करने लगा तब इसका परिचय आयरलैण्ड निवासी एडवर्ड हिन्क्स (Edward Hincks, १७९२ – १८६६) से हो गया जो १८४६ – ५० के मध्य अपने अध्ययन कक्ष में बैठे – बैठे युद्ध करता रहा। अन्त में उसको कुंजी मिल ही गई और उसने घोषित किया कि अक्कादियन (नव – बेबीलोनियन) भाषा में प्राचीन फ़ारसी की तरह पृथक् व्यंजन चिह्न नहीं हैं। उसने यह भी सिद्ध किया कि चिह्न या तो स्वर + व्यंजन है या व्यंजन + स्वर है अर्थात् यह अक्षरात्मक (Syllabic) भाषा है। इस भाषा में निम्नलिखित कालानुसार परिवर्तन आते गये :—

— सुमेरियन — लगभग ३००० ई० पू०

— प्राचीन अक्कादियन – लगभग २५०० ई० पू०

— मध्य एलामाइट, प्राचीन बेबीलोनियन, प्राचीन असीरियन } लगभग २००० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक

— मध्य बेबीलोनियन, मध्य असीरियन } लगभग १५०० से १००० ई० पू० तक

— नव – बेबीलोनियन, नव – असीरियन } लगभग १००० से ५०० ई० पू० तक

— अख़मेनियन एलामाइट, विलम्बित बेबीलोनियन } ५०० से २०० ई० पू० तक

इसमें भी नव – बेबीलोनियन ज्ञाता प्राचीन बेबीलोनियन को पढ़ नहीं सकता था। अक्कादी लोगों ने, जो सेमाइट थे, कीलाकार का आविष्कार नहीं किया अपितु उनको वह लिपि सुमेरी लोगों से, जो निर्धारक चिह्नों का बहुतायत से प्रयोग करते थे, बनी बनाई मिली। इसी कारण अक्कादी, सुमेरी भाषा को अपनी शास्त्रीय भाषा मानते हैं।

उधर स्वीडन में एक अन्य विद्वान् इसीदर लोवेनस्टर्न (Isidor Löwenstern) ने, जो अक्कादी भाषा पर अपना शोध कर रहा था, १८४५ में घोषित किया कि अक्कादी के कीलाकार – लिपि चिह्न पृथक व्यंजन नहीं हैं। उनमें तीन प्रकार के चिह्न पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ : व्यंजन + स्वर, स्वर + व्यंजन, व्यंजन + स्वर + व्यंजन। उसने यह भी घोषित किया कि एक चिह्न बहु – ध्वनीय (Poly phonous) हो सकता है तथा वही चिह्न निर्धारक भी हो सकता है (फ० सं० – १३४)।

बहु – ध्वनीय चिह्न

फलक संख्या – १३४
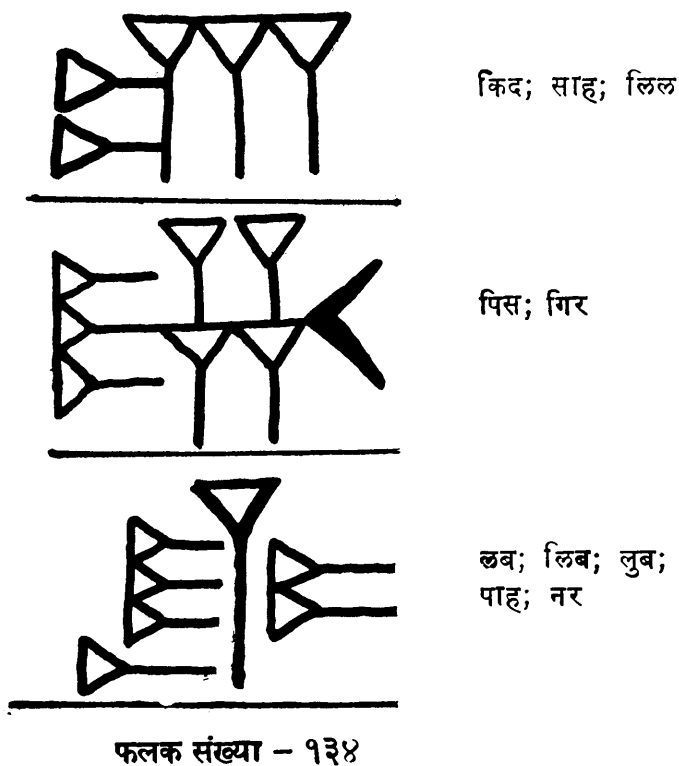
यह बहु – ध्वनीय पद्धति एक पाठक को अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध होती थी। इसमें ३०० चिह्न निर्धारक (Determinatives) तथा भावात्मक (Ideographic) थे। किसी भी पाठक को यह समझने में देर लगती थी कि अमुक चिह्न निर्धारक है या बहु – ध्वनीय है। यह भाषा इतनी अस्पष्ट होने पर भी ई० पू० की पन्द्रहवीं शताब्दी में समस्त पश्चिम – एशिया की एक राजनयिक भाषा हो गई। जब इस प्रकार की अस्पष्टता स्वयं प्राचीन बेबीलोनी तथा असीरियाई विद्वानों को कष्टदायक सिद्ध होने लगी तब उन्होंने मिस्री लिपि की भाँति अपनी भाषा में भी निर्धारक चिह्नों तथा अक्षरात्मक चिह्नों 'फ० सं० – १४१ नीचे का भाग' को पृथक कर दिया और एक शब्द के साथ दोनों का प्रयोग आरम्भ कर दिया, जैसे मातू (देश) – मा+तू; अन (देवता) — अ+नू; अलू (नगर) आदि। (फ० सं० – १३६ ऊपर का भाग)।

हिन्कृस ने कुछ निर्धारक चिह्नों को पहचाना जो प्राचीन सुमेरी तथा नवअसीरियाई भाषाओं में प्रथानुसार प्रयोग किये जाते थे[1]। उदाहरणार्थ :—(फ० सं० – १३७)।

- 'लू' का प्रयोग मनुष्यों तथा इनके आजीविकाओं के नामों के पूर्व किया जाता था।
- 'गिश' तथा 'ऊ' का प्रयोग वृक्षों तथा लकड़ी के उपकरणों के नामों के पूर्व किया जाता था।
- 'दुग' का प्रयोग मिट्टी के बर्तनों के नामों के पूर्व किया जाता था।
- 'तुग' का प्रयोग पोशाकों के नामों के पूर्व किया जाता था।
- 'की' का प्रयोग देश तथा स्थानों के नामों के पूर्व किया जाता था।
- 'ख़' का प्रयोग मछलियों के नामों के पूर्व किया जाता था।

भावात्मक, निर्धारक, अक्षरात्मक चिह्न
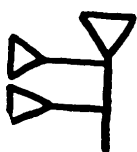
भावात्मक : है तो 'ईसू' कहेंगे अर्थ — 'लकड़ी'।

निर्धारक : है तो वृक्ष तथा लकड़ी की बनी वस्तुओं के पूर्व प्रयोग किया जायेगा।

अक्षरात्मक : है तो ध्वनि होगी 'इज़'

भावात्मक : है तो 'मातू' कहेंगे। अर्थ – 'देश'।

निर्धारक : है तो 'शादू' कहेंगे तथा देश के नाम के पूर्व प्रयोग किया जायेगा।

अक्षरात्मक : है तो ध्वनि होगी 'कुर, मात, शात, नात, गीन'

फलक संख्या – १३५

जब रॉलिन्सन ने हिन्क्स के निष्कर्षों का अध्ययन कर लिया तब उसने अक्कादी लिपि तथा प्राचीन फ़ारसी लिपि के नामों को तुलानात्मक दृष्टि से परीक्षण करके अपना शोध पुनः आरम्भ किया। शनैः शनैः वह सफलता के मार्ग पर अब अग्रसर होने लगा। १८५० तक उसने बेहिस्तून के शिलालेख के अक्कादियन (नव – बेबीलोनियन) पाठ के १५० वर्णों को तथा ५०० शब्दों को पढ़ लिया। अब यह हिन्क्स का अभिन्न मित्र बन गया। तत्पश्चात् उसने असीरियाई भाषा तथा कीलाकार लिपि में अंकित एक चीनी–मिट्टी के १५$\frac{3}{8}$ इञ्च ऊँचा सिलेण्डर, जो तिगलत पिलेसर प्रथम (असीरिया का एक नृप) के काल का था, को भी पढ़ लिया। जब रॉलिन्सन ने अपने शोध कार्य के निष्कर्षों को नॉरिस के पास लन्दन भेजा तो उसका निरीक्षण किया गया। तदोपरान्त कुछ विद्वान् उससे सहमत तथा कुछ असहमत हो गये। अब यह एक विवादस्पद समस्या बन गई।

उनमें से एक गणितज्ञ विलियम हेन्री फ़ाक्स टैलबाट (William Henry Fox Talbot, १८०० – १८७७) ने नॉरिस को प्रेरित किया कि कीलाकार लिपि के रहस्योद्घाटन करने वाले कुछ विद्वानों को रॉयल एशियाटिक सोसायटी की ओर से आमन्त्रित करें और उनको कीलाकार का एक तिगलत पिलेसर प्रथम वाली बहु – कोणिक पाटिया का पाठ पढ़ने के लिए दिया जाये। तदनन्तर वे विद्वान् अपने अपने निष्कर्षों को बन्द करके भेद दें। इससे एक तुलनात्मक निरीक्षण हो जायेगा और सत्यता का पता लग जायेगा। नॉरिस इस बात से सहमत हो गया और चार विद्वान् — टैलबाट, ओपर्ट, हिन्क्स तथा रॉलिन्सन – इस परीक्षा में सम्मिलित हुए।
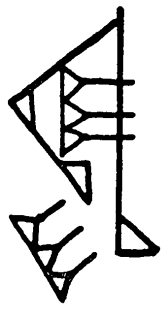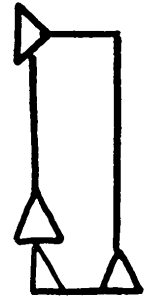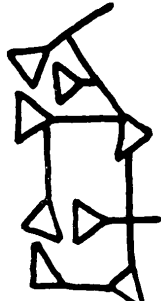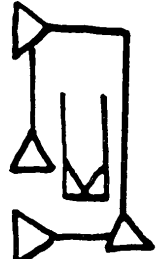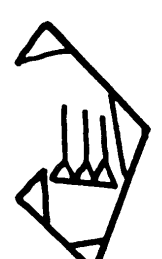
1. Delitzsch, F. : Assyrisehe lesestücke (1912) – p. 109.

असीरियाई -- बेबीलोनी लिपि के निर्धारक -- अक्षरात्मक चिह्न
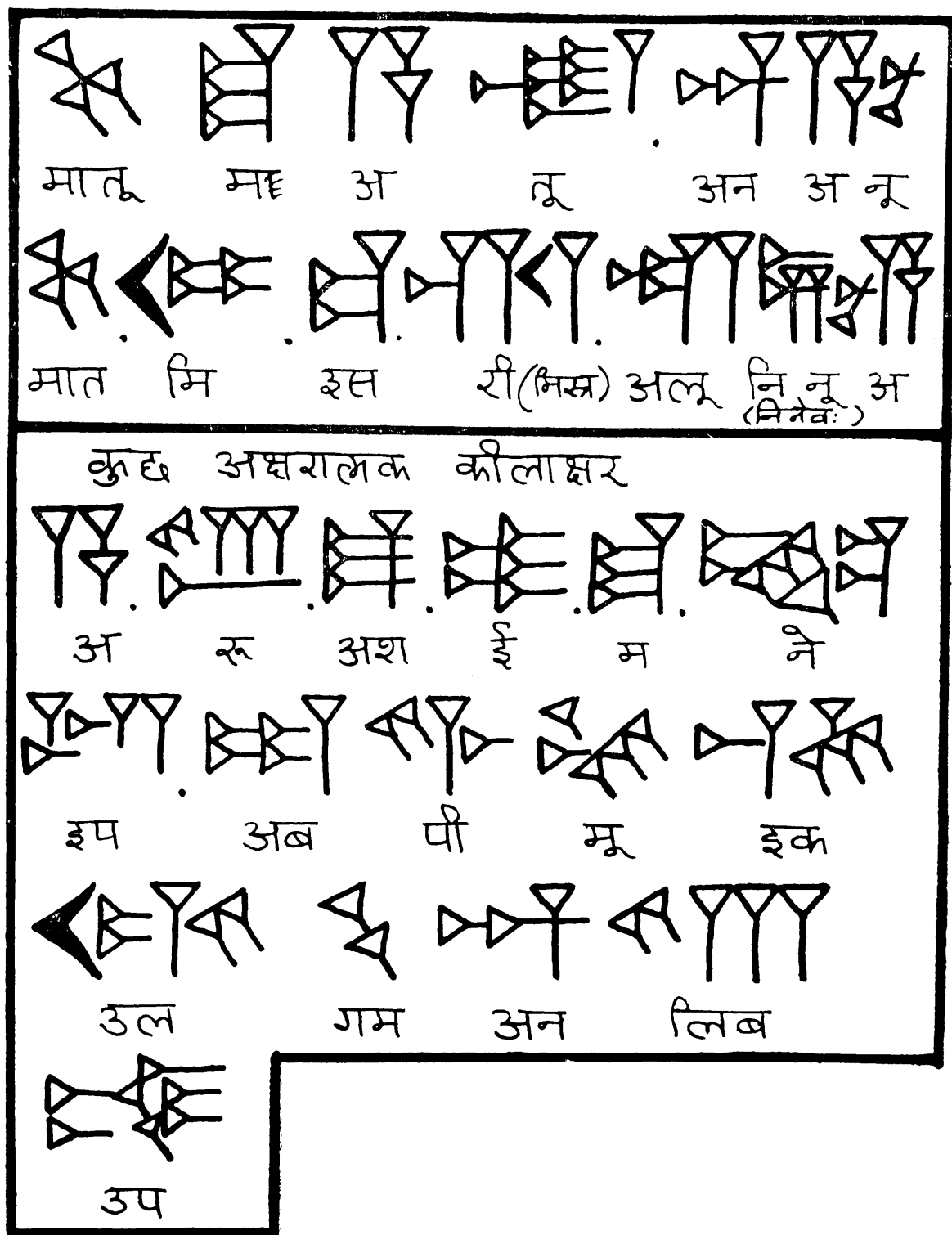
फलक संख्या – १३६

प्राचीन सुमेर तथा नव -- असीरियाई लिपियाँ

निर्धारक चिन्ह सुमेरी			
नव-असीरियाई			
ध्वनि अर्थ	लू - मनुष्य	गिश - वृक्ष या उ - पौधा	दुग - मिट्टी के बर्तन
निर्धारक चिन्ह सुमेरी			
नव-असीरियाई			
ध्वनि अर्थ	तुग - पोशाक	की - स्थान	ख़ - मछली

फलक संख्या – १३७

जब सबके निष्कर्षों का निरीक्षण किया गया तो अधिक अन्तर नहीं पाया गया।

इस प्रकार उपर्युक्त विद्वानों के अथक परिश्रम, निष्ठा तथा त्यागने कीलाकार लिपि में अंकित पूरे पश्चिमी एशियाई देशों का इतिहास, गणित, विज्ञान, साहित्य, धार्मिक तथा पौराणिक ग्रन्थ आदि को, जो सहस्त्रों वर्ष भूमिगत पड़े रहे, संसार के शिक्षार्थियों के समक्ष प्रस्तुत कर दिये। इससे न केवल वर्तमान पीढ़ी का अपितु भावी पीढ़ी का भी ज्ञानवर्धन होगा। तत्कालीन विद्वानों ने रालिन्सन की भूरि भूरि प्रशंसा की तथा उसको 'सर' (नाइटहुड) की पदवी से विभूषित किया गया और उसको 'कीलाकार लिपि का पिता' भी घोषित कर दिया।

बेहिस्तून शिलालेख का आंशिक पाठ

यह पाठ प्राचीन पर्शियन के प्रथम कालम का प्रथम वाक्य है जिसको चार प्रकार से निम्नलिखित पंक्तियों में दिया गया है :—(फ० सं० – १३८)।

१. जिस प्रकार अंकित है : "अदम

द अ र य व ऊश	ख़ श अ य थ ई य वज़रक
ख़ श अ य थ ई य	ख़ श अ य थ ई य अ नअम
ख़ श अ य थ ई य	प अ र स ई य ख़ श अयथईय
द ह य ऊ न अ म	व श त अ स प ह य अ पतर
अ र श अ म ह य अ	न प अ ह ख़ अ म न ई श ई य"

२. इस प्रकार पढ़ा जायेगा :

"अदम दारयवूश ख़शायथीय वज़रक ख़शायथीय ख़शायथीयानाम ख़शायथीय पारसईय ख़शायथीय दहयूनाम विश्तास्पहया पतर अर्शामहया नपा हख़ानीशीय"

३. हिन्दी में इस प्रकार अनुवाद होगा : "मैं शक्तिशाली नरेश, नरेशों का नरेश, देशों का नरेश, पर्शिया का नरेश, विश्तास्प का पुत्र, अर्शाम का पौत्र, हख़मनी वंश का डैरियस हूँ।"

फलक संख्या – १३८

व ज़ र क

वज़रक — शक्तिशाली — वज्रकः

ख़ शा अ य थ ई य

ख़शायथीय — नृप — क्षत्रियः

ख़ शा अ य थ ई य

अ न अ म

ख़शायथीयानाम— नृपों का — क्षत्रियाणां

ख़ शा अ य थ ई य

ख़शायथीय — नृप — क्षत्रियः

प अ र स ई य

पारसईय — पर्शिया (फ़ारस) पार्से

ख़ शा अ य थ ई य

खसायथीय — नृप — क्षत्रियः

द ह य ऊ न अ म

दहयूनाम — देशों का — दस्युनां

फलक संख्या – १३८ क

व श त अ स प ह य अ

विश्तास्पहया — विश्तास्प का — विश्तास्पस्य

प त र पतर — पुत्र — पुत्रः

अ र श अ म ह य अ

अर्शामिहया — अर्शाम का — अर्शामस्य

न प अ नपा — पौत्र — नप्ता

ह ख़ अ म न ई श ई य

हख़ामनीशीय — हख़मनी वंश का — हखामनिशियः

फलक संख्या – १३८ ख

'फ० सं० – १३८' पर प्राचीन पर्शियन कीलाकार लिपि में दिये हुए वाक्य का संस्कृत[1] में भी अनुवाद किया गया है जिसको इस प्रकार पढ़ा जायेगा, "अहं दारयवहु क्षत्रियः वज्रकः क्षत्रियः क्षत्रियाणां क्षत्रियः पार्सें क्षत्रियः दस्युनां विश्तास्पस्य पुत्रः अर्शामस्य नप्ता हखामनिशियः"।

उपर्युक्त अनुवाद अंग्रेज़ी के अनुवाद से, जो बूथ ने अपनी पुस्तक[2] में दिया है, लिये गये हैं।

---

1. संस्कृत का शाब्दिक अनुवाद शापुरजी कावसजी होडीवाला (नाव वाला) ने अपनी पुस्तक 'Cuneiform Inscriptions Transcribed into Sanskrit and Avesta' (Bombay – 1931), page – 2 में दिया है।
2. Booth, A. J. : The Discovery and Decipherment of the Trilingual Cuneiform Inscriptions (London – 1902), page – 149.
   "I am Dariius, the mighty King of Kings, King of the Countries, King of Persia, Son of Hystaspes, grandson of Arsames, the Achaemenes.........."

बेहिस्तून शिलालेख का सूसियन पाठ : इसका अनुवाद एडविन नॉरिस ने किया है। इसका लिप्यन्तरण है :— (फ० सं० – १३९)।

"(म) ऊ (म) तरियमऊश (म) जुनकुक इरशर्र (म) जुनकुक (म) जुनकुक – इप – इन्न (म) जुनकुक (निर्धारक) पर्शिन – इक्क (म) जुनकुक (म) इरशम (म) रुह्शकरी (म) अकमन्नीशीय।"

इसका हिन्दी में अनुवाद :—

"मैं तरियमूश (डैरियस) शक्तिशाली नृप, नृपों का नृप, पर्शिन (पर्शिया) का नृप, देशों का नृप, इरशम (अर्शाम) का पौत्र, अकमन्नीशीय (हखामनीय) वंश का हूँ।"

बेहिस्तून शिलालेख का बेबीलोनी पाठ : इसका अनुवाद रॉलिन्सन ने किया है। इसका लिप्यन्तरण है :— (फ० सं० – १४०)।

"अनकू (म) दरियमुश शर्रुड रबू शर माताती (म) अखमनी श शर [?] शर्रानी (बहु – वचन) (अमेलू) परसा – अ शर (मातू) परसू"।

इसका हिन्दी अनुवाद[1] है :—

"मैं डेरियस, महाराजा, देशों का राजा, अखमेनी वंशीय, नृपों का नृप, पर्शियन, पर्शिया का नृप हूँ।"

बेहिस्तून के शिलालेख की त्रैभाषिक कीलाकार लिपियों (प्राचीन फ़ारसी, सूसियन अथवा नव एलामाइट, नव बेबीलोनी अथवा अक्कादियन) का उद्भव किस प्रकार हुआ ? यह विषय आज तक विवादा – स्पद है जिसमें से नव बेबीलोनी के विषय में तो निश्चित हो चुका है कि इसका उद्भव तथा विकास प्राचीन सुमेरी कीलाकार से प्राचीन अक्कादी अथवा प्राचीन बेबीलोनी का विकास तथा सरलीकरण हुआ तत्पश्चात् नव – बेबीलोनी बनी। सूसियन लिपि का विकास एक पृथक् राह से आद्य एलामाइट से हुआ। इसका सम्बन्ध किसी अन्य लिपि से नहीं रहा। अब सबसे अधिक विवादास्पद विषय प्राचीन फ़ारसी लिपि का रह गया। जिस प्रकार भारत में ब्राह्मी लिपि के उद्भव के विषय में कोई निश्चयपूर्ण तथ्य सामने नहीं आया इसी प्रकार प्राचीन फ़ारसी का, जो दोनों ही अक्षरात्मक तथा वर्णात्मक है, साथ में पांच चिह्न निर्धारक भी हैं, अभी तक निश्चय नहीं हो सका। अनुमान से विद्वान् यही मानते हैं कि इसका उद्भव ई० पू० की छठवीं शताब्दी में हुआ होगा। इसका अवधि काल अत्यन्त कम रहा क्योंकि अख़मेनी वंश के अन्त के साथ इसका भी अन्त हो गया। इसका स्थान शनैः शनैः अरामायक से जन्मी पहलवी ने ले लिया।

पहलवी लिपि

जब सिकन्दर के आक्रमण से अखामेनीय वश का अन्त हो गया, तब उस वंश की लिपि 'प्राचीन – पर्शियन' का भी लोप होना आरम्भ हो गया और उसका स्थान यूनानी भाषा ने ले लिया। परन्तु शनैः शनैः यूनानी शासकों के अत्याचार बढ़ने लगे जिसने क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित कर दी। एक वीर अर्साकीज़ ने

1. अंग्रेजी के अनुवाद से लिया गया हैं —
"I am Darius, the great King, the King of lands, the Achaemenian, the King of Kings, the Persian, the King of Persia." Taken from – E. A. Wallis Budge : Sculp – tures and Inscription of Behistun (1907), page – 159.

बेहिस्तून शिलालेख का सुसियन पाठ
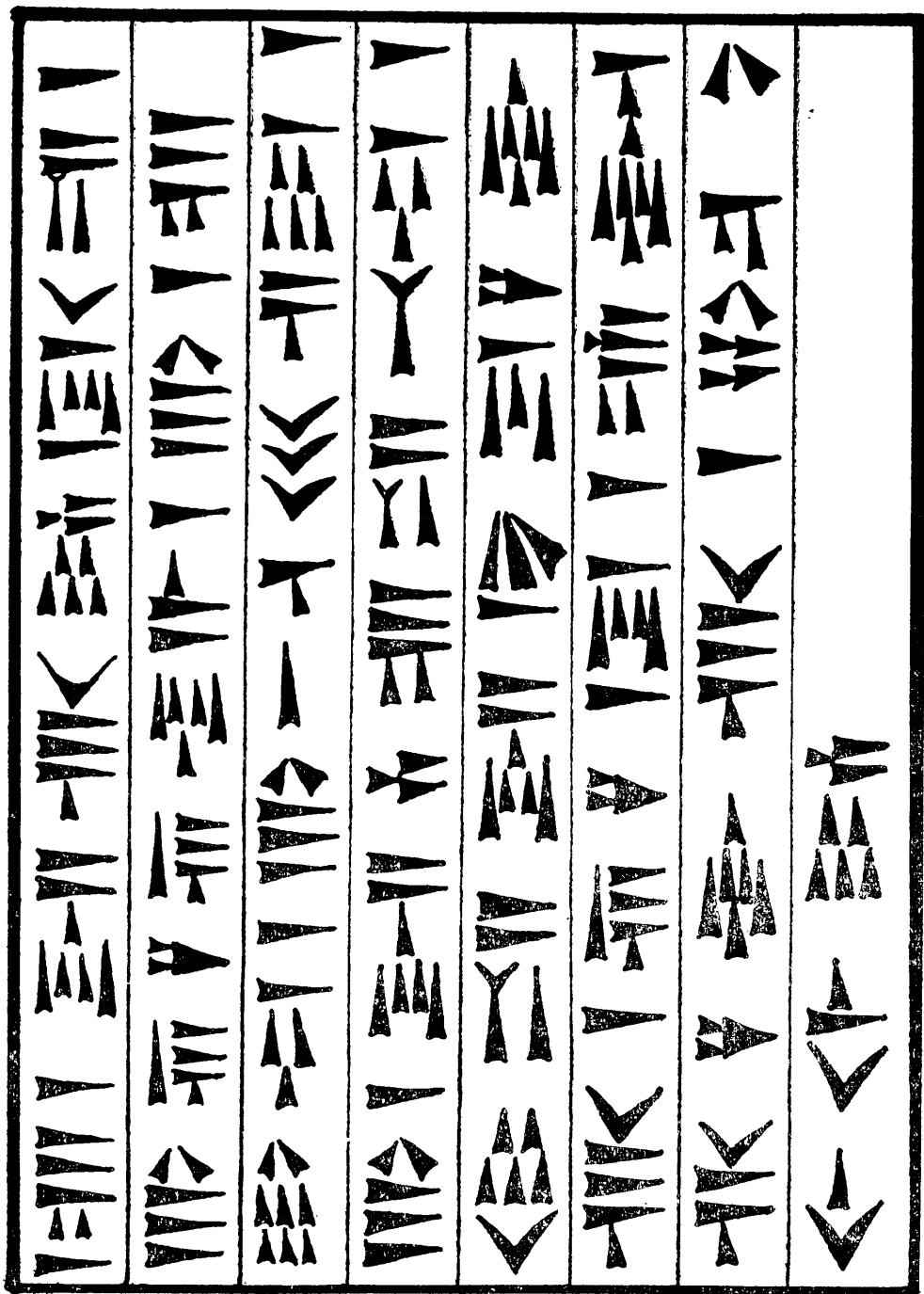
फलक संख्या - १३९

बेहिस्तून शिलालेख का बेबीलोनी पाठ

फलक संख्या – १४०

पर्शिया का राज्य हस्तगत करके अरसासिड वंश की नींव २४७ ई० पू० में डाली। साथ साथ यूनानी भाषा समाप्त कर अरमायक लिपि द्वारा एक नई लिपि का आविष्कार भी किया जिसका नाम पहलवी[1] रखा गया। इसके दो काल माने जाते हैं, पहला अरसाकिड पहलवी (२५० ई० पू० से २५० ई० सन् तक) तथा दूसरा ससानिड पहलवी (२५० ई० सन् से ६५० तक)।

अरसाकिड पहलवी : यह व्यंजनात्मक लिपि है। इसमें स्वर नहीं होते। इसमें बीस अक्षर होते हैं। अरमायक के प्रभाव के कारण दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। इसमें स्वरों का कार्य अलेफ़ (अ, आ) से, 'ज' (इ, ई, ए) से तथा 'व' (उ, ऊ, ओ) से ले लिया जाता है। 'फ० सं० – १४१ प्रथम कॉलम' आरम्भ किया तथा एक वर्णमाला भी प्रस्तुत की। (फ० सं० – १४१)।

ससानिड लिपि : कालानुसार इसमें कुछ परिवर्तन हुए, परन्तु अधिक नहीं। इन दोनों लिपियों[2] के अभिलेख १८४८ से १८५५ तक के उत्खनन कार्य से लगभग एक सहस्र अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। सबसे प्राचीन अभिलेख, जिसका काल ५३ ई० सन् माना गया है, एव्रोमन (कुर्डिस्तान) से तथा इसी शताब्दी का एक अन्य अभिलेख निशा[3] से प्राप्त हुआ। (फ० स० – १४१ द्वितीय कॉलम)।

ससानिड ग्रन्थ लिपि : इस लिपि का प्रयोग केवल हस्त – लिखित ग्रन्थों में किया जाता था। इसका रूप शीघ्रता से लिखने वाली घसीट हो गया। 'फ० सं० – १४१ तृतीय कॉलम'। इन लिपियों का रहस्योद्घाटन[4] सर्वप्रथम दि सेसी तथा अन्द्रियास ने तत्पश्चात् लांग पेरियर (Longperier), ओलशान्सेन (Olshansen), टॉमस, मोर्दमान तथा द्रोनिन ने किया।

'अवेस्त' : मध्य – पर्शियन भाषा का प्राचीनतम रूप 'अवेस्तक' से बना जिसके अर्थ सम्भवत: 'आधार' हैं परन्तु मध्यकाल की पर्शियन भाषा में इसको 'ज़न्द' या 'ज़ेन्द' कहते हैं। पश्चिमी विद्वानों ने दोनों शब्दों को मिलाकर 'जेन्द अवेस्त' इस लिपि का नामकरण कर दिया।

अर्देशायर काल (२२६ – २४२ ई०) में ज़ोरोआस्ट्र[5] के धर्म की प्राचीन पुस्तकों की खोज आरम्भ हुई। जहाँ से जो भाग मिले एकत्रित किये गये और फ़ारसी भाषा को एक रूप दिया गया। इस कार्य को शापुर नरेश तृतीय (३१० – ३७९ ई०) के शासन में पूरा किया गया। ग्रीस की भाषा के प्रभाव से इस में और स्वर जोड़े गये। इस प्रकार जेन्द – अवेस्ता एक मिश्रित लिपि लगभग ५२ वर्णों की प्रस्तुत की गई।

१७६२ में ऐन्कुईतिल दुपेरों (Anquetil Duperron) भारत से अवेस्ता का मूल ग्रन्थ पेरिस ले गया जो सात मोहरों में बन्द थी। डेनमार्क निवासी रस्क (मृ० १८३२) और फ्रांस निवासी बर्नाफ (मृ० १८५२) ने सर्वप्रथम इसका अनुवाद किया जो कुछ संतोषजनक नहीं हुआ। फिर अन्य विद्वान् आये और कार्य को सम्पन्न किया। अब केवल अवेस्त धार्मिक पुस्तक का चौथाई भाग सुरक्षित है। अवेस्त लिपि का उद्भव अरमायक से हुआ है। यह खरोष्ठी की तरह लगती है। इस लिपि में ४९ वर्ण होते हैं।[6] (फ० सं०–१४२)।

---

1. 'पहलवी' शब्द की उत्पत्ति 'पार्थियन', 'पार्थवी', 'पहलवीक' शब्दों द्वारा हुई।
2. Ghirsham, R : Iran – Parthians and Sassanians (London – 1962), p. – 156.
3. Jensen, H. : Syn, Symbol and Script (1970), p. – 431.
4. Frye, R. N. : The Heritage of Persia (London – 1962), p. – 177.
5. 'ज़ोरोआस्ट्र' दो शब्दों से — ज़ीरू + इश्तर — बना, जिसके अर्थ हैं 'अस्टेरिया का बीज'। इस शब्द की व्याख्या Journal of Royal Asiatic Society – Vol. XV. (1855), p. – 246 से ली गई है।
6. इस लिपि के वर्ण नीचे लिखी पुस्तक से लिये गये हैं :— Jackson, A. V. W. : The Avestan Alphabets and Its Transcription (1890), p. – 215.

ज़ेन्द – अवेस्ता लिपि

अ आ ये यै ए ऐ ओ औ अं

अः इ ई उ ऊ क ग ख र च ज त

द प फ ट प ब फ़ व ण न न नम म य य

व व र स ज श ष श ज़ ह ख ह्

घ स्त स्च सा

फलक संख्या – १४२

ससानिड पहलवी (ग्रन्थ) तथा ज़ेण्ड – अवेस्त के पाठ 'फ० सं० – १४३' पर उनके लिप्यन्तरण तथा हिन्दी में अर्थ के साथ दिये गये हैं। ऊपर ससानिड[1] का पाठ है :—

"ओहरमज्द पेशम्न दामदहशनीह राव बुत खुताइ उ खुर (पस) म्न दाम दहशनीह खुताइ, सूत – ख़ास्तार उ फ़ज़ानक उ युत – बेश, आस्कारक उ हमेरा ओयनितार उ अफ़ज़ोनिक उ हरविस्प्न – कोरोतार बुत"।

1. अर्थ अंग्रेज़ी के अनुवाद से लिये गये हैं जो हन्स येनसेन की पुस्तक (Syn, Symbol and Script, p. – 431) में इस प्रकार दिये गये हैं :—

"Before the creation Ohrmazd was not a ruler, but after the creation he became ruler, patron, wise, free from suffering, manifest, All – Caring, Benefactor and all Seeing".

ससानिड पह्लवी (ग्रन्थ) तथा ज़ेण्ड -- अवेस्त के पाठ

फलक संख्या – १४३

अर्थ : — (संसार की) उत्पत्ति के पूर्व ओहरमज़्द शासक नहीं था, परन्तु उत्पत्ति के पश्चात् वह शासक, संरक्षक, बुद्धिमान्, कष्टों से स्वतन्त्र, अभिव्यक्त, सर्वपालक, उपकारी तथा सर्वद्रष्टा हो गया।

इसी के नीचे ज़ेण्ड – अवेस्त[1] का पाठ है :—

लिप्यन्तरण :—

"अहमात मनोयुश रारेशयन्ती द्रुगवन्तू मज़्दा स्पेन्ताट नोइट इथाशाउनो कसेडश्चीटना अशाउने काथे अनहट इस्वाचीत हास परोश अको द्रुगवायते"।

अर्थ :—इस पवित्र आत्मा से, अय मज़्द, असत्य (बोलने वाले) जो सच्चे नहीं हैं, दूर हो जायें। जो थोड़ा भी (सत्यवादी) है उसको सत्य विश्वासी के पास विसर्जित करना, जो अधिक (असत्य) रखता है उसको मत के अरि के पास कुव्यवस्थ करना।

पठनीय सामग्री

Arbery, A. J. : Specimens of Arabic And Persian Palaeography (1929).

Bork, F. : Elamisch Studien (1932).

Barton, G. A. : The Origin and Development of Babylonian Writing (1913).

Booth, A. J, : The Discovery and Decipherment of the Trilingual Cuneiform Inscriptions (London – 1902).

Brice, W. C. : The writing System of the Proto – Elamite Account Tablets of Susa (1962).

Budge, E. A. W. : Sculptures and Inscriptions of Behistun (London – 1907).

Cleater, P. E. : Lost Languages (1959).

Gelb, I. J. : A Study of Writing (1952).

Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968).

Jackson, A. V. W. : The Avestan Alphabets And Its Transcription, (1890).

King, L. W. : The Seulptures And Inscriptions of Darius The Great (1952).

Kent, R. : Old Persian (1950).

König, F. W. : Corpus Inscriptionum Elamicarum (Hannover – 1928).

Loftus, W, K. : Travels and Researches in Chaldea and Susiana (1957).

Moorhouse, A. C. : Writing and the Alphabet (1946).

Massey, W. : Origin And Progress of Letters.

Sen, Sukumar : Old Persian Inscriptions of The Achaemenian Emperors.

Thomas, E. : Sassanion Inscriptions (Journal of Royal Asiatic Society – 1868).

□

1. येनसेन की पुस्तक से : "From this holy spirit, O Mazda, the liars fall away; not so truthful. One who has little should be well – disposed to a true believer; One who has much should be ill – disposed to an enemy of the faith."

फ़िनीशिया

इतिहास

फ़िनीशिया (Phoenicia) का शब्द सबसे पहले होमर के दो महाकाव्यों (Illiad & Odyssey – 1000 to 800 B. C.) में फ़िनिक्स (Phoenix) के नाम से दृष्टिगोचर होता है। जिसका अर्थ है 'भूरे व हल्के लालरंग के मनुष्य'। रोम के निवासी इस देशको फ़िनीकेस, प्युनीकस एवं प्युनी (Phoenices, Punicus and Peoni) और ब्रिटेन के निवासी फ़िनीशिया के नाम से सम्बोधित करते थे। यह भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे के उत्तर में स्थित था। यह लोग किस जाति से सम्बन्धित थे अथवा कहाँ से आकर बसे? इन प्रश्नों पर विचार करना केवल पुस्तक के पृष्ठों को अधिक बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई लाभ न होगा। क्योंकि विद्वानों ने इन प्रश्नों पर अपनी कल्पनाओं का सहारा लिया है जिसके कारण वे एकमत नहीं हैं। अब यह सर्वमान्य हो गया है कि यह लोग पर्यटनशील थे तथा सैमिटिक जाति से सम्बन्ध रखते थे जो लगभग ३००० ई० पू० में आकर बस गये, जिसको कनआन कहते थे और निवासियों को कनआनी (Canaanites).

लगभग २२०० से १४०० ई० पू० तक क्रीट के व्यापारी – जलपोत द्वारा समुद्र में फिरा करते थे और अपने व्यापार की उन्नति करते थे। १४०० ई० पू० में क्रीट तथा ११०० ई० पू० माइसीनिया के पतन ने ग्रीस की सामुद्रिक सत्ता का अन्त कर दिया। मिस्र के फेराओ टोटमिस तृतीय (Thothmes III) ने सीरिया की एक बड़ी सेना को मेगिगड्डो के निकट १४७९ ई० पूर्व में परास्त किया तथा सब छोटे-छोटे राज्यों को अपने अधीन कर एवं मिलाकर एक उपनिवेश स्थापित कर लिया।

अब कनआन निवासियों में से एक नये प्रकार की संस्कृति का प्रादुर्भाव आरम्भ हो गया। इसने क्रीट व माइसीनिया की सामुद्रिक शक्ति के पतन से लाभ उठाकर अपनी सामुद्रिक सत्ता इतनी प्रबल बना ली कि ८०० ई० पू० में वह ग्रीस को भी अपने अधीन करने का प्रयास करने लगी। अब इन लोगों को फ़िनीशियन तथा इनके निवास स्थान को फ़िनीशिया कहा जाने लगा। उनके मुख्य नगर – राज्य व नौकाश्रय टायर[1], सीडान[2], बिबलोस[3] एवं युगारिट[4] थे। टायर में एक प्रकार की समुद्री सीप से बैंजनी रंग बनाया जाता था तथा सिडान में कांच के बर्तन बनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त इन नौकाश्रयों से यहाँ की प्रसिद्ध लकड़ी सेडार का भी निर्यात होता था। इन्हीं कारणों से देश की प्रसिद्धि व समृद्धि दिन प्रतिदिन उन्नति के शिखर की ओर पहुँच रही थी।

ई० पू० की तेरहवीं श० में फ़िनीशिया ने अपनी सत्ता का प्रभाव बढ़ाना आरम्भ कर दिया था और ग्यारहवीं से आठवीं श० तक उन्होंने भूमध्य सागर में कई नौकाश्रय स्थापित कर लिये थे। ८१४ ई० पू० में

आधुनिक नाम : — १. सूर; २. सैदा; ३. जेबाइल; ४. रास शमरा।

८वीं श० पश्चात् = फिनीशिया = ई० पू० की ८वीं श० पूर्व
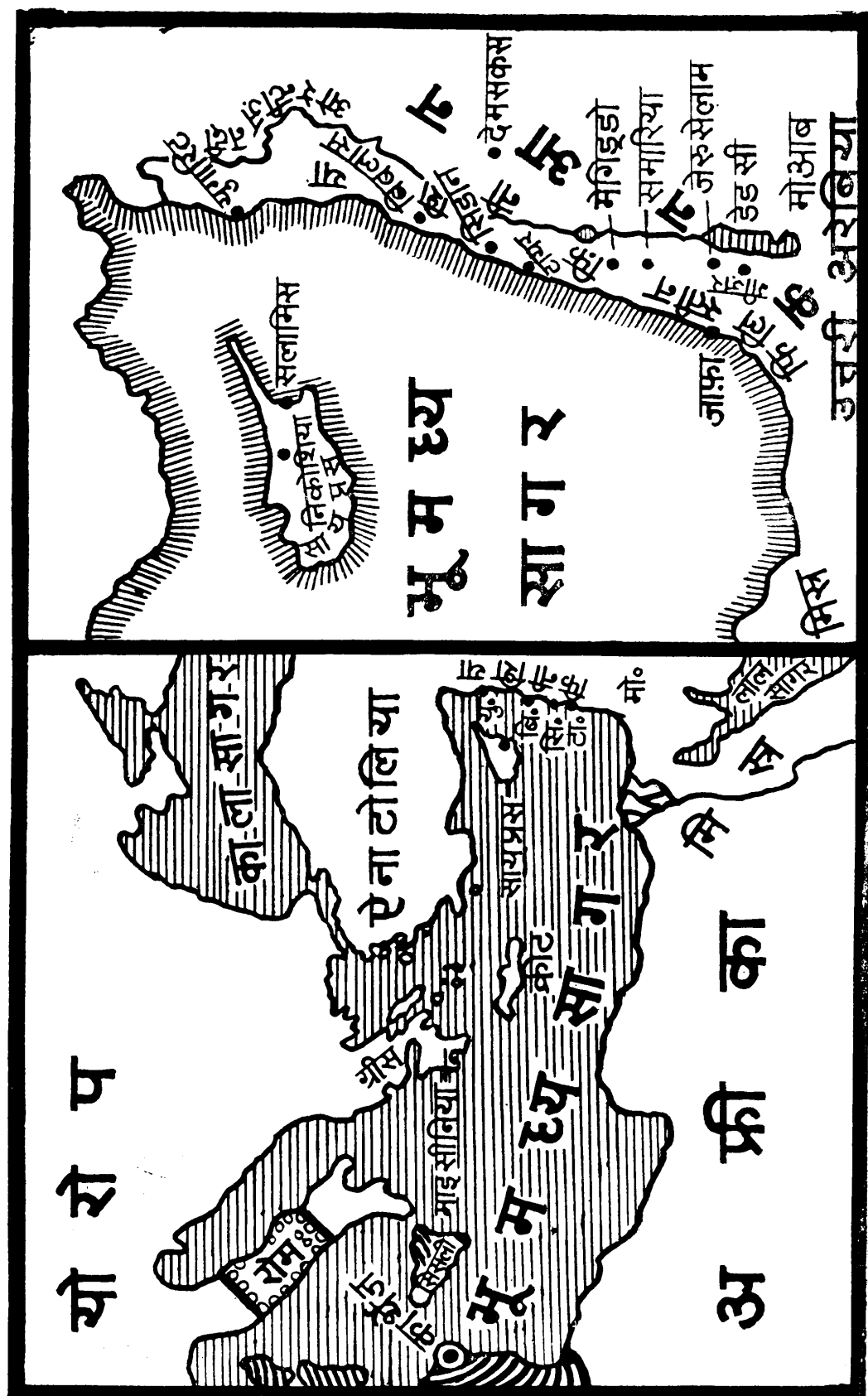
फलक संख्या – १४४

टायर नगर – राज्य कीं रानी ने अफ्रीका के उत्तरी किनारे पर फ़िनीशिया की संस्कृति का एक नया केन्द्र कार्थेज के नाम से स्थापित किया। उधर ग्रीस इधर फ़िनीशिया भूमध्यसागर में अपने अपने व्यापारिक केन्द्र तथा उपनिवेश स्थापित करने में रत थे।

फ़िनीशिया के नगर-राज्यों पर पूरब की ओर से कई आक्रमण हुये। पहला आक्रमण असीरिया – नरेश तिगलत पलेसर तृतीय ने ७३४ ई० पू० में किया। दूसरा सेन्नाख़रिब ने सिडान पर किया तथा उसके राजा लुल्ली को ७०१ ई० पू० में सायप्रस की ओर भाग जाने पर विवश किया। ६७७ में अशुरहेदन ने तथा ६६५ में अशुरबनीपाल ने विध्वंसक आक्रमण किये। असीरिया के पतन से बेबीलोनिया के आक्रमण तक (६२६ से ५७४ ई० पू० तक) फ़िनीशिया ने स्वतन्त्रता की साँस ली परन्तु पुनः बेबीलोन के अधिकार में चला गया। ५३९ ई० पू० में पर्शिया के प्रथम सम्राट सायरस ने बेबीलोन को परास्त कर फ़िनीशिया को भी अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया तथा फ़िनीशिया के साथ सीरिया व सायप्रस को मिलाकर पाँचवाँ प्रान्त बना लिया।

३३२ ई० पू० में सिकन्दर ने आक्रमण करके अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। २८६ से १९७ ई० पू० तक यह मिस्र के टॉलमी वंश के नरेशों के अधीन रहा। इसी बीच फ़िनीशिया निवासी अपने नव – निर्मित केन्द्र कार्थेज में जाकर बसने लगे और अपनी सत्ता व संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास करने लगे।

भूमध्य सागर में अब इनका मुख्य प्रतिद्वन्द्वी ग्रीस न होकर रोम हो गया था क्योंकि रोम भी अपने व्यापारिक केन्द्र तथा उपनिवेश स्थापित करने में सलग्न था। रोम तथा फ़िनीशिया में निरन्तर युद्ध होते रहे जिनमें से तीन बड़े प्रसिद्ध हैं और इतिहास में प्युनिक युद्धों के नाम से ज्ञात हैं, क्योंकि रोम निवासी इनको प्युनी कहा करते थे। पहला युद्ध २६१ से २४१ तक, दूसरा युद्ध २१८ से २०१ तक तथा तीसरा युद्ध १४९ से १४६ ई० पू० तक चलता रहा। तीसरे युद्ध में रोम ने कार्थेज[1] को नष्ट भ्रष्ट करके भूमि – तल के समान कर दिया। १९७ से ८२ ई० पू० तक कार्थेज का क्षेत्र रोमन राज्य के अधीन सीरिया उपनिवेश का एक प्रान्त बना रहा। तत्पश्चात् बैज़ेन्ताइन के अधिकार में और अन्त में मुसलमानों के अधिकार (सातवीं ई०) में आ गया।

इस प्रकार फ़िनीशिया की वह संस्कृति, जिसने लगभग ३५०० वर्ष पूर्व २२ व्यंजनों की वर्णमाला का आविष्कार करके लगभग आधे विश्व को लाभान्वित किया, लिखने को काग़ज़ व रंग प्रदान किया, संसार से लोप हो गयी।

लेखन कला

अब यह बात तो सर्वमान्य होकर निर्धारित हो चुकी है कि फ़िनीशियन लोग सेमिटिक जाति के थे तथा इनकी भाषा भी सेमिटिक थी। संसार के यही सर्वप्रथम लोग थे जिन्होंने ध्वन्यात्मक वर्णों का निर्माण किया और यही वर्ण पाश्चात्य देशों के वर्णों के जन्मदाता बने। ऐसा प्रतीत होता है कि शब्द 'फ़ोन' फ़िनीशिया के (Phoenicia) नाम से निकाला गया क्योंकि इन्हीं लोगों ने सर्वप्रथम फोनोग्राम (Phonogram = Phone ध्वनि; Gramma = Letter अक्षर) अर्थात् ध्वन्यात्मक वर्णों का निर्माण किया।[2]

1. लेखक ने स्वयं जाकर यहाँ की लिपियों का ज्ञान संग्रहालय से प्राप्त किया।
2. लेखक का अपना विचार है।

फ़िनीशिया की लिपि का उद्भव और विकास किस लिपि से हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित लिपि वेत्ताओं तथा पुरातत्त्व वेत्ताओं ने अपने अपने अनुमानों के तथा कुछ ने प्रमाणों के आधारों पर दिया है :—

१. १८५६ में : डी रोशे (de Roughe) ने मिस्र की प्राचीन चित्रात्मक लिपि से।
२. १८७४ में : हेल्वी (Halvey) ने इसका समर्थन किया।
३. १८७७ में : डिके (Deecke) ने असीरिया की लिपि से।
४. १८६७ में : फ्रेड्रिक डी लिश (Frederich de Lieche) ने मिस्र तथा बेबीलोनिया की लिपियों से।
५. १६०० में : पीज़र (Pieser) ने प्राचीन बेबीलोनियन से।
६. १६०४ में : हैनमेल (Hanmel) ने सुमेर के रेखाचित्रों से।
७. १६०५ में : फ्लिन्डर्स पेट्री (Flinders Petrie) ने सिनाइ की उत्खनित चित्रात्मक लिपि से।
८. १६१३ में : यच० शिनीदर (H. Schneider) ने क्रीत के रेखाचित्रों से। (चिह्न – चित्र सुण्डवल ने १९३१ में बनाये)[1]
९. १६१६ में : सेथे (Sethe) ने मिस्र से।
१०. १६१६ में : ए० यच० गार्डिनर (A. H. Gardiner) ने सिनाइ की लिपि से।
११. १६१६ में : सेसी (Sayce) ने किसी व्यक्ति द्वारा जो मिस्र तथा हिटायट लिपियों का ज्ञाता होगा।
१२. १६१८ में : लेमान, हौप्ट, गार्डथौसर, (Lehmann, Haupt, Gardthauser) ने बारहवीं श० में हेब्रू से।
१३. १६२० में : कलिन्क (Kalinka) ने किसी एक व्यक्ति द्वारा।
१४. १६२१ में : यच० बावर (H. Bauer) ने क्रीत के चिह्नों से।
१५ १६२६ में : ई० ग्रिम (E. Grimme) ने क्रीत व सिनाइ के रेखा – चित्रों से।
१६. १९३२ में : लिण्डब्लम (Lindblom) ने सिनाइ से।
१७. १९३६ में : मेंज (Mentz) ने एक्रोफ़ोनिक पद्धति द्वारा मिस्र के चिह्नों से।

विख्यात पुरातत्त्व वेत्ता फिलण्डर्स पेट्री (Flinders Petrie) ने सिनाइ की ताँबे की खानों से कुछ शिलालेख प्राप्त किये। ई० पू० की सत्रहवीं श० में यहाँ एक सेमिटिक जाति के हिक्सास (Hyksos) लोग तथा कनआन निवासी इन्हीं खानों में काम करते थे। उन्होंने मिस्र की चित्रात्मक लिपि के चिह्नों को हेब्रू नाम प्रदान किये। हिक्सास लोग उस काल में मिस्र पर शासन करते थे। सिनाएटिक लिपि के सोलह छोटे छोटे अभिलेखों को, जो उत्खनन से प्राप्त हुये और जिनका काल ई० पू० की अठारहवीं श० निर्धारित किया गया, आधार मान कर ए० यच० गार्डिनर[2] (A. H. Gardiner) ने ऐक्रोफ़ोनिक पद्धति[3] (Acrophonic System) से एक चार्ट बनाया। इसमें मिस्र की लिपि के चित्रों को सेमिटिक नाम दिये गये और उन नामों का पहला अक्षर लेकर एक ध्वन्यात्मक लिपि (Phonographic Script) का रूप दिया। तदनन्तर फ़िनीशिया

---

1. चिन्हों की तुलना का चार्ट फ० सं० – १४५ पर दिया गया है।
2. 'फ० सं० १५२' पर चार्ट दिया गया है जो गार्डिनर की 'The Egyptian Origin of the Semitic Alphabet (Journal of Egyptian Archaeology III – 1916. Fig. 1.) से लिया गया है।
3. इस प्रद्धति में जब चित्रों से अक्षरों का निर्माण किया जाता है तो चित्र का कुछ भाग लेकर तथा उस भाग को एक चिह्न मानकर उसी चित्र के नाम की पहली या अन्तिम ध्वनि को अक्षर मान लिया जाता है।

प्राचीन फ़िनीशियन चिह्नों की तुलना, क्रीट के चिह्नों से सुण्डवल (SUNDWALL) द्वारा १६३१ में

ध्वनि	क्रीट के	प्रा० फ़ि० के	ध्वनि	क्रीट के	प्रा० फ़ि० के
अ			ल		
ब			म		
ग			न		
द			स		
ह			ओ		
व			प		
ज़			श		
ख़			क़		
त			र		
ज			श		
क			त		

फलक संख्या – १४५

फ़िनीशिया लिपि के वर्ण -- गार्डिनर व सेथे द्वारा

मिस्त्र	सिनाइ	नाम	अक्षर	नाम	ध्वनि
		बैल का सिर		अलिफ़	अ
		घर		बेथ	ब
Y		हुक - कील	Y Y	वाव	व
		अस्त्र-हंसिया	I I	ज़ाजिन	ज़
		हाथ		योध	ज
		हथेली		काफ़	क
		बैल का अंकुश		लामेद	ल
		पानी		मीम	म
		मछली सांप		नून नहास	न
		आंख	O	ऐजिन	ओ
		मुंह		पी	प
		सिर	9	रीश	र
		दांत	W	शिन	श
+	+ X	निशान	+ X	ताव	त
		ऊंट की गर्दन		गिमेल	ग
		द्वार		दलेथ	द
			⊗	तेथ	त

फलक संख्या – १४६

की लिपि, जिसको उत्तरी – सेमिटिक – लिपि (North Semitic Script) भी कहते हैं, से उसकी तुलना की जिसकी प्रमाणिकता ठीक सिद्ध हुई।

सेथे (Sethe) ने जो स्वयं गार्डिनर के सिद्धांत पर १९१६ से शोध कार्य कर रहा था, जब गार्डिनर का चार्ट देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने तीन अक्षरों को उस चार्ट में जोड़ दिया। इस सेथे – गार्डिनर सिद्धान्त को लिटमन (Littman), लिज़बार्स्की (Lidzbarski) तथा बिसिंग (Bissing) ने १९२१ में मान्यता प्रदान की परन्तु फिर भी कुछ विद्वानों ने इस सिद्धान्त की समालोचना की।

बिबलास (Byblos) : ई० पू० की पन्द्रहवीं श० में मिस्र देश का एक सूक्ष्म रूप था। तत्कालीन स्थानीय राजा मिस्र के अधीन वैतनिक होते थे। उसी प्रकार का एक वैतनिक राजा अहिराम (अख़िराम) बिबलास के एक नगर – राज्य जेबाल (आ० जबाइल – जिब्राईल से बना है) पर शासन करता था। बिबलास को पहले सीडान के तत्पश्चात् टायर के राजाओं ने पराजित किया। ३३० ई० पू० में सिकन्दर ने परास्त किया। तदोपरांत यह सेल्युकस के वंशजों के अधीन फिर रोम के अधीन तथा ११०३ ई० से धर्म – युद्ध – कर्ताओं (क्रूसेडर्स) के अधीन और अंत में मुसलमानों के अधीन रहा।

बिबलास से एक फ़िनीशियन (उत्तरी सेमिटिक) लिपि का प्राचीनतम अभिलेख प्रकाशित हुआ जो १९२९ में डुनान्ड (Dunand) को पन्द्रहवीं श० का प्राप्त हुआ। दूसरा अभिलेख फ्रांस के पुरातत्ववेत्ता मोन्तेत (Montet) को सीडान से १९२३ में तेरहवीं श० का प्राप्त हुआ। यह अभिलेख अहिराम (अख़िराम) नरेश की समाधि – शिला (Sarcofagus of Lime – Stone) पर अंकित था। यह अभिलेख एक पुस्तक[1] में प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद लिड्ज़बार्सकी (Lidzbarski)[2] ने किया तथा उसी से एक वर्णमाला तैयार की जो 'फ० सं० – १४९' पर पहले कॉलम में दी गई है। इस अभिलेख के कुछ आरम्भिक शब्द 'फ० सं० – १५०' पर दिये गये हैं। अक्षरों के नीचे उनके उच्चारण भी दिये गये हैं। इसको सीधी ओर से पढ़ा जायेगा। हिन्दी लिप्यन्तरण : (बाईं ओर से)।

'अरन ज़ पॉल त बॉल बिन अहिरम मालिक (नरेश) जेबाल लेहरम अबह कश्तह बॉल म' हिन्दी अनुवाद[3] (लेखक ने अंग्रेज़ी के अनुवाद से किया) "यह क़ब्र (समाधि) का पत्थर जेबल के राजा अहिराम के पुत्र एता बॉल ने अपने पिता के लिये यहाँ लगवाया, जहाँ से वह स्वर्ग को गया"।

बिवलास के वर्ण तथा उनके रूप भेद : २००० से १५०० ई० पू० के मध्य १९२३ से अब तक जितने अभिलेख प्राप्त हुये हैं वे सब प्रकाशित[4] हो चुके हैं। यह वर्णमाला[5] 'फ० सं० – १४७' जिसमें अनेक रूप – भेद दिये गये हैं पन्द्रहवीं श० के अभिलेख से लिये गये हैं। इस अभिलेख को धोरमे ने पढ़ कर इसका

1. Diringer, D, : 'Problems of the Present Day on the Origin of the Phoenician Alphabet' – Journal of World History IV/1 (1957), p. – 40.
2. Lidzbarski : Oriental Literary Zeitung No. 28 (1925), p. – 129.
3. Torrey, A. : Journal of American Oriental Society – No. 45 (1925), p. – 269.
   Dussaud : Journal 'Syria' No. V. (1924), P. – 135.
   "This Sareophagus (was) made (by) Eth. Baal, son of Aḥiram, king of Gebal, for Aḥiram his father, here did he lay him down for eternity...............".
4. 'Byblia Grammata' (Beirut – 1945), p. – 78 पर प्रकाशित हुए।
5. वर्णमाला तथा रूप भेद धोरमे द्वारा तैयार किये गये।

बिबलास का एक लघु अभिलेख

ल . त प त ह् . श ह्र न . लल . र ब क

. ल ज़ र प ह् . न श ब . ज त न ब

. ज त ह् . ह् त प

फलक संख्या – १४८

लिप्यंतरण, तथा अनुवाद भी किया जो एक पाक्षिक[1] में डुनान्ड द्वारा प्रकाशित हुआ। यह अभिलेख 'फ० सं० – १४८' पर दिया गया है। इसका अंग्रेज़ी भाषा का अनुवाद येनसेन की पुस्तक[2] से लिया गया है। उसका हिन्दी अनुवाद[3] निम्नलिखित है :

'लेल' ने कहा 'कांसे की (कलाकृति) टोपेथ (मन्दिर का पिछला कक्ष) में मैंने बनाई है तथा लोह – लेखनी से (उस पर) उत्कीर्ण किया है'।

यह लिपि अन्तर्वर्तीय काल की मानी जाती है जिस काल में फ़िनीशिया लिपि का निर्माण हो रहा था। ई० पू० की चौदहवीं श० के अंत में फ़िनीशिया की लिपि में पर्याप्त परिपक्वता आ चुकी थी। इसमें केवल २० अक्षर[4] हैं। इसके पढ़ने की दिशा सीधी ओर से आरम्भ होती है।

1. 'Syria' XXV (1948), p. – 201.
2. 'Syn, Symbol and Script' (1970), p. – 275.
3. लेखक ने स्वयं हिन्दी – अनुवाद किया है।
   English Version : 'Thus says 'Lel', 'The Bronze of The Topheth (temple ante-room) did I fashion; with iron stylus I engraved'.
4. Sobelman, H. : 'The Proto – Byblian Inscriptions – A Fresh Approach' – Journal of Semitic Studies – VI (1961), p. – 226.

फ़िनीशियन लिपि के कालानुसार रूप

ध्वनि	प्राचीन १२०० ई०पू०	मोआबाइट ९०० ई०पू०	मध्यकालीन ५०० ई०पू०	ध्वनि	प्राचीन १२०० ई०पू०	मोआबाइट ९०० ई०पू०	मध्यकालीन ५०० ई०पू०
अ	K	K	K	ल	ل	ل	ہ ہ
ब	9	∇	9	म	५	५	५ ५ ५
ग	٨	٨	٨	न	५	५	५ ५ ५
द	◁	△	△ ◁	स	≢	≢	≢ ≢
ह	ǀ∃	∃	∃	ऑ	O	O	O O
व	Y	Y	Կ 7 T Կ	प	)	)	/
ज़	I	I	Z H	स		ᛘ	ᛘ ᛘ ǀ
ख़	∃	H	∃ ∽	क़		Φ	Φ Φ
त	⊕	⊗	⊕ ⊙	र	9	9	9 9 4
ज	∃	∃	∿ ∿ ∿	श	W	W	W W W
क	Ψ	Ψ	Կ Կ 7	त	+ X	X	r h p

फलक संख्या – १४९

मोआब की लिपि : मोआब और एमोन, लूत (Lot) के दो पुत्र थे जिनके नाम पर दो नगर बसाये गये जो बाद में नगर – राज्य बन गये। ई० पू० की नवीं श० के असीरिया तथा मोआब के अभिलेखों द्वारा यह दोनों नगर इतिहास में दृष्टिगोचर हुए। मोआब का शिलालेख डिबान से १८६८ में प्राप्त हुआ जो अब फ्रांस के प्रसिद्ध लूर्वे संग्रहालय (Louvre Museum) में रखा है। इस शिला पर मोआब के राजा मेशा की इस्रायल के विरुद्ध सैनिक सफलतायें अंकित हैं। इस्रायल की दस जातियों के राजा उमरी ने मोआब के कई उपनगर अपने अधीन कर लिये थे। तत्पश्चात् मेशा ने प्रतिकार के रूप में इस्रायल के एक छोटे नगर एतराथ पर अपना अधिकार कर लिया। मेशा ने अपने देश के मुख्य – देवता केमोश को प्रसन्न करने के लिये पराजित नगर निवासियों की बलि चढ़ाई और आक्रमण करके अपनी सारी पराजित भूमि वापस ले ली। मोआब के शिलालेख की तिथि ८४२ ई० पू० निर्धारित की गई है। इसकी भाषा हेब्रू है तथा लिपि फ़िनिशियन (उत्तरी सेमिटिक) है। इसमें ३४ पंक्तियाँ अंकित हैं जिसमें से 'फ० सं० – १५० क' पर केवल ऊपर की पंक्ति उदाहरणार्थ दी गई है। इसकी वर्णमाला भी 'फ० सं० – १४९' के दूसरे कालम में दे दी गई है जो एक पुस्तक[1] से ली गई है। शिलालेख का अनुवाद[2] लिड्ज़ बार्सकी ने १८९८ में किया।

हिन्दी लिप्यन्तरण : "अनक मेशा बिन केमोशमलिक मालिक मोआब"।

शब्दार्थ : अनक = मैं हूँ ; बिन = सुत ; केमोशमलिक = केमोश भगवान्।

हिन्दी अनुवाद : 'मैं मोआब का राजा, केमोश भगवान का पुत्र, मेशा हूँ।'

मध्य काल की फ़िनीशियन लिपि :—'फ० सं० – १४९' के तीसरे कालम में ई० पू० की पाँचवीं श० के वर्ण दिये गये हैं। यह वर्ण फ़िनीशिया के एक नगर – राज्य सोडान के राजा ईशुमुनाज़ार (ई० पू० की चौथी श०) के समाधि – शिलालेख से लिये गये हैं। इसी प्रकार के वर्ण अबूसिम्बल की विशाल मूर्तियों की जाँघों पर, फ़िनीशिया के भूतक सैनिकों द्वारा, मिस्र के फ़ैरो सामथेक द्वितीय (Psamthek II – 650 – 595 B. C.) के राज्यकाल में उत्कीर्ण किये गये थे। जाघों पर अंकित अभिलेख के कुछ शब्द एक प्रतिदर्श के रूप में फ० सं० १५० ख पर दिये गये हैं, यह अभिलेख एक पुस्तक[3] से लिया गया है जिसका अनुवाद दुसाउद (Dussaud) ने १८७८ में किया :—

हिन्दी अनुवाद : (लेखक द्वारा)

'केशज सूत अबद पाम एक सर्वेक्षक था'।

प्युनिक लिपि : अभी तक पाँच प्रकार की फ़िनीशियन लिपि दी जा चुकी है। इसका छठा तथा अन्तिम रूप, प्युनिक (Punic) लिपि से सम्बोधित किया जाता है। इसका परिवर्तित रूप कार्थेज के उत्खनन से सैकड़ों अभिलेखों व सिक्कों में तथा १८४५ में माल्टा, सार्डीनिया व मार्सेइ से प्राप्त अभिलेखों में मिलता है। इस शाखा का विकास कार्थेज[4] (कार्थेदश्त) में हुआ। आज इस नगर के खण्डहर टियूनिस – टियूनिशिया की राजधानी से लगभग ३५ किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित हैं। यह भू – मध्य – सागर के दक्षिणी तट पर एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र था।

1. Lidzbarski : Handbuch der nordsemitique Epigraphia (1902), p. – 175.
2. Ibid : p. – 103.
   'I am Mesha, king of Moab, son of Kameshmalik...'
3. Corpus Inscriptionum Semiticarum (Paris 1881), p. – 301.
4. लेखक ने अपनी साइकिल – यात्रा में इस स्थान को देखा है तथा इस संस्कृति के अवशेषों का तथा लिपि का, वहाँ के संग्रहालय द्वारा, अध्ययन किया है।

अहिराम का अभिलेख -- तेरहवीं श०

नब लऑब त लऑप ज़ नरअ

हबअ मरहल लबज कलम मरहअ

... मलऑबह त श क
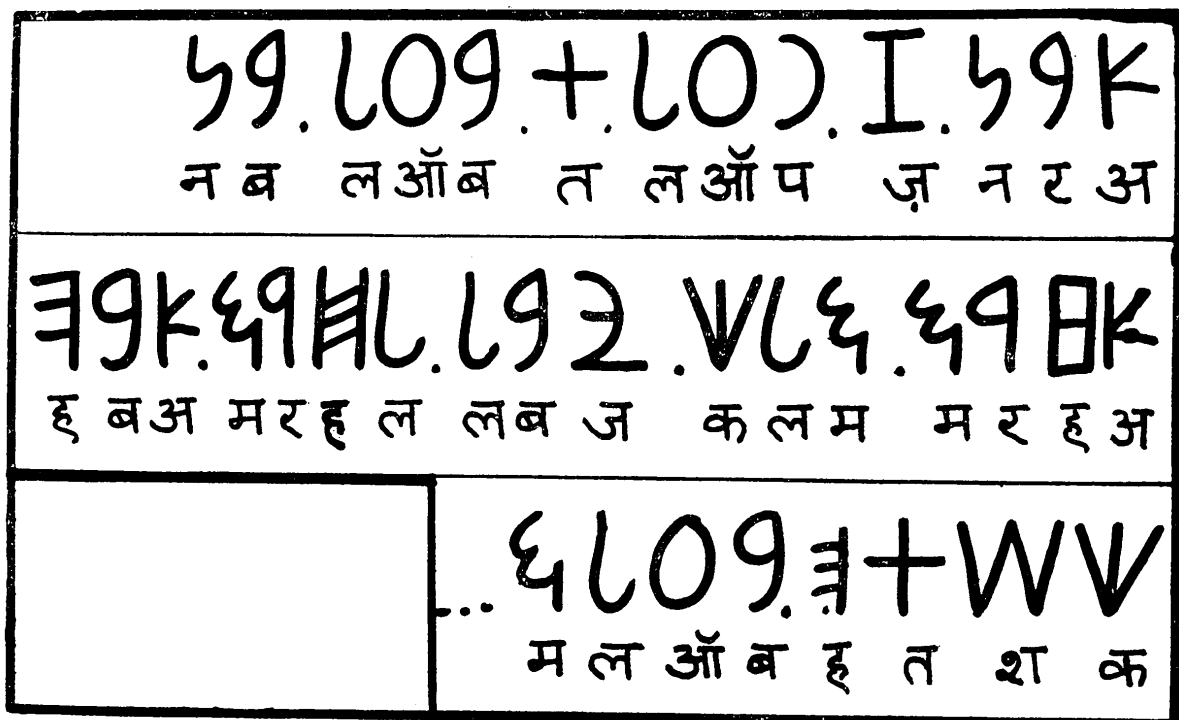
फलक संख्या – १५०

मेशा का अभिलेख -- नवीं श०
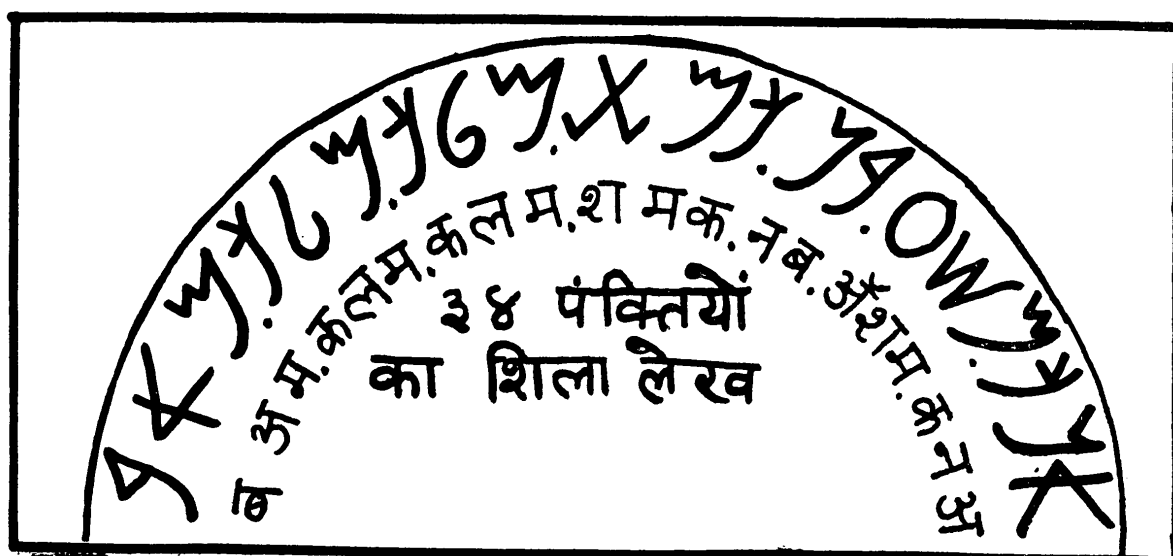
फलक संख्या – १५० क

मध्यकालीन फ़िनीशियन का प्रतिदर्श

म अँप द ब अँ न ब ज शक

स म ह् ल र क क र क ल अँ क अ
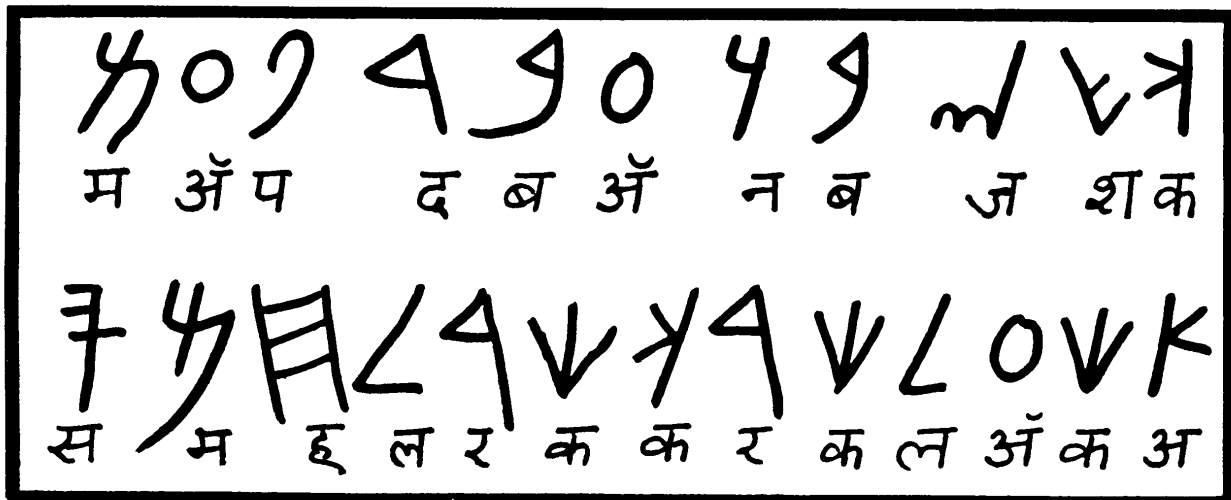
फलक संख्या – १५० ख

इस नगर की आधार – शिला फ़िनीशिया के एक नगर – राज्य टायर के राजा मट्टन प्रथम की पुत्री एलिसा द्वारा ८१४ ई० पू० में रखी गयी थी। राजकुमारी एलिसा अपने भाई पिगमैलियन के अत्याचारों से दुखित होकर अपने कुछ सहयोगियों के साथ अफ्रीका के उत्तरी भू भाग में आकर बस गई और एक नई संस्कृति एवं एक नये राज्य की स्थापना कर दी गई। ५५० ई० पू० में यह राज्य इतना शक्तिशाली हो गया कि इसने सिसली पर आक्रमण कर दिया तथा ५३६ में ग्रीस की सेना को पराजित कर भू – मध्य – सागर के तटवर्तीय राज्यों पर अपना एकाधिकार जमा लिया।

रोमन राज्य से तीन बार युद्ध होने के पश्चात् इसको परास्त होना पड़ा। १२२ ई० पू० में इसका विजेताओं द्वारा पुनरुत्थान हुआ परन्तु ६६८ ई० में मुस्लिम आक्रमणों ने इसको सदा के लिए लोप कर दिया।

प्युनिक लिपि की वर्णमाला तथा एक अभिलेख के कुछ शब्द 'फ० सं० – १५१' पर दिये गये हैं। इस अभिलेख का अनुवाद लिड्ज़बार्सकी ने किया है। इसको चैबोट (Chabot) ने प्रकाशित[1] किया। इसका हिन्दी – अनुवाद 'फ० सं० – १५१' पर ही दिया गया है जो लेखक ने अंग्रेज़ी अनुवाद[2] से किया है। इस अभिलेख की दिशा सीधी ओर से आरम्भ होती है।

कनआन की लिपि

पैलेस्टाइन (फ़िलिस्तीन) व फ़िनीशिया के निकट की सारी भूमि का नाम कनआन[3] था। इस देश को दूध मधु का देश कहा गया है। यहाँ हेब्रू, सेमिटिक व अरामियन जातियाँ आकर बस गई थीं। इस देश का न कोई राज्य था और न राजधानी। भिन्न भिन्न नगर तथा भिन्न भिन्न राज्य यहाँ बने और बिगड़े।

1. Chabot, J. B. : Punica XXV and 'Inscriptions punicolibyques'; Journal Asiatic (March/April 1918), p. – 259.
2. Ibid : p. – 262·
   'To goddess and mother – goddess, who is the mistress of the most sacred ritualistic Codes (offered) from the son of Baalhana......'
3. फ़िलिस्तीन को ही बाइबिल में कनआन कहा जाता था।

प्युनिक लिपि के कागज़ पर लिखे लेख से

क्र०	अक्षर	क्र०	अक्षर	क्र०	अक्षर
अ		ख़		आ	
ब		ट		प	
ग/ज		ज		स	
द		क		क़	
ह		ल		र	
व		म		श	
ज़		न		त	

र द ख़ ह ¦ त ल अ ब ल ¦ त ब र ल व ¦ अ म ऋ ल ¦ त ब र ल

ऋ न ह ल आ ब ¦ न ब ¦ र ल म ख़ ¦ ल ऋ प ¦ श अ त

बालहना के पुत्र द्वारा देवी मां को और देवी को (जो) सबसे पवित्र संस्कार-विधि की स्वामिनी है।

कनआन की लिपि

स प आ स ऩ म ल क ज ख़ ज़ व ह द ग ब अ

दाएँ से बाएँ पढ़िये

त त श र क़ क़

·क ल म ह अ·श अ ल . र ज़ अ ब आ म 71.त श ब

------ न त म ल अ म . अ ल अ ब

अबी गीज़र से अहिमलक(के पुत्र) असा को पन्द्रह वर्ष में.......

फलक संख्या – १५२

उत्तरी सेमिटिक भाषा के दो भाग हो गये — एक कनआनी दूसरी अरामी। कनआनी से पूर्व हेब्रू, फ़िनीशिया तथा मोआब की भाषायें बनीं तथा अरामी स्थिर रही।

यहाँ का प्राचीनतम अभिलेख[1] गीज़र से प्राप्त हुआ जिस को गीज़र – प्लेट अथवा कृषक – पञ्चाङ्ग[2] के नामों से सम्बोधित किया जाता है। यह १९०८ में मैकालिस्टर (Macalister) को गीज़र में मिला था जिसका काल ई० पू० की नवीं श० निर्धारित किया गया।

अन्य अभिलेख प्राचीन समारिया के उत्खनित – सामग्री से, जो ६३ मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों पर एक प्रकार की स्याही से अंकित थे, प्राप्त हुए। यह उत्खनन १९०८ से १९१० तक किया गया। इन टुकड़ों पर समारिया – नरेश अहाब के बीजक (Bills) मिलते हैं जब वह सेडार की सुन्दर लकड़ी मिस्र को भेजा करता था। उसके बदले में उसको मिस्र का काग़ज़ प्राप्त होता था।

'फ० सं० – १५२' पर अक्षरों की वर्णमाला तथा बर्तनों के एक टुकड़े पर का अभिलेख[3] दिया गया है।

युगारिट (आधुनिक रासशमरा)

इतिहास : युगारिट एक प्राचीन नगर राज्य था जिसका आधुनिक नाम रासशमरा है। यह भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे पर उत्तर में स्थित है 'दे० फ० सं० – १३३'। इस नगर का सम्पर्क ई० पू० उन्नसवीं श० में क्रीट से रहा परन्तु चौदहवीं श० में माइसीनिया ने न केवल क्रीट को नष्ट किया अपितु युगारिट पर भी अपना अधिकार कर लिया। उस समय युगारिट राज्य का निकमद शासक था जो हित्ती सम्राट् शुप्प लूलीमाश की अधीनता में राज्य करता था। शुप्प लूलीमाश ई० पू० की चौदहवीं श० में हित्ती साम्राज्य का शासक था। ई० पू० की बारहवीं श० में समुद्री डाकुओं ने इसको नष्ट – भ्रष्ट करके इसके भावी इतिहास को सदैव के लिए अन्धकारमय बना दिया। क्या मालूम था कि एक दिन सारा संसार इसको पुनः मान्यता प्रदान करेगा।

लिपि तथा रहस्योद्घाटन : २५ अप्रैल १९२८ को सीरिया के एक कृषक को, जो अपने खेत में हल चला रहा था, एक पत्थर की पटिया मिली। उसका खेत भूमध्यसागर के किनारे पर था। इस किनारे का नाम मिनेत – एल – बैदा[4] था। १९२९ के मई माह में फ्रांस के एक निवासी क्लाड एफ० ए० शेफ़र (Claude F. A. Schaeffer) ने अपने एक सहयोगी जार्जेज चेनेत (Georges Chenet) के साथ उसी खेत के एक ७० फ़ुट ऊँचे टीले पर उत्खनन कार्य आरम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप अनेक चिकनी मिट्टी की पाटियाँ प्राप्त हुईं। एक बड़ा कमरा भी निकला जो तीन स्तम्भों द्वारा विभाजित था। यह स्थान स्थानीय शासक का पुस्तकालय था। कुछ पाटियों पर अक्कादियन लिपि अंकित थी तथा अन्य ४००[5] पाटियों पर युगारिट की कीलाकार लिपि थी। कुछ पाटियाँ द्विभाषिक भी थीं जिन पर युगारिट तथा मिस्र की लिपियाँ अंकित थीं। शेफ़र को १९४९ में एक पाटिया ऐसी भी प्राप्त हुई जिस पर एक वर्णमाला भी

1. Dussaud : "Syria", Vol. VI, page – 328 (1925).
2. Lidzbarski : 'An Old Hebrew Calendar – Inscription From Gezer' Quarterly State – ment (1909), p. – 26.
3. Noth, M. : Die Welt des Alten Testaments (1940), p. – 153.
4. यूनानी इसको 'White harbour' कहते थे।
5. Jensen, H. : Syn, Symbol and Scripts (London –), page – 119.

अंकित थी परन्तु वह सेमिटिक भाषा की पद्धति से बनी थी। 'फ० सं० – १५२' इस वर्णमाला का काल १४०० ई० पू० था।

युगारिट का नाम सर्वप्रथम मिस्र की अमरना – पाटियों पर दृष्टिगोचर हुआ। अरबी में इसका आधुनिक नाम रास – एश षामरा अथवा रास शमरा था।

इन पाटियों को असीरिया – भाषा – वेत्ता चार्ल्स वीरोलियुद (Charles Virolleaud) को प्रकाशनार्थ दे दी गईं। इसने इनकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा प्रकाशित[1] किया। हन्स बावर (Hans Bauer, १८७८ – १९३७), जो एक जर्मन सेमिटिक भाषा का ज्ञाता था, ने रहस्योद्घाटन करने का प्रयास किया। इसने २० अक्षर पढ़ लिये जिसमें ३ अशुद्ध थे।

तदनन्तर एक फ्रांसीसी प्राच्यवेत्ता एदुअर्द धोरमे (Edouard Dhorme, १८८१ – १९६६) ने पढ़ने का प्रयास किया। इसने न केवल बावर की ध्वनियों को शुद्ध किया अपितु कुछ चिह्नों को पढ़ भी लिया। चार्ल्स वीरोलियुद ने इस लिपि को इस प्रकार पढ़ने का प्रयास किया (फ० सं० – १५३)[2] :—
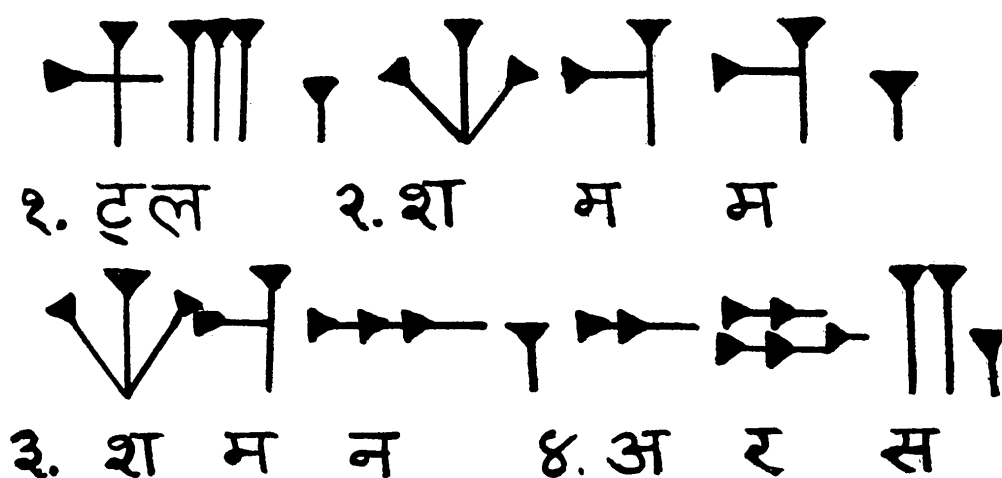
फलक संख्या – १५३

उपर्युक्त रहस्योद्घाटन[3] का निम्नलिखित अर्थ है :—

१. ट्ल = ओस २. शम्म = आकाश
३. शम्न = चर्बी ४. अर्स = पृथ्वी

अनुवाद : आकाश की ओस तथा पृथ्वी की चर्बी।
अर्थ : उर्वरता की अभिव्यक्ति।

---

1. "Les inscriptions cuneiformes de Ras shamra – Journal of Syria *(1930)* Vol. X page – 304.
2. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968), p. – 112.
3. Virolleaud, C. : Le dechiffrement des tablettes alphabetiques de Ras Shamra 'Syria' Vol. XII. (1931), p. – 190.

बावर ने एक शब्द इस प्रकार पढ़ा — "ख़रस़न" जिसके अर्थ हैं 'कुल्हाड़ी' 'फ़० सं० – १५४' दोनों लघु अभिलेख कुल्हाड़ियों पर अंकित थे।[1]
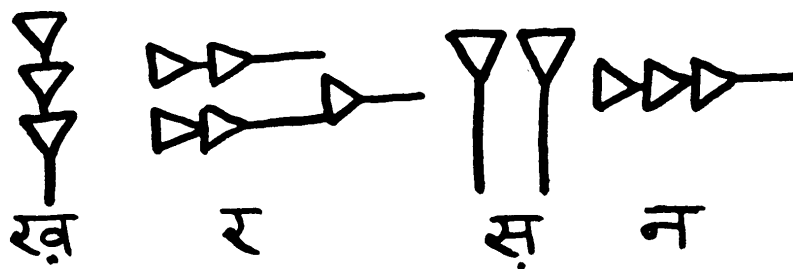
फलक संख्या - १५४

घोरमे ने दो शब्द इस प्रकार पढ़े — "रब (क + ह = ख) खनम" अर्थात् 'मुख्य पुरोहित'। (फ० सं० – १५५)।
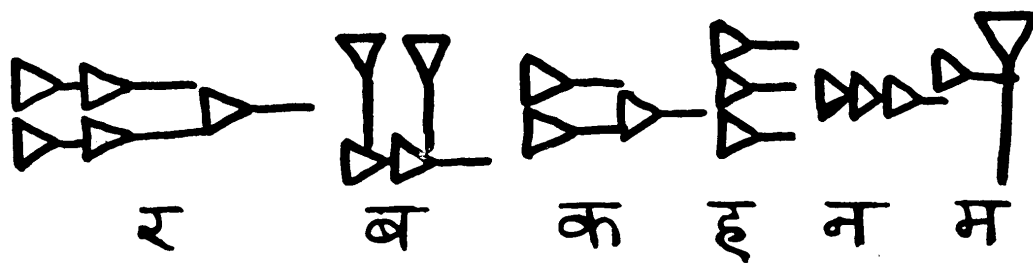
फ० सं० – १५५

इस उत्खनन कार्य में सैकड़ों द्विभाषिक (हेब्रू – युगारिट) पाटियाँ प्राप्त हुई जिन्होंने बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेण्ट (Old Testament) में एक प्रकार की क्रान्ति[2] ला दी और उसमें बड़ा हेर – फेर हो गया।

इसके अतिरिक्त एक और उदाहरण उत्खनन से एक महाकाव्य का मिला जिसका अनुवाद जार्डन ने किया तथा अपनी पुस्तक[3] में प्रकाशित किया। उसी की एक पंक्ति 'फ० सं० – १५६' पर दी गई है। इसका अनुवाद इंगलिश[4] में किया गया है जिसका हिन्दी में इस प्रकार अनुवाद होगा :—

"देखो वह एक धनुष लाता है।
देखो देखो वह एक चाप लाता है।"

1. Daniel, G. : The Story of Decipherment (1975), p. – 118.
2. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968), p. – 105.
3. ,, ,, ,, : Ugaritic Manual (1955), p. – 114.
4. जार्डन का किया हुआ इंगलिश अनुवाद : "Behold a bow he brings; Lo he fetches an arc."
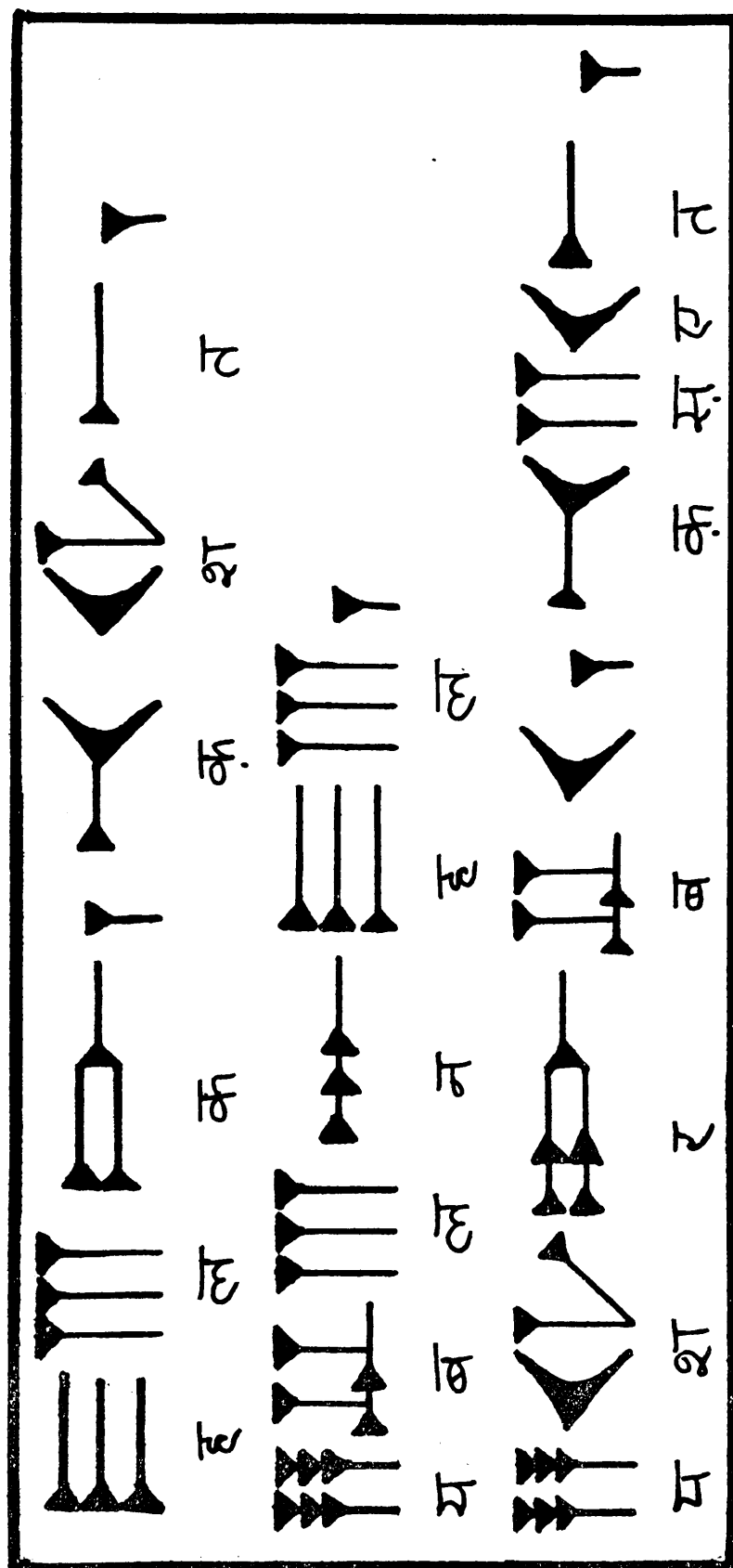
फलक संख्या – १५६

युगारिट की वर्णात्मक लिपि

१	२	३	१	२	३	१	२	३	१	२	३
अ	a		व	w		म	m		स	ṣ	
इ	i		ज़	z		न	n		क़	q	
ऊ/ओ	u/o		ह	ḥ		स	s		र	r	
ज/ग	g		त	ṭ		स	s		श	sh	
द	d		य	y		क	c		श	sh	
ज़	d̠		ख़	h̠		ग़	ġ		श	s̈/t̠	
ह	h		क़	ḳ		प	p		ज़	z	
ब	b		ल	l		स	ṣ		त	t	

फलक संख्या – १५७

इस लिपि को बाएँ से दाएँ लिखा जाता था। इसके उद्भव के विषय में यह अनुमान लगाया जाता है कि यह एक तत्कालीन विद्वान् का कार्य है। जब कीलाकार लिपि में वह अपनी भाषा व्यक्त नहीं कर सका तो उसने पद्धति का आविष्कार किया होगा। इसमें ३२ ध्वनियाँ हैं जो वर्णमाला के साथ दी गई हैं परन्तु उनका शुद्ध उच्चारण व्यक्त करना संभव नहीं है। संसार की यही एक सबसे प्राचीन वर्णात्मक लिपि है जिसमें न भावात्मक चिह्न हैं, न चित्र हैं और न निर्धारक (Determinatives) हैं इसकी वर्णमाला[1], जो दि लैंगे (De Langhe) ने तैयार की, 'फ० सं० – १७१' पर दी गई है। पहले कॉलम में हिन्दी ध्वनि, दूसरे में इंगलिश ध्वनि तथा तीसरे में कीलाकार वर्ण हैं।

पठनीय सामग्री

Albright, W. F. ; The Archaeology of Palestine (1949).

" " " : 'The Phoenician Inscriptions of the Tenth Century B. C. from Byblos.' Journal of the American Oriental Society - No. ixvii (1947).

Bradley, H. ; Story of Nations (1888).

Burckhardt, J. L, : Travels in Syria and Holy Land (London – 1872).

Bauer, H. ; Das Alphabet Von Ras Shamra (1932).

Ceram, C. W. ; Hands on the Past (NY – 1966).

Cooke, Rev. G. A. : A Text Book of North Semitic Inscriptions (1903).

Cock, Hand : The Archaeology of the Holy Land (I916).

Cross, F. M. : 'The Evolution of the Proto – Canaanite Alphabet' – Bulletin of the American Schools of Oriental Researches (No. 134 – 1954).

Cleater, P. E. ; Lost Languages (1959).

Diringer, D. : 'Problems of the Present Day on the Origin of the Phoenician Alphabet'—Journal of World History IV/1 (1957).

Driver, G. R. : Semitic Writing From Pictography to Alphabet (1948).

Daniel, G. ; The Story of Decipherment (1975).

Doblhofer, E. ; Voices in Stone – the Decipherment of Ancient Scripts and Writings (1961).

Finegan, J. ; Light from Ancient Past (1946).

Friedrich, J. ; Extinct Languages (1962).

Gardiner, A, H. : 'The Egyptian Origin of the Semitic Alphabet' Journal of Egyption Archaeology III (1916).

Gelb, I. J. : 'New Evidence in Favour of the Syllabic Character of West Semitic Writing' — Bibliotheca Orientalis XV (1958).

1. Friedrich, J. : Extinct Languages (1962), p. –49.

Gordon, C. H. ; Forgotten Scripts (1968).

,, ,, ,, ; Ugarit, Minoan Crete (1966).

,, ,, ,, ; Ugaritic Literature (1949).

,, ,, ,, ; Ugaritic Manual (1955).

Harden, D. : The Phoenicians – (1922).

Hitii, P. K. : Lebanon in History (Lond. 1957).

Harris, Z. S. : A Grammar of Phoenician Language (1936).

Jack, J W. ; The Ras – Shamra Tablets (I935).

Lidzbarski : Handbuch der nord semitique Epigraphic.

,, : Kanaan Inschriften (1907).

Langhe, De. ; Les textes de Ras – Shamra Ugarit.

Martin, W. J. : The Origin of Wtiting (1943).

Mocalister, R. A. S. : A Century of Excavation in Palastine (1926).

Moorhouse, A. C. : Writing and the Alphabet (1946).

Oberman, J. ; Ugarit Mythology (1951).

Sobelman, H. : 'The Proto – Byblian Inscriptions. A Fresh Approach' Journal of Semitic Studies VI (1961).

Schaeffer, C. F. A. ; The Cuneiform Texts of Ras Shamra – Ugarit (1939).

Virolleaud, C. ; 'Le dechiffrement des tablettes, alphabetiques de Ras Shamra' – I. of 'Syria' – XII. (1931).

□

हत्तुशा

इतिहास

कनआन के पुत्र हेथ के वंशज आरम्भ में हेबरोन की पहाड़ियों में निबास करते थे। यह लोग सिमायट थे। इतिहासकारों ने इनको हित्ती या हिटायट के नाम से सम्बोधित किया है। अधिकतर विद्वान् इनको सीरिया के मूल निवासी मानते हैं।

ई० पू० की अठारहवीं श० के अन्तिम चरणों में हत्तूशा (खत्तूशा) को, जहाँ पिजुश्तिश शासक था, कुश्शार के हित्ती – नरेश अनित्ताश ने परास्त करके हित्ती राज्य की नींव डाली। उस समय राजधानी का नाम लबरनाश (तबरनाश) कहते थे। पिजुश्तिश के पुत्र मुरसली प्रथम (Mursilis – I) ने एक नया मुख्य नगर हत्तुशाश (आ० बोग़ज़ कुई – गोर्गे ग्राम) के नाम से बसाया। अब इसकी राजधानी हत्ती या खत्ती हो गया। ई० पू० की सोलहवीं श० से राज्य का विस्तार होने लगा जो लगभग तीन शताब्दियों तक जीवित रहा। शनैः शनैः यह राज्य इतना शक्तिशालो हो गया कि मिस्र व असीरिया का प्रतिद्वन्दी बन गया और कई बार उन देशों पर आक्रमण भी किये परन्तु यातायात के साधन न होने के कारण उन पर शासन न कर सका।

इसी राज्य के एक शूर वीर राजा शुप्पुलुलीमाश (Shuppululimash) ने १३५० ई० पू० में हुरियन के मित्तानी राज्य को, जिसकी राजधानी मारी थी, नष्ट कर दिया। उसके मरणोपरांत उसके पुत्र मुरसली द्वितीय (Mursuli) ने १३४५ से १३१५ ई० पू० तक राज्य किया तथा राज्य का विस्तार भी किया। तत्पश्चात् मुवात्तलीस (१३०६ – १२८२ ई० पू०) ने मिस्र के नरेश सेती प्रथम (१३०३ – १२९० तक) को परास्त किया। तदनन्तर खत्तुसिली (अथवा हत्तुसिली तृतीय) ने रेमेसीज़ द्वितीय (मिस्र का शासक १२९० – १२२३ ई० पू०) को १२७२ में काडेश के मैदान में परास्त किया परन्तु रेमेसीज़ ने इस विजेता से सन्धि कर ली तथा उसकी एक कन्या से विवाह भी कर लिया। तेरहवीं श० में यह विशाल साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर था।

ई० पू० की बारहवीं श० से इस साम्राज्य पर सामुद्रिक डाकुओं के विध्वंसक आक्रमण होने लगे और यह पतन की ओर अग्रसर होने लगा। संकीर्ण होकर केवल दो (कारकेमिश एवं अलेपू) केन्द्रों पर वर्तमान रहा जिसको सरगोन द्वितीय ने ७१७ ई० पू० में विलकुल समाप्त कर दिया। फिर नेबूकदनेज़ार ने छठी श० में सीरिया को ही खत्ती के नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार हित्ती जाति का राज्य लगभग ६०० वर्ष रहा।

हत्तुशा अथवा हित्ती राज्य ई० पू० की चौदहवीं श०
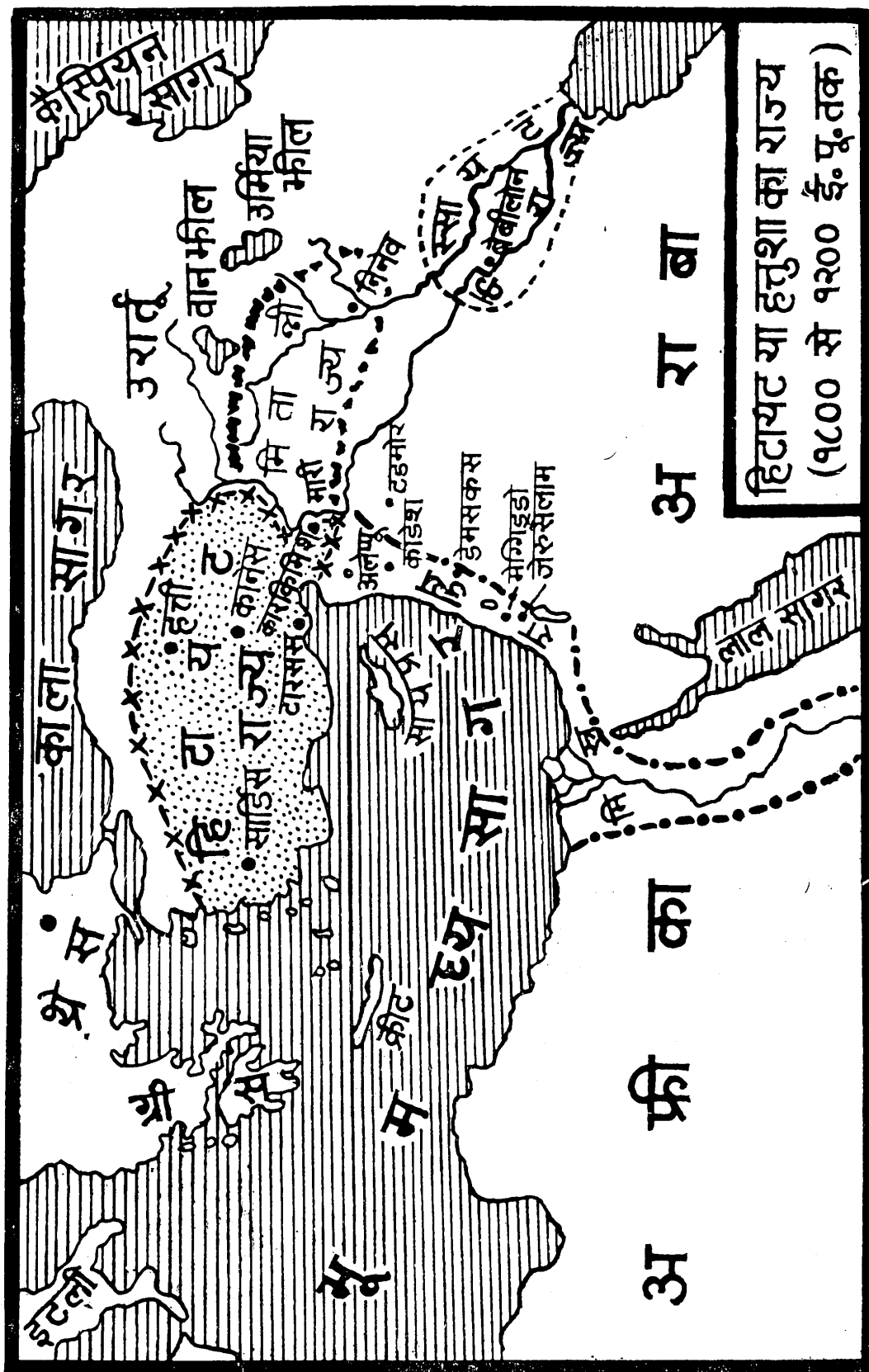
हित्ती लिपि का रहस्योद्घाटन

हित्ती भाषा संसार की सर्वप्रथम तथा प्राचीनतम भारोपीय भाषा है जिसके अभिलेख प्राप्त हुए हैं[1]। इस लिपि का जन्म ई० पू० की चौदहवीं शताब्दी में हुआ और सातवीं श० तक प्रचलित रही। इसमें दो प्रकार की लिपियों का समावेश है, एक कीलाकार तथा दूसरी भावात्मक चित्र – लिपि। इस लिपि का रहस्योद्घाटन निम्नलिखित प्रकार से सम्पन्न हुआ :—

१८१२ में : सर्वप्रथम एक ऐङ्गलो – स्वीज़ गवेषक योहान लुडविग बर्कहार्ड (Johann Ludwig Burckhardt, १७८४ – १८१७) ने हमा[2] के बाज़ार में एक मकान की दीवार में लगा एक पत्थर देखा जिस पर एक विलक्षण लिपि अंकित[3] थी। इसने अरेबिया, सीरिया तथा पश्चिम एशिया के अनेक देशों की यात्रा की। यह कार्य वह कदापि पूरा नहीं कर सकता था यदि इस्लाम धर्मानुयायी न बन जाता। इस कारण इसने १८०९ में माल्टा पहुँच कर अरबी पोषाक ग्रहण की। १८१५ में जेद्दा आकर इस्लाम में ईमान लाया। तत्पश्चात् इसने मक्का व मदीना के पवित्र स्थानों को देखा। अब इसका नाम शेख इब्राहिम हाजी हो गया। इसके मरणोपरान्त इसकी पुस्तक[4] प्रकाशित हुई जिससे यह वृत्तान्त लिया गया है।

१८६१ में : सर्वप्रथम जॉर्ज पेरट (George Perrot) ने हित्ती की चित्र – लिपि में उत्कीर्ण एक शिलालेख का, जो बोग़ज़कुई के निकट स्थित था तथा जिसमें बीस सेण्टीमीटर लम्बी दस पंक्तियाँ अंकित थीं, चित्र प्रकाशित कराया।

१८६३ में : एक जर्मन राजदूत तथा प्राच्य – वेत्ता डा० ए० डी० मोर्दमान (Dr. A. D. Mordtmann) को एक चाँदी की राजकीय मुद्रा[5] प्राप्त हुई। 'फ० सं० – १५९' इस पर गोलाई में उभरी हुई कीलाकार लिपि तथा भावात्मक चित्र – लिपि में हित्ती भाषा अंकित थी। इसका व्यास चार सेण्टी – मीटर था। यह मुद्रा एक व्यापारी ने स्मर्ना के नगर से प्राप्त की थी। वह व्यापारी इसको ब्रिटिश संग्रहालय बेचने के लिये ले गया। वहाँ के एक अधिकारी सैमुयल बर्क (Samuel Birch) ने उसको कृत्रिम तथा रॉलिन्सन ने उसको नक़ली बता कर वापस कर दी[6], परन्तु बर्क ने उसकी मोम पर कुछ प्रतिलिपियाँ तैयार कर लीं। मोर्दमान ने इसके चित्र को प्रकाशित किया।

१८७२ में : दो सीरिया स्थित अमेरिकी राजदूत अगस्टस जॉन्सन (Augustus Johnson) तथा डॉ० जेसप (Dr. Jessup) ने उस पत्थर का निरीक्षण किया जो बर्कहार्ड ने हमा में १८१२ में देखा था। स्थानीय निवासियों से पता लगा कि इस प्रकार तीन अन्य शिलायें कुछ दूर पर पड़ी हैं। जब उन्होंने

---

1. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts – The story of their decipherment (London – 1968), page – 87.
2. बाईबिल में 'हमाथ'; रोमन में 'एपीफ़ेनिया तथा सीरियाई में 'हमा'।
3. Doblhofer, E. : Voices in Stone (1961), page – 151.
4. "Travels in Syria and the Holy Land" (1822), page – 146.
5. Moorhouse, A. C. : Writing And The Alphabet. (1946), p. – 24.
6. Gordon, C. H. : Western Asiatic Seals in the Walters Art Gallery. 'Iraq' – No. 69. (1939), page. – 24.
   Doblhofer, E. Voices in Stone (1961), page – 156.

उन शिलाओं की प्रतिलिपियाँ तैयार करने का प्रयत्न किया तो वहाँ के निवासियों ने अनुमति नहीं दी।

१८७३ में : अमेरिका – पैलेस्टीनियन एक्सप्लोरेशन सोसायटी के दो अधिकारी ड्रेक (Drake) तथा पालमर (Palmer) उसी शिला को देखने हमा आये तो उनको भी प्रतिलिपियाँ तैयार करने की अनुमति नहीं मिली।

१८७४ में : कैप्टेन रिचर्ड बर्टन (Capt. Richard Burton) ने किसी प्रकार उन पत्थरों के कुछ रेखा चित्र बना लिये। इस कारण स्थानीय निवासी बिगड़ गये और उन शिलाओं को नष्ट करने की धमकी देने लगे।

—इसी वर्ष तुर्की के एक नये गवर्नर सुभी पाशा की नियुक्ति हमा[1] में हुई। यह एक सुसंस्कृत सज्जन था। इसने दमिश्क से दो ब्रिटिश राजदूत – कर्बी ग्रीन (Kirby Green) तथा ईसाई – प्रचारक विलियम राईट (William Wright, १८३७ – १८९९) को हमा आमन्त्रित किया। विलियम राईट ने प्रतिलिपियाँ, तैयार करके ब्रिटिश संग्रहालय को भेज दीं तथा शिलायें कान्सटैण्टी – नोपिल (आ० इस्तमबोल) भेज दी गईं। इनको अपनी पुस्तक[2] में प्रकाशित भी किया।

—इसी वर्ष निम्नलिखित विद्वानों को इस विलक्षण लिपि के शिलालेख एशिया माइनर के कई प्राचीन नगरों के खण्डहरों से प्राप्त हुए :—

(क) चार्ल्स टेक्सियर[3] (Charles Texier) तथा डब्ल्यू० हैमिल्टन (W. Hamilton) को बोग़ज़कुई[4] से।

(ख) ई० जे० डेविस (E. J. Davis) को इवरिज़ से।

(ग) अन्य को बोर, एयुक, बुल्हरमैदेन, सिपीलोस आदि से।[5]

१८७८ में : ब्रिटिश संग्रहालय के असीरियाई – कक्ष के एक अधिकारी जॉर्ज स्मिथ (George Smith, १८४० – १८७६) ने कारकेमिश (आ० जेराब्लुस) के निकट कुछ उत्खनन कार्य भी किया जहाँ से हमा के प्रकार की अनेक शिलायें प्राप्त हुईं। स्मिथ ने ही १८७६ में एक टीले को पहचाना[6] था और बताया था कि इस टीले के नीचे कारकेमिश दबा है।

१८८० में : मोर्दमान ने उस चाँदी की मुद्रा (कीलाकार) को इस प्रकार पढ़ा 'फ० सं० – १५९' जिसका विवरण इस प्रकार है :—

१. निर्धारक चिह्न है, जो किसी निजी (अमुक) नाम के पूर्व प्रयोग होता था। मिस्री लेखाकार अपने निर्धारक चिह्न को सीधी ओर लगाते थे।

---

1. हमा संजक प्रांत की राजधानी थी। संजक उत्तरी सीरिया का एक प्रांत था। सीरिसा तुर्की साम्राज्य का एक उपनिवेश था, जो तुर्कों का विलायत कहलाता था। सीरिया देश की राजधानी दमिश्क (डैमसकस) थी और अब भी है।
2. "The Empire of Hitties" (1884).
3. टेक्सियर ने अपनी पुस्तक "Description de l' Asie Mineure" in 3. Vols. में १८८० में प्रकाशित की।
4. प्राचीन हत्तूशाश, जो हित्ती शासकों की राजधानी लगभग १६५० से १२५० ई० पू० तक रही। यह अंकारा से १४५ कि० मी० पूर्व की ओर है।
5. Cleater, P. E. : Lost Languages (1961), page – 116.
6. Doblhofer, E. : Voices in Stone (1961), p. – 155.

२. तार; ३, कु; ४. दिम; ५. मी।

६. यह कीलाकार लिपि का सामूहिक चिह्न बेबीलोनिया में नृप के लिए प्रयोग होता था। निर्धारक चिह्न है।

७. यह चिह्न भी 'देश' के लिए निर्धारित है।

८. तार; ९. सुन। यही दो शब्द अशुद्ध पढ़े गये। शुद्ध है 'मी + रा' अर्थात् मीरा।

मुद्रा के अन्दर वाले भाग भावात्मक चित्र – चिह्नों को इस प्रकार पढ़ा गया :—

१. तारकू; २. मूवा; ३. नृप; ४. मर; ५. इ; ६. देश। 'मीरा देश का राजा तारकूमूवा।" (फ० सं० – १५९ क)।
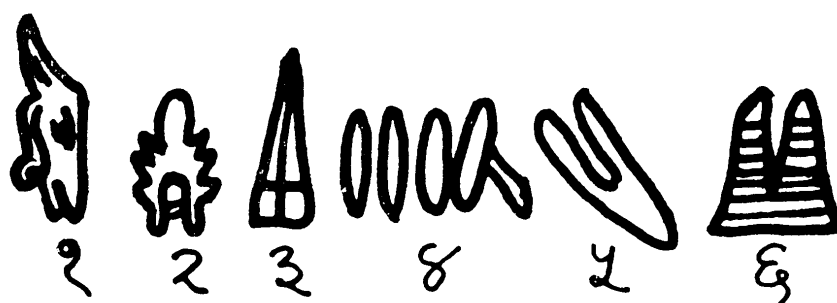
फ० सं० – १५९ क

'तारकुदीम्मी—तारसुन का राजा' इसी वर्ष आर्कीबाल्ड हेनरी सेसी (Archibald Henry Sayce, १८६९ – १९३३) ने, जो हेब्रू, मिस्री, फ़ारसी, संस्कृत तथा असीरियाई भाषाओं का प्रकाण्ड विद्वान् था, चांदी की मुद्रा को इस प्रदार पढ़ा :—

'तार – रिक – तिम – मे सर मत एर – मी – इ' अर्थात् 'तारिकतिम्मे एरमी देश का राजा'[1]।

अब इसको इस प्रकार पढ़ा जाता है :—

'तारकू – मूवा राजा मी + र + अ देश' अर्थात् 'तारकूमूवा – मीरा देश का राजा'[2] इसी वर्ष सेसो ने 'सोसायटी आफ़ बिबलीकल आर्कियोलॉजी' के समक्ष एक शोध – पत्र पढ़ा, जिसके द्वारा यह सिद्ध किया कि लिपि का नाम 'हमाथी'[3] नहीं वरन् 'हित्ती' है। असीरियाई तथा मिस्री लिपियों में 'हित्ती' शब्द का वर्णन दिया हुआ है। इसी वर्ष कई खोजकर्ताओं — मेसरश्मिद (Messerschmidt), ऑल्मस्टेड (Olmstead), चार्ल्स (Charles), रेंच (Wrench), होगर्थ – वूली (Hogarth – Woolley) तथा आई० जे० गेल्ब आदि ने हित्ती लिपि के अनेक अभिशेखों का संग्रह कर लिया।

1. Jensen, H. : Syn, Symbol, Script (1970), p. – 146.
2. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts – The Story of Their Decipherment (London – 1968), page – 97.
3. बहुत से विद्वान् 'हमाथी' के नाम से ही इस लिपि को सम्बोधित करने लगे थे।

तारकोण्डेमस की मुद्रा
कुछ
निर्धारिक
चिन्ह
आकाश
नृप
देवता
मार्ग
नदी
यह
मुद्रा
चांदी की है। इसका व्यास ४ सेन्टीमीटर है
बाण के चिंन्ह से नीचे की ओर पढ़ा
जायेगा। इसमें ९ चिन्ह हैं।
१
२
३
४
५
६
७
८
९
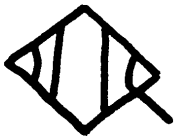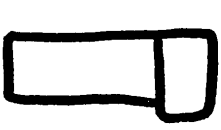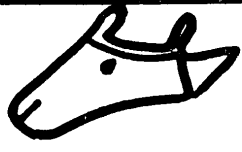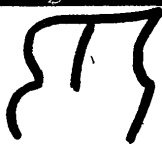
फलक संख्या – १५९

हित्ती चित्रात्मक लिपि

	अ	ई	ए	उ		अ	ई	ए	उ
ध्वनि					ध्वनि				
ब/प		बी पी		बु पु	क		की	के	
ज					ल		ली	ले	लु
ग				गु	म			मे	मु
द				दु	न		नी	ने	नु
ह ख़		ही	हे	हु	स		सी	से	सु
व		वी	वे		र				रु
ज़		ज़ी	ज़े	ज़ु	त		ती		तु

फलक संख्या – १६०

एक द्विभाषिक अभिलेख -- आठवीं श० ई० पू०

अॅ ब श ज त म य ल क ब न क व

त म अॅ न त ब श व म अॅ न म व

द स स अ म (?) ह स ई व न स ह स स

ह द स त ह ई अ आ ह ल ई अ म उ व अ

फलक संख्या – १६

भावात्मक चित्र -- लिपि के कुछ पठन

फलक संख्या – १६२

१८८७ में : मिस्र के तेल[1] – एल – अमर्ना[2] में अक्समात एक ग्रामीण स्त्री को एक पाटिया दृष्टिगोचर हुई। जब यह बात पुरातत्त्व – वेत्ताओं को विदित हुई तो वहाँ उत्खनन कार्य किया गया जिसके द्वारा ३२० पाटियाँ[3] प्राप्त हुई। यह पाटियाँ एक प्रकार के पत्रक[4] थे जिन पर मिस्र, असीरिया, मित्तानी, हित्ती आदि राज्यों के मध्य जो पत्रव्यवहार हुआ था, अंकित था। इन पाटियों पर अधिकतर दो प्रकार की लिपियाँ – मिस्री (चित्रात्मक) तथा कीलाकार – अंकित थीं। यदि यह कोष प्राप्त न होता तो हित्ती के इतिहास की कड़ियाँ अधूरी रह जातीं तथा लिपि के रहस्योद्‌घाटन कार्य में भी पूर्ण सफलता मिलना सम्भव न होता। इसी कोष में दो ऐसे पत्रक मिले जो एक विलक्षण लिपि में अंकित थे तथा मिस्र से अरज़वा[5] के राजा तारकुण्डरौस को भेजे गये थे।

१८९० में : एक फ्रांसीसी असीरियाई लिपि – वेत्ता योकिम मेनान्त[6] (Jochim Menant, १८२० – १८९९) ने हित्ती चित्र – लिपि के एक चिह्न 'फ० सं० – १६३ क' को पहचान लिया। इसमें मनुष्य अपनी ओर संकेत करता है। ऐसा चिह्न 'फ० सं० – १६३ ख' मिस्री भाषा में पाया गया है। इसके अर्थ मेनान्त ने सर्वनाम' अर्थात् मैं हूँ.......' अथवा 'मैं कहता हूँ.......' बतलाये हैं।

फलक संख्या – १६३

१८९२ में : एक जर्मन असीरियाई लिपि – वेत्ता पाइज़र (Peiser) ने इन दो चिह्नों 'फ० सं० – १६४' को भावात्मक हित्ती लिपि के चिह्न बतलाये। अभी तक विद्वानों ने हित्ती की भावात्मक चित्र – लिपि के ३५० चिह्नों को पहचान लिया था[7]।

IC　II

फ० सं० – १६४

---

1. 'तेल' के अर्थ 'टीला' है (Tell – el – Amarna)।
2. 'अमर्ना' अरबी भाषा में उस ग्राम का नाम है जिसके निकट वे खण्डहर स्थित हैं जो प्राचीन काल में एक नगर, मन्दिर व महल थे। नगर का नाम खू – अतेन था जो मेम्फिस से १८० मील दक्षिण की ओर स्थित था। इसको मिस्र के एक नरेश अमेनोफ़िस चतुर्थ ने १५०० ई० पू० में नील नदी के पूरब की ओर बनवाया था। ३२० पत्रकों में से, जो १८८८ में पृथ्वी के नीचे से निकले, ८२ ब्रिटिश संग्रहालय ने, १६० बर्लिन तथा ६० गीज़ा के संग्रहालयों ने मोल ले लिये।
3. Budge, E. A. W. : Sculptures and Inscriptions of Behistun (1907), page – VII.
4. Gordon. C. H. : Forgotten Scripts (1968), page – 88.
5. अरज़वा भूमध्यसागर के किनारे पर एशिया माइनर में स्थित था।
6. Doblhofer, E. : Voices in Stone (1961), p. – 161.
7. H. Jensen : Syn Symbol Script (1970), p. – 148.

१८६३ में : ई० कैन्त्रे (E. Chantre) को कुछ पाटियों के टुकड़े बोग़ज़कुई के निकट प्राप्त हुए। इन टुकड़ों पर अरज़वा लेख – पत्रों के चिह्न पाये गये। इससे स्पष्ट हो गया कि यह चिह्न हित्ती की भावात्मक चित्र – लिपि है।

१८६४ में : एक असीरियाई लिपि – वेत्ता पीटर येनसेन (Peter Jensen) ने हित्ती लिपि के रहस्योद्घाटन पर एक लेखमाला लिख दी। इसको पुनः अपनी पुस्तक[1] में १८९८ में प्रकाशित करवाया परन्तु उसने हित्ती लिपि को आर्मेनियन लिपि से सम्बन्धित बता कर एक भूल की। इसी वर्ष येनसेन ने एक शब्द[2] पढ़ा, जिसके अर्थ हैं 'कारकेमिश नगर' 'फ० सं० – १६५'। इस प्रकार की चित्रात्मक लिपि शिलाओं तथा मन्दिरों पर उत्कीर्ण की जाती थी।
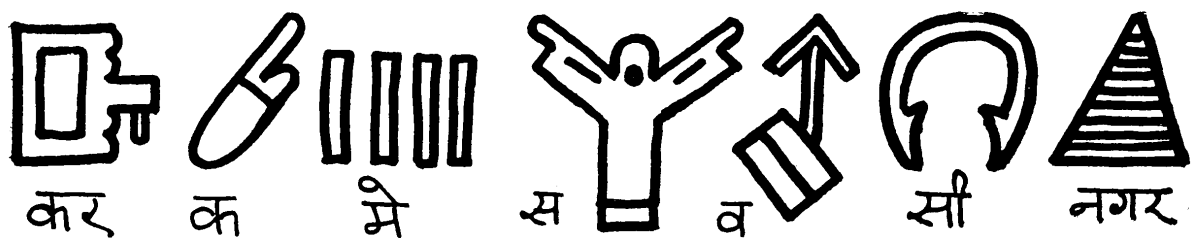
फलक संख्या – १६५

१६०० में : एक जर्मन पुरा – वेत्ता लियोपोल्ड मेसरश्मिड (Leopold Messerschmidt) ने ३६ बड़े अभिलेखों को एकत्र किया, उनका सम्पादन किया तथा उनका परीक्षण करके अपने एक ग्रन्थ[3] में प्रकाशित किया। इस महान् शोध के द्वारा संसार के विद्वानों को इस लिपि के रहस्योद्घाटन करने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

१९०० : इसी वर्ष सेसी ने हित्ती की भावात्मक चित्र – लिपि के कई चिह्न पहचान लिये (फ० सं० – १६२)

१६०२ में : एक नार्वे निवासी असीरियाई लिपि – वेत्ता जे० ए० क्नुद्ज़ोन[4] (J. A. Knudtzon) ने अपने दो स्कैण्डीनेवियन सहयोगियों यस० बुग्गे (S. Bugge) तथा ए० टोर्प (A. Torp) के साथ अरज़वा लेख – पत्रों को पढ़ने का प्रयास किया, उनको प्रकाशित किया तथा घोषित किया कि हित्ती भाषा एक भारोपीय भाषा है। उदाहरणार्थ, हित्ती लिपि में 'ए – स – तू' 'एस्तू' संस्कृत का 'अस्तु' अर्थात् 'ऐसा ही हो'[5] है। इस घोषणा को कई विद्वानों ने अशुद्ध बतलाया तथा उसकी कटु आलोचना की। इससे हताश होकर क्नुद्ज़ोन ने अपना रहस्योद्घाटन – शोध स्थगित कर दिया अन्यथा यह विद्वान् विश्व प्रसिद्ध हो जाता।

१९०६ में : दो स्थानों – बोग़ज़कुई[6] तथा कारकेमिश – पर उत्खनन कार्य प्रारम्भ करने की योजना बनी। बोग़ज़कुई ब्रिटिश द्वारा तथा कारकेमिश अमेरिका द्वारा उत्खनित किये जाने की सम्भावना हो गई।

1. "Hittites and Armenians".
2. Cleater, P. E. : Lost Languages (1961), page – 123.
3. "Corpus Inscriptionum Hettiticarum" (1900).
4. E. Doblhofer : Voices in Stont (1961), page – 164.
5. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968), p. – 90.
6. तुर्की की राजधानी अंकारा से यह पूरब की ओर १४३ किलो मीटर पर स्थित है।

इसी बीच जर्मनी के क़ैसर के आदेशानुसार तुर्की स्थित जर्मन राजदूत ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव द्वारा योजना को पलट दिया। इस कारण जॉन गारस्टांग (John Garstang, १८७६ – १९५६) ने, जो ब्रिटिश स्कूल आफ़ आर्कियोलॉजी का सर्वप्रथम निदेशक था, अपने ब्रिटिश अभियान को कारकेमिश (आ० जेराब्लूस) के उत्खनन में लगा दिया। दूसरे बर्लिन ओरिएण्टल सोसायटी[1] के अभियान ने ह्यूगो विन्कलर[2] (Hugo Winckler, १८६३ – १९१३) के अन्तर्गत अपना उत्खनन बोग़ाज़कुई में आरम्भ कर दिया। इसने दो बार (१९०६ – ७ तथा १९११ – १२) में अपना कार्य किया। जब १९१३ में विन्कलर की मृत्यु हो गई, तो बर्लिन से आये हुए दो अन्य विद्वानों — एच० एच० फ़िगूला (H. H. Figulla) तथा बेदरिख़ ह्रोज़्नी (Bedrich Hrozny, १८७९ –१९५२) द्वारा उत्खनन कार्य कुछ अंशों में चलता रहा।

इस उत्खनन द्वारा लगभग दस सहस्र पकी हुई ईंटों जैसी पाटियाँ तथा उनके टुकड़े प्राप्त हुए। इन्हीं पाटियों में एक अक्कादियन भाषा तथा कीलाकार लिपि में अंकित ऐसा अभिलेख प्राप्त हुआ जो एक सन्धि – पत्र के रूप में था। यह सन्धि हत्तुसिलिस तृतीय तथा रामेसीज़ द्वितीय के मध्य C १२८० ई० पू० में हुई थी[3]। इसी का दूसरा भाग मिस्र की भावात्मक चित्र – लिपि में उत्कीर्ण किया गया था जो कोनार्क[4] के विशाल मन्दिर में स्थित है।

१९११ में : आर० यस० टॉम्सन (R. S. Thompson) ने कारकेमिश के उत्खनन से प्राप्त कुछ अभिलेखों को पढ़कर उनको प्रकाशित कराया। इससे ज्ञात हुआ कि अन्य विद्वानों केसेसी, रुश, येनसेन, कोण्डर, ग्लेई आदि — निष्कर्षों में प्रर्याप्त समानता है।

१९१५ में : १५ नवम्बर को ह्रोज़्नी ने अपने रहस्योद्घाटन के निष्कर्ष – लेख जर्मन मिडिल – ईस्ट सोसायटी, बर्लिन, के समक्ष पढ़े। विद्वानों ने इस दिवस को हित्ती – लिपि के ज्ञान का जन्म दिवस निर्धारित करके ह्रोज़्नी को हित्ती – लिपि – वेत्ता के शब्दों से विभूषित किया। इसकी एक पुस्तक[5] भी इसी वर्ष प्रकाशित हुई।

इस प्रकार हित्ती इतिहास तथा लिपि का ज्ञान प्रकाशमय हो गया और संसार के विद्वान् उससे **अवगत हो गये।**

बोग़ाज़कुई में कुछ दिन और उत्खनन चलता रहा और उससे निम्नलिखित बातें ज्ञात हुईं[6] :—

- पाटियों पर पाठशालाओं के पाठ सुमेरियन तथा अक्कादियन भाषा में प्राप्त हुए।
- हित्ती के लिपिकार शब्द के आरम्भ में शब्द के अर्थ को बताने के लिए एक निर्धारित चिह्न का प्रयोग करते थे जब कि मिस्र के लिपिकार शब्द के लिखने के पश्चात् प्रयोग करते थे।

---

1. Deutsche Orient – Gesellschaft.
2. विन्कलर की पूरी कहानी लियो की इस पुस्तक में दी है—
   Deuel, Leo : The Treasures of Time (1961), p. – 256.
3. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968), page – 88.
4. लेखक ने स्वयं जाकर इस शिलालेख को जनवरी १९७५ में देखा हैं।
5. "The Solution of Hittite Problem" (Berlin).
6. Hrozny : Ancient History of Western Asia, India and Crete (Prague 1944), p. – 115.

- कुछ ऐतिहासिक पाठ द्विभाषिक अनुवादों में, जैसे हित्ती फ़िनीशियन, हित्ती अक्कादियन आदि ।
- कुछ पाटियों पर समान कॉलमों में त्रैभाषिक — सुमेरियन, अक्कादियन तथा हित्ती – शब्दकोष भी प्राप्त हुए ।
- कुछ राजकीय मुद्रायें प्राप्त हुईं जिनका काल लगभग १४०० से १२०० ई० पू० निर्धारित किया गया है । इन मुद्राओं पर कीलाकार तथा भावात्मक चित्र – लिपियाँ अंकित पाई गईं ।

कीलाकार लिपि की दिशा अधिकतर बायें से दायें हैं परन्तु चित्र – लिपि हल – पद्धति में अंकित की गई है । इसकी चित्र – लिपि में ३५० चिह्न[1] हैं ।

जब पाश्चात्य विद्वानों को ज्ञात हो गया कि हित्ती लिपि का रहस्योद्‌घाटन हो गया तो उनकी एक बाढ़ सी एशिया माइनर आने लगी । उनमें उल्लेखनीय नाम हैं :—

- इंगलैण्ड के निवासी विलियम रामसे (William Ramsay) ।
- जर्मनी के निवासी कार्ल हियूमान (Karl Heumann) तथा आटो पुख्सटाइन (Otto Puchstein) ।
- आस्ट्रिया के निवासी फेलिक्स वॉन लूशर (Felex Von Luschar) तथा लैन्कोरन स्की (Lancko-ran Ski).
- अमेरिका निवासी वुल्फ़ (Wolfe) तथा आई० जे० गेल्ब (I. J. Gelb) ।
- इटली निवासी पी० मेरिग्गी (P. Meriggi) ।
- स्वीट्ज़रलैण्ड निवासी ई० फ़ोरर (E. Forrer) ।

१९२४ में : येनसेन ने अपने एक भाषण में घोषित किया कि जब तक कोई द्विभाषिक अभिलेख प्राप्त नहीं होता तब तक हित्ती लिपि का शुद्ध रहस्योद्‌घाटन होना सम्भव नहीं है ।

१९२५ में : फ़ोरर ने बोग़ज़कुई के पत्रकों में आठ भाषाओं का समावेश बताया । उसने एक पाटिया के पाठ[2] को 'फ० सं० – १८०' इस प्रकार पढ़ा :—

'(मनुष्य) चाहे वह नृप हो या युवराज हो' । उसने एक पुस्तक[3] भी लिखी ।
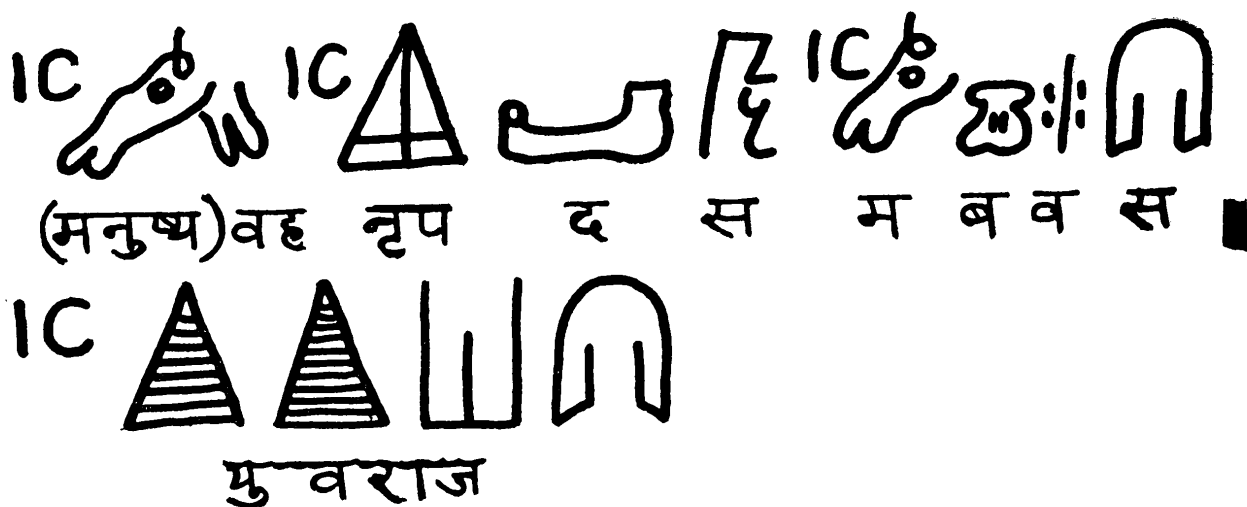
फ० सं० – १६६

1. Jensen, H. : Syn, Symbol, Script (1970), p. – 148.
2. Doblhofer, E. : Voices in Stone (1961), p. – 184.
3. Forrer, E. : The Hittite Hieroglyphic Writing (Chicago – 1932).

१९३० में : चार विद्वानों[1] ने मेरिग्गी, गेल्ब, फ़ोरर तथा बोस्सार्ट ने हित्ती की चित्र-लिपि की कुछ पाटियों को इस प्रकार पढ़ा :—

१. कुरकुम नगर; २. अमतू देश; ३. तुवानूव अर्थात् 'तयान' नगर; ४. मुवातली (गुरगम्मा का); ५. उरखिलीनू (हमाथ का); ६. देवता खेबत (अर्थात् हेबत देवता) (फ० सं० – १६२)।

१९३३ में : हेलमुथ थ्योडोर बोस्सार्ट (Helmuth Theodor Bossert, १८८९ – १९६२) कुछ शिलालेखों की खोज में तुर्की आया। १९३४ में इसको इस्तन्बोल विश्वविद्यालय में नियर – ईस्टर्न स्टडीज (Near – Eastern Studies) के विभाग का निदेशक बना दिया गया। १९४५ में कुछ प्राचीन सभ्यताओं के अवशेषों की खोज में दक्षिणी तुर्की की यात्रा पर चल दिया। १९४६ में कारटेपे के काले पहाड़ों पर (इस स्थान का नाम अस्लान्तश – प्राचीन नाम किलीशिया[2] था) कई द्विभाषिक अभिलेख प्राप्त किये उनमें से एक 'फ० स० – १६१ पर दिया गया है। इसमें ऊपर की ओर उत्तरी सेमिटिक (फ़िनीशियन) लिपि है तथा नीचे हित्ती की चित्र – लिपि है। ऊपर की लिपि को दाएँ से बाएँ इस प्रकार डुपोण्ट (Dupont) तथा सोमर (Somer) ने पढ़ा :— "मेरे सारे जीवन में स्वादिष्ट भोजन तथा आनन्ददायक स्थानों की प्रचुरता रही है"[3]। नीचे की लिपि को हल – पद्धति से (दायें से बायें तथा पुनः बायें से दायें) इस प्रकार बोस्सार्ट ने पढ़ा — "मेरे दिन सन्तुष्टता, कुशलता तथा आनन्दमय जीवन के थे।"[4] इस अभिलेख का काल ई० पू० की आठवीं शताब्दी माना गया है। इसका पूर्ण विवरण एक पुस्तक[5] में दिया गया है। अब ऐसे द्विभाषिक अभिलेख कारटेपे के एक किले से लगभग ८९ प्राप्त हुए।

१९३७ तक मेरिग्गी द्वारा एक पूर्ण वर्णमाला इस लिपि की तैयार कर ली गयी थी। इस कार्य में गेल्ब ने १९३२ –३५ में तुर्की में घूम घूम कर अभिलेखों को एकत्रित करने में तथा उनको पढ़ने में बड़ा सहयोग प्रदान किया। गेल्ब ने एक वर्णावली[6] भी तैयार की जो 'फ० सं० – १६०' पर दी गई है।

इस प्रकार हित्ती लिपि तथा हित्ती साम्राज्य का इतिहास, जो अज्ञानता के अथाह सागर में अज्ञात हो गया था, सारे संसार को ज्ञात हो गया। धन्य हैं वे विद्वान् जिन्होंने अपने जीवन की आहुति भावी पीढ़ी के उपकार में दे दी।

---

1. Gordon, C. H. : Forgotten Scripts (1968), p. – 98.
2. कारटेपे के अभिलेखों में एक नृप का नाम अबारकुस था। वह किलिशिया का नरेश था। असीरिया के शासक तिगलत पलेसर ने उसको परास्त कर दिया। किलिशिया हित्ती तथा फ़िनीशिया की सभ्यताओं का एक सम्मिश्रण था। इसका काल लगभग १००० ई० पू० माना गया है।
3. इसका सर्वप्रथम अनुवाद जर्मन भाषा में तथा इंगलिश में किया गया था। यहाँ इंगलिश का पाठ दिया गया है—"In all my days there was abundance of delicacies and pleasant abode".
4. "My days were satiety and well being and pleasant living."
5. दोनों पाठ इस पुस्तक से लिये गये हैं :—
   Ceram, C. W. : Hands on the Past (1966), p. – 288.
6. Gelb, I. J. : Hittite Hieroglyphs. Vol. III. (1942), Frontis piece.

चार देशों की चित्रात्मक लिपियों की तुलना

शब्द	सिन्धु	मिस्र	सुमेर	चीन	शब्द	सिन्धु	मिस्र	सुमेर	चीन
पुरुष					सूर्य				
नृप					जल				
देवता					लकड़ी				
बैल					पत्थर				
भेड़					मार्ग				
आकाश					नगर				
तारा					देश				

फलक संख्या – १६७

चार देशों की चित्रात्मक लिपियों की तुलना

'फ० सं० – १६७' पर चार देशों – सुमेर, मिस्र, हत्तुशा तथा चीन – के कुछ चित्रात्मक चिह्न[1] दिये गये हैं जो दैनिक जीवन में उपयोगी होती थीं। उन देशों में इन चिह्नों की संख्या निम्नलिखित थी :—

देश	अक्षरात्मक चिह्न	चित्रात्मक चिह्न
१. सुमेर	लगभग १५०	लगभग ६००
२. मिस्र	,, १००	,, ७००
३. हत्तुशा	,, ६०	,, ४५०
४. चीन	,, ६२	,, ५०,०००

पठनीय सामग्री

Barnett, R, D. : "Karatepe, the Key to the Hittite Hieroglyphs" – Anitolian Studies – (1953).

Brown, P, : The World of Late Antiquity (1971).

Ceram, C. W. : Hands on the Past (1966).

Cleater, P, E. : Lost Languages (1959).

Cowley, A. E. : "Notes on Hittite Hieroglyphic Inscriptions" – J. RAS – (1917).

Ibid. : The Hittites (1920).

Daniel, G, : The Story of Decipherment (1975).

Doblhofer, E. : Voices in Stone – the Decipherment of Ancient Scripts and Writings (1961).

Finegan, J. : Light from Ancient Past (1946).

Friedrich, J. : Extinct Languages (1962).

Gelb, I. J. : Hittite Hieroglyphs, I (1931), II (1935), III (1942).

Gordon, C. H. t Forgotten Scripts (1968).

Gurney, O. R. : The Hittites (1954).

Hrozny, B. : Les inscriptions hittites hieroglyphiques – (1933).

Jensen, H. : Syn, Symbol and Script (Translated in English by George Unwin – 1970).

Palmer, G. : Archaeology – A to Z (1988 .

Sayce, A. H. : The Hittites – (1888).

Sturtevant, E. H. : A Hittite Glossary – (1936).

,, ,, ,, : A Comparative Grammar of the Hittite Language – (1933)

Thompson, R. C. : "A New Decipherment of the Hittite Hieroglyphs" – Archaeologia (64 – 1912). □

1. Gelb, I. J. : A Study of Writing (1963) p. –,98.

इस्रायल

इतिहास

लगभग चार सहस्र वर्ष पूर्व सुमेर के उर नगर – राज्य में कैल्डियन जाति का एक मूर्तिकार टेरा रहता था। उसको एक पुत्र इब्राहीम (Abraham) था। एक दिन उसने अपने पिता की मूर्तियों को तोड़ डाला। जब पिता ने आकर पूछा कि यह मूर्तियाँ किसने तोड़ी हैं तो उसने उत्तर दिया कि मूर्तियों में झगड़ा हो गया। बड़ी मूर्ति ने छोटी मूर्तियों को डण्डे से तोड़ डाला। पिता ने कहा कि कहीं मूर्तियाँ भी लड़ सकती हैं। तो उसने उत्तर दिया कि जब वह लड़ नहीं सकतीं तो किसी का बुरा या भला कैसे कर सकती हैं तो फिर इनको पूजने से क्या लाभ? यह बातें विद्रोह उत्पन्न करने वाली थीं। जब राजा तथा प्रजा मूर्ति पूजक थे तो इब्राहीम के यह विचार बड़े क्रान्तिकारी प्रतीत हुए। पिता ने कहा कि अच्छा होगा यदि इस राज्य को छोड़ कर चले जाओ और तब इब्राहीम अपने कुछ सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ, जिनके विचारों में साम्य था, पश्चिम की ओर चल दिये।

चलते चलते वे कनआन देश के हेब्रोन नगर में पहुँचे। वहाँ के निवासी इसको इब्री (अर्थात् उस पार से आने वाले) सम्बोधित करने लगे। उस समय कनआन में उत्तर की ओर अमोर जाति का राज्य था जिनकी राजधानी काडेश थी। पूर्व की ओर अराम जाति का तथा मोआब व एमोन जाति का राज्य था। इब्राहीम की दो पत्नियाँ थीं और उनसे दो पुत्र थे। एक का नाम ईसाक़ तथा दूसरे का इस्माइल था। ईसाक़ के पुत्र का नाम जैकब[1] (याकूब) था। याकूब के कई पुत्र थे। उनमें से एक का नाम युसुफ़ था जो अपने भाइयों के अत्याचारों के कारण एक काफ़िले के साथ मिस्र चला गया। काफ़िले वालों ने उसको मिस्र के एक पदाधिकारी के हाथ बेच दिया।

पदाधिकारी युसुफ़ की सच्चाई पर मुग्ध हो गया और मिस्र के राजा[2] के यहाँ उसको अच्छी नौकरी दिलवा दी। इन्हीं दिनों कनआन में अकाल पड़ा जिसके कारण उसके भाई तथा अन्य सम्बन्धी स्थानान्तरण करके मिस्र पहुँच गये और वहीं स्थायी रूप से निवास करने लगे। अब इनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी परन्तु यह लोग मिस्र के धार्मिक विचारों से सदैव पृथक् रहे। मिस्र निवासी मूर्ति – पूजक थे परन्तु यह एकेश्वरवादी थे। मिस्रियों ने इनका नाम इब्री से हिब्रू (हेब्रू) कर दिया तथा इनको अपने सामाजिक स्तर से निम्न समझा। यही नहीं उनको अपना दास समझ कर हर प्रकार का निम्न कार्य उनसे करवाया। उनके नवशिशुओं को मौत के घाट उतारा। उन्हीं हिब्रू लोगों का एक शिशु को, जो उसकी माता ने एक टोकरी में रख कर नदी में बहा दिया था वहाँ के शासक फ़ेराओं की बहन ने पाल लिया। उसका नाम मोजेज़ (मूसा)

---

1. यह भी अरमायक भाषा का प्रयोग करते थे।
2. इस काल में हिक्सास जाति का शासन था। हेब्रू जाति को अधिक कष्ट सहन नहीं करने पड़ते थे।

पड़ा। अमोज़ेज़को जब मालूम हुआ कि वह हेब्रू है तो वह उनकी सहायता करने लगा तथा उनको फ़ेराओ के अत्याचारों से बचाने की सोचने लगा। तब एक दिन आया कि वह अपनी जाति के सब लोगों को १२६० ई० पू० में मिस्र से निकाल कर ले चला। इस समय मिस्र का शासक रेमेसीज़ द्वितीय था।

सिनाइ के रेगिस्तान के कष्टों का सामना करते हुए यह लोग फिर कनआन पहुँचे। जब यह लोग सिनाइ में पड़ाव डाले हुए थे तब मोज़ेज़ एक पहाड़ी पर, जिसका नाम माउण्ट सिनाइ (कोहेतूर) था चढ़ गया, जहाँ ख़ुदा से दस आज्ञायें हेब्रू (भाषा व लिपि) में प्राप्त कीं। इसी पैग़ाम के कारण वह पैग़म्बर हो गया। मोज़ेज़ के पश्चात् जशुआ इनका नेता बना और उसी के कारण इस जाति के लोगों के पैर जम सके। शनैः शनैः इन लोगों ने अपना एक राज्य स्थापित कर लिया। अब यह लोग बारह जातियों में विभाजित हो गये और प्रत्येक जाति का एक न्यायाधीश (जज) होने लगा। क्योंकि इन लोगों को अन्य जातियों तथा राज्यों से युद्ध करना पड़ता था। इस कारण इनको एक राज्य, एक राजधानी तथा एक राजा की आवश्यकता प्रतीत हुई जो सबको अपनी आज्ञा में रख सके तथा दूसरी जातियों से युद्ध करने की क्षमता रखे। ऐसे मनुष्य की तलाश होने लगी और उनको एक ग्राम निवासी वीर मिल ही गया जिसका नाम साल था जो इस जाति का प्रथम शासक बना और इसने १०२० से ९८९ ई० पू० तक राज्य किया। इसने आत्महत्या कर ली।

९९० ई० पू० में डेविड (दाऊद) राजा हुआ तथा उसके स्वर्गवास हो जाने पर ९६६ में उसका पुत्र सालोमन (सुलेमान) शासक बना जो उस समय का एक महान् तथा बहुत धनी राजा समझा जाता था। इसी ने जेरुसेलम की राजधानी का बहुत सुन्दर निर्माण कराया तथा जेहोवा का एक भव्य मन्दिर बनवाया। राज्य का विस्तार किया। प्रजा को समृद्ध बनाया और संसार के इतिहास में एक प्रसिद्ध राजा हो गया। ९२७ ई० पू० में इस धनवान् राजा की मृत्यु हो गई।

इसके मरणोपरान्त इस्रायल का राज्य तथा उनकी बारह जातियाँ ९३७ में विभाजित हो गये। उत्तर का भाग इस्रायल कहलाया जिसमें दस जातियाँ थीं तथा दक्षिण का राज्य जूडा कहलाया जिसमें दो जातियाँ थीं। सालोमन का एक सैनिक उच्च पदाधिकारी जेरोबोम इस्रायल का शासक बना तथा दक्षिण में जूडा राज्य का शासक सालोमन का पुत्र रेहोबोम बना। इस्रायल के सहयोगी अरामी बने तथा जूडा के सहायक एडोम तथा दक्षिण फ़िलिस्तीन (Palestine) के निवासी बने।

इस्रायल के राजा जेरोबोम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नदाब शासक बना। इसने फ़िलिस्तीन के नगर जिब्बेथान (Gibbethon) पर आक्रमण कर दिया परन्तु विजय न कर सका और वीर गति को प्राप्त हुआ। इस्रायल के राजसिंहासन पर बाशा आरूढ़ हो गया। अब इसी बीच रेहोबोम के पुत्र अबीजाह ने इस्रायल पर आक्रमण कर दिया। अबीजाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र असा जूडा का राजा बना। इस्राइल के बाशा की मृत्यु होने पर उसका पुत्र एलाह राजा बना जिसने केवल दो वर्ष शासन किया और दो वर्ष पश्चात् इसका वध एक सैनिक अधिकारी ज़िमरी ने कर दिया और स्वयं शासक बन गया। तब एक दूसरे सैनिक अधिकारी उमरी ने ज़िमरी का वध कर दिया। तत्पश्चात् एक और सैनिक उमरी के विरुद्ध हो गया उसका भी वध कर दिया गया। अब उमरी का कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा और वह इस्रायल की दस जातियों द्वारा राजा चुन लिया गया। इसने एक पहाड़ी पर राजधानी का निर्माण किया जिसका नाम समारिया पड़ा। इस्रायल की दस जातियों पर शलमनेसर चतुर्थ ने आक्रमण कर दिया और उसकी मृत्यु के पश्चात् सरगोन द्वितीय ७२१ ई० पू० में इन दस जातियों को परास्त कर एवं बन्दी बना कर

असीरिया ले गया। बहुत से लोगों को इसने मीडिया राज्य को भेज दिया। इस प्रकार इस्रायल की दस जातियाँ इतिहास के पृष्ठों से लोप हो गईं।

कैल्डियन साम्राज्य के, जिसको नवीन बेबीलोनिया के नाम से भी सम्बोधित करते हैं, शासक नेबूपलासर ने अपने पुत्र नेबूकदनेज़ार को कारकिमिश में मिस्र की सेना को परास्त करने भेजा। तदोपरान्त नेबूकदनेज़ार ने ६०७ में जूडा के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उस समय जेहोइयाकिम (Jehoiachim — यह लोग भी अपने एक ख़ुदा का नाम जेहोवा अपने नाम के पूर्व लगाते थे) शासक था। आक्रमण से पूर्व ही वह चल बसा। तत्पश्चात् उसका पुत्र शासक बना जिसका नाम जेहोइयाकिन (Jehoiachin) था। आक्रमण के पश्चात् तीन माह तक युद्ध करता रहा और बाद में समर्पण कर दिया। जेहोइयाकिन अपनी माँ तथा शासन के उच्च पदाधिकारियों के साथ बन्दी बना लिया गया। नेबूकदनेज़ार ने कई शिल्पकार भी बन्दी बनाये और इन सबको वह बेबीलोन ले गया।

५९९ ई० पू० में नेबूकदनेज़ार बेबीलोनिया का शासक बनने के पश्चात्, जब कि जेहोइयाकिम का भाई ज़ेडेकिया राज्य कर रहा था, जेरुसेलम पर फिर आक्रमण कर दिया। इसका मुख्य कारण था ज़ेडेकिया का बेबीलोन से विरुद्ध होकर मिस्र से मित्रता करना। चार माह के पश्चात् जूडा की पराजय हुई। ज़ेडेकिया भाग गया परन्तु पकड़ा गया। उसके दो पुत्रों का उसी के समक्ष वध कर दिया गया तथा उसको अन्धा बना दिया गया और बेबीलोन ले जाया गया। एक माह पश्चात् फिर एक सैनिक नेबू ज़रादन को भेजा गया जिसने और नरसंहार किया, ज़ेरुसेलम के पवित्र मन्दिर को नष्ट कर दिया तथा जूडा व बेंजामिन की दो ज़ातियों के लोगों को बन्दी बना कर बेबीलोन ले गया।

लगभग पैंसठ वर्ष बन्दी रह कर जब यह जूडा जाति अपनी पवित्र जन्म भूमि पर लौटी तो फिर से जेरुसेलम के मन्दिर को बनवाकर उसके चारों ओर की भूमि को लेकर राज्य करने लगी। परन्तु इस जाति को शान्ति न मिली। किसी न किसी राज्य या जाति का इस पर कोप होता ही रहा। अन्त में सिकन्दर के आक्रमण तथा रोम के आक्रमणों ने इस जाति के लोगों को निर्वासित होने पर बाध्य कर दिया और शनैः शनैः यह लोग अपनी जन्मभूमि छोड़ कर सारे विश्व में फैल गये और अपने सीने में उसकी याद दबाये रहे।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अमरीका ने इनको वचन दिया कि वह इनकी पवित्र भूमि वापस दिलवायेगा। १४ मई १९४८ को पैलेस्टाइन को विभाजित कर इस्रायल को पवित्र भूमि का टुकड़ा दिलवा दिया गया और देश उन्हीं के नाम पर इस्रायल कहलाने लगा। बिछुड़े फिर मिल गये।

फिर भी इस देश को शान्ति न मिली। चारों ओर से मुस्लिम राज्यों द्वारा घिरा हुआ यह देश सदैव काँटे की तरह खटकता रहा। छोटे मोटे झगड़े बराबर चलते रहे। सभी देश युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। मिस्र के नासिर (स्वर्गवासी हो चुके) ने कई प्रकार की रोकें लगाईं और एक दिन इस्रायल ने अचानक मिस्र पर आक्रमण कर दिया तथा स्वेज़ नहर तक सारे सिनाइ प्रान्त पर अधिकार कर लिया जिसको अवैध माना जाता है। १९८१ में मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात ने इस्रायल से सन्धि कर ली जिससे अनेक मुस्लिम राज्य उनके विरुद्ध हो गये और उनका वध कर दिया गया। १९८२ में सिनाइ पुनः मिस्र को वापस मिल गया।

इस्रायल की लिपियाँ

हेब्रू लोगों की भाषा हेब्रू थी। इस भाषा **की** लिपि भी हेब्रू कहलाती है। इन लोगों का यह पूर्ण विश्वास है कि इस लिपि का जन्म जेहोवा (भगवान्) द्वारा उस समय हुआ जब मोज़ेज़ (मूसा) उनको मिस्र के अत्याचारों से मुक्ति दिला कर कनआन की ओर ला रहा था तब सिनाइ प्रायद्वीप की एक पहाड़ी माउण्ट

इस्राायल जाति का इतिहास -- आदि से आज तक
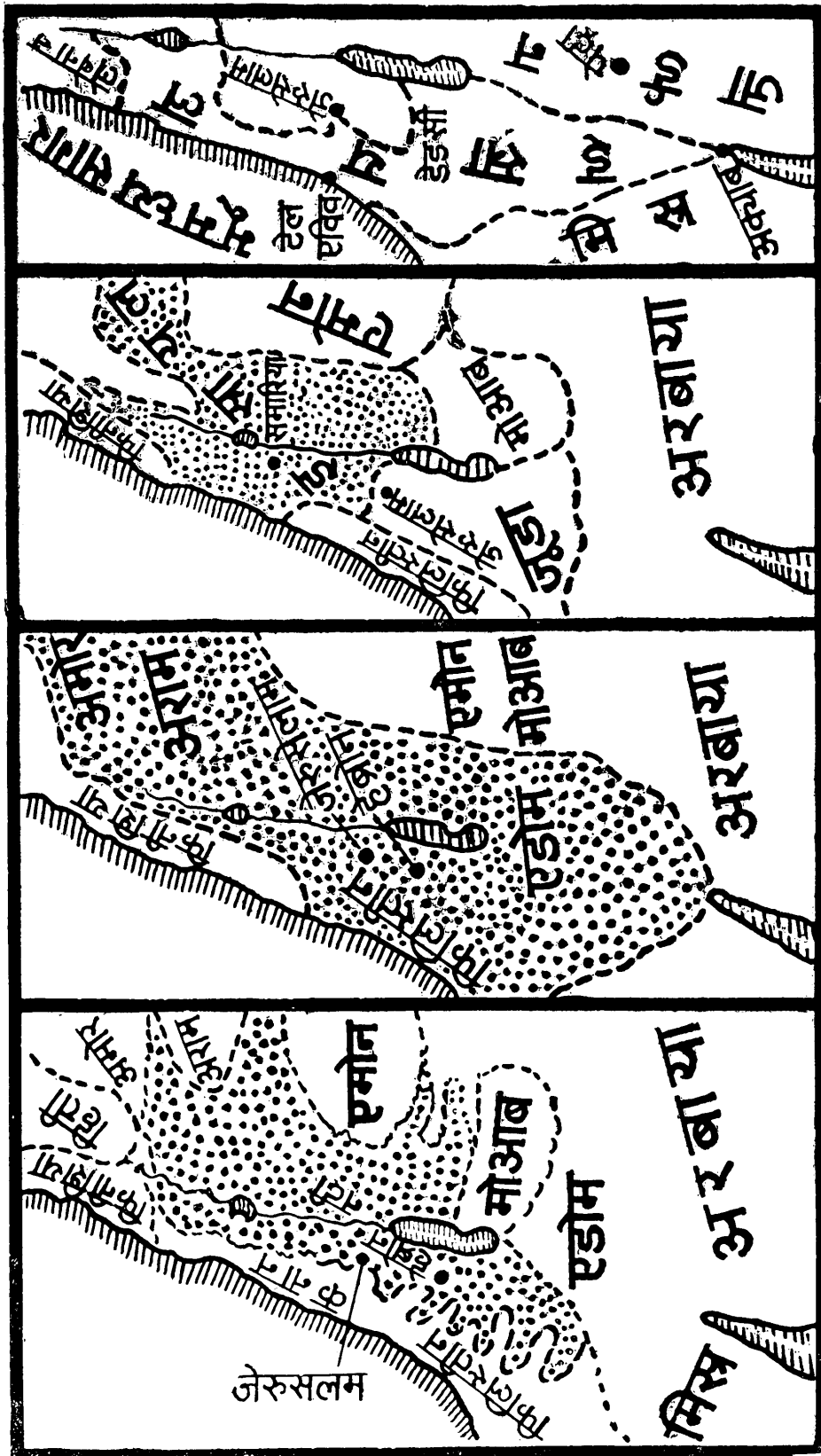
फलक संख्या – १६८

हेब्रू लिपि की वर्णमाला (बायें से)

ध्वनि	ख़	ज़	व	ह	द	ग/ज	ब	अ
नाम	खेथ	ज़ैन	वाव	हे	दलेथ	गिमेल	बेथ	अलेफ़
प्राचीन								
आधु०	ח	ז	ו	ה	ד	ג	ב	א
ध्वनि	अँ	स	न	म	ल	क	इए	त
नाम	ऐन	समेख	नून	मीम	लमेद	कॉफ़	योद	तेथ
प्राचीन								
आधु०	ע	ס	נ	מ	ל	כ	י	ט
ध्वनि	त	श	स	र	क़	त्स	फ़	प
नाम	ताव	शीन	सीन	रेश	क़ाफ़	त्सादी	फ़े	पे
प्राचीन								
आधु०	ת	שׁ	שׂ	ר	ק	צ	פ	פּ

फलक संख्या – १६९

सिनाई (कोहेतूर) पर जेहोवा ने मोज़ेज़ को एक पत्थर की पाटिया पर दस आज्ञायें प्रदान कीं, परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए अभी तक कोई वैज्ञानिक प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका।

जब ई० पू० की आठवीं श० में सरगोन द्वितीय द्वारा तथा सातवीं श० के आरम्भ में नेबूकदनेज़ार द्वारा इस्रायल की दोनों जातियाँ निर्वासित कर दी गईं तो सम्भव है कि पौराणिक हेब्रू लिपि लोप हो गई हो, परन्तु इस्रायल की दो जातियों को सातवीं श० के अन्त में सायरस ने बन्दीगृह से मुक्त कर दिया। जूडा जाति के लोग, जो अब यहूदी कहलाने लगे थे, अपनी जन्म भूमि पर पुनः आकर बसने लगे। इन्हीं लोगों ने शनैः शनैः अरमायक लिपि से एक नवीन लिपि का आविष्कार किया जो पुरातत्त्व वेत्ताओं को उन्नसवीं श० में 'किताब मुरब्बा' (Square Hebrew) अर्थात् चौकोर – हेब्रू के नाम से ज्ञात हुई।

हेब्रू लिपि के प्रतिदर्श (दाये से)

. म व क़ म ब . म व ल श ज ह ज

त व म व क़ म ल क ब व . ह ज़ ह

ह ज ब र अ॑   ल अ र श ज

फलक संख्या – १७०

यह लिपि ई० पू० की चौथी व तीसरी श० में किलिशिया से प्राप्त अरमायक अभिलेखों द्वारा विकसित की गई जो वास्तव में प्रामाणिक हेब्रू मानी गई तथा कुछ संशोधन के साथ आज तक प्रचलित है। इस लिपि का प्राचीनतम तथा सबसे छोटा अभिलेख अरक़ – अल – अमीर (Araq – el – Amir) से प्राप्त हुआ। अरक़ – अल – अमीर की चट्टान पर निर्मित एक प्राचीन महल है जो जार्डन नदी व डेड सी (Dead Sea) के संगम से १५ मील उत्तर – पूर्व में स्थित है। इस अभिलेख का काल १८० ई० पू० निर्धारित किया गया है।

एक दूसरा लेख गैलिली (पैलेस्टाइन का उत्तरी ६० मील लम्बा तथा ३० मील चौड़ा मण्डल या खण्ड) के एक नगर कफ़्र बिराईम (Kafr Bir – a – im) के यहूदी – मन्दिर (Synagogue) से प्राप्त हुआ। इसका काल ईसा की प्रथम शताब्दी निर्धारित किया गया है।

इन दोनों अभिलेखों का रहस्योद्घाटन लिद्ज़बार्स्की (Lidzbarski) ने किया। इन दोनों अभिलेखों के वर्ण, आधुनिक हेब्रू[1] की वर्णमाला व ध्वनि के साथ 'फ० सं० – १६९' पर दिये गये हैं।

नीचे बाईं ओर 'अरबजह'[2] लिखा है अर्थात् अरबइहा = अरबिया – प्राचीन महल के अभिलेख से तथा (इसको दाएँ से बाएँ) यहूदी – मन्दिर के अभिलेख से लिये गये शब्द जिसके अर्थ हैं :— इस निवास स्थान पर तथा इस्रायल के सब निवास स्थानों पर (भगवान् करे) शान्ति हो[3] (फ० सं० – १७०)।

आधुनिक हेब्रू लिपि के वर्णों की ध्वनियाँ तथा नाम व अर्थ जो 'फ० सं० – १४५ पर दिये गये हैं।

ध्वनि	नाम	अर्थ
अ	अलेफ़	बैल
ब	बेथ	घर
ग/ज	गिमेल (जमल)	ऊँट
द	दलेथ	द्वार
इ	हे	खिड़की
व	वान	हुक (काँटा)
ज़	ज़ैन	अस्त्र
ह	हेथ	बाढ़
थ	तथ	साँप
ई/ज/य[4]	योध	हाथ
क	काफ	हथेली
ल	लमेद	बैल का अंकुश
म	मीम	पानी
:	नून	मछली
क्स	समेख	पोर्ट (Port)
ऑ	ऐन	आँख

1. Rabbi Joseph Zeitlin : Hebrew Made Easy (1955), p. – 12.
2. दूसरा अर्थ 'अरबिजह' भी आते हैं। अरबिजह सालोमन राजा का पौत्र था। इसको लिटमान ने 'तोबिजह' पढ़ा तथा लिद्ज़बार्स्की ने 'अरबिजह' पढ़ा। दोनों अभिलेख निम्नलिखित पुस्तक में दिये हैं।
   Lidzbarski : Handbuch der nord semitique Epigraphes. Vol. 1., p. – 185.
3. इसका अनुवाद लिया गया है :—
   Neubauer : Facsimiles of Hebrew Manuscripts with Transcriptions. (Oxford – 1886), p. – 321.
4. Jordon जार्डन यार्दानिया
   Jacob जैकब याकूब

ध्वनि	नाम	अर्थ
प	पे	मुंह
स	सादे	बल्लम
क़	क़ॉफ	गाँठ
र	रेश	सिर
श	शीन	दांत
त	ताउ	निशान

समारिया की लिपियां

समारिया पैलेस्टाइन का एक छोटा सा प्रान्त था। इस्रायल की दस जातियाँ (उत्तर की) जो जूडा वाली दो जातियों (दक्षिण की) से पृथक् हो गई थीं निरन्तर युद्ध में रत रहती थीं। उस समय न उनका कोई राज्य था और न राजा। उनका एक उच्च सैनिक पदाधिकारी उमरी ८८४ ई० पू० में राजा निर्वाचित हुआ। उमरी ने शिमिर से एक पहाड़ी (माउण्ट गिरजिन) ख़रीद ली और उस पर अपनी नई राजधानी का निर्माण किया। उमरी के मरणोपरान्त उसका पुत्र जेहू फिर पौत्र अहाब शासक बना। अहाब के पश्चात् जेरोबोम द्वितीय ८२३ में सिंहासनारूढ़ हुआ, उसने अपने राज्य का विस्तार किया। इसने ७७२ ई० पू० तक राज्य विस्तार किया। तदनन्तर कुछ छोटे छोटे राजा राज्य करते रहे।

असीरिया के राजा शलमनेसर चतुर्थ ने ७२५ ई० पू० में तीन वर्ष तक समारिया का घेरा डाले रखा। ७२२ में उसकी वहीं मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् सरगोन द्वितीय असीरिया का शासक बना तथा समारिया को परास्त कर वहाँ के २७००० निवासियों को निर्वासित कर एक दूसरी जाति को, जो उमरी के पूर्व यहाँ निवास करती थी, यहाँ बसाया। इस प्रकार इस्रायल की दस जातियाँ लोप हो गईं। इसके पश्चात् ग्रीस से सिकन्दर ने ३३२ ई० पू० में तथा रोम के राजा हिरकैनस ने १०७ ई० पू० में इसको और नष्ट किया।

ई० पू० की चौथी श० में कुछ बचे हुए यहूदी जाति के लोगों ने एक नई धार्मिक जाति की आधार शिला रखी तथा उसी पहाड़ी पर पुरानी ईंटों से एक मन्दिर का निर्माण किया तथा सेबास्टिया के नाम से एक गाँव बसाया। इसका दूसरा केन्द्र नेबलस (आ० शिकिम) के पास बना है। इसी धार्मिक जाति के पास समारिया की प्राचीन तीन प्रकार (शिलालेख, पुस्तक – लेख तथा शीघ्र – लेख) की लिपियाँ[1] ईसवी सन् की पाँचवीं श० की आज तक सुरक्षित हैं, जिनको 'फ० सं० – १७१' पर दिया गया है। इसका उत्खनन हारवर्ड विश्वविद्यालय के तीन विद्वानों (राइसनर, फ़िशर, लेयान) ने १९०८ – १० में सम्पन्न किया तथा उसको एक पुस्तक[2] में प्रकाशित किया। यह कनआनी लिपि की एक शाखा[3] है।

1. Lidzbarski : Handbuch der nordsemitique Epigraphic, Part 1, p. – 185.
2. Reissner, Fisler, Lyon: Harvard Excavations at Samaria (1924), p. – 227.
3. Ibid. p. – 439.

समारिया की लिपियाँ -- चौथी श० ई०

ध्व०	शिलालेख	बाइबिल्ल	शीघ्र ले०	ध्व०	शिलालेख	बाइबिल्ल	शीघ्र ले०
अ				ल			
ब				म			
ग/ज				न			
द				स			
ह				अ			
व				प			
ज़				स			
ख़				क़			
ट				र			
ज				श			
क				त			

फलक संख्या – १७१

पठनीय सामग्री

Burney, C. F. : Israel's Settlement in Canaan (Lectures of 1917).

Carleton, P. : Buried Empires.

Chwolson : Corpus inscriptionum Hebraicarum (St. Petersburg – 1982).

Clodd, E. : The Story of the Alphabet (NY – 1938).

Cooke, G. A. : A Text Book of North Semitic Inscriptions (1903).

Cross, F. M. : 'The Evolution of the Proto – Canaanite Alphabet' – Bulletin of the American Schools of Oriental Researches. No. 134 (1954).

Driver, G. R. : Semitic Writing (London – 1948).

Finegan, J. : Light from Ancient Past (1946).

,, : Archaeological History of Ancient Middle – East (1979).

Jensen, H. : Syn, Symbol and Script (1970).

Keans : Man's Past and Present.

Koestler, A. : Birth of Israel (1949).

Lidzbarski : Kanaan Inschriften (1907).

Martine, W. J. : The Origin of Writing (1943).

Neubauer : Fescimiles of Hebrew Manuscripts with Transcriptions (Oxford – 1886).

Nöldeke : Beitr. z. Semit. Sprachwiss (1904).

Noth, M, : Die Welt des Alten Testaments (1940).

Ullman, B. L. : Ancient Writing and its Influence (NY. – 1932).

□

सीरिया

इतिहास

सीरिया (सूरिया) के देश पर आक्रमण करने वालों में से सर्वप्रथम सुमेर निवासी थे। तत्पश्चात् अक्काद – नरेश नरमसिन (२२९१ – २२५५ ई० पू०) ने इस देश पर शासन किया। ई० पू० की पन्द्रहवीं श० से हुरियन जाति के शासकों के अधीन रहा। १३५० ई० पू० में हित्ती जाति के एक प्रतापी नरेश शुपीलूलीमाश ने हुरियनों को परास्त कर सीरिया को अपने अधीन कर लिया और लगभग २०० वर्ष तक हित्ती राज्य में रहा परन्तु इनका राजनैतिक केन्द्र कारकेमिश था। अन्त में असीरिया के नरेश अशुर – उबालित प्रथम के अधीन रहा।

ई० पू० की तेरहवीं श० में सीरिया का दक्षिणी भाग अरामियों के अधीन था जिसकी राजधानी डेमसकस (दमिश्क) थी। इसी बीच मिस्र को छोड़ कर शान्ति तथा स्वतन्त्र जीवन विताने की आशा से हेब्रू जाति के लोग पैलेस्टाइन के पास बसने लगे। ९०० ई० पू० में यह जूडा (दक्षिण में दो जातियाँ) तथा इस्रायल (उत्तर में दस जातियाँ) के नाम से ज्ञात होने लगे। इनमें तथा अरामियों में सदैव युद्ध होते रहे। इन जूडा व इस्रायलों के मुख्य केन्द्र जेरुसेलम और समारिया थे।

डैमसकस को ७३२ ई० पू० में तिघलतपलेसर ने परास्त किया तत्पश्चात् समारियों ने परास्त किया। ५८६ ई० पू० में यह बेबीलोनिया के राज्य में नेबूकदनेज़ार द्वारा सम्मिलित कर लिया गया। ५३९ में पर्शिया नरेश सायरस ने पराजित किया तथा डैरियस ने इसको अपने साम्राज्य का एक प्रान्त बना लिया। ३३२ ई० पू० में यह ग्रीस के अधीन (सिकन्दर द्वारा) हो गया। अब उत्तरी भाग सेल्युकस के तथा दक्षिणी भाग मिस्र के टॉलेमी राजाओं के अधीन हो गया। रोम नरेश ऐण्टीओकस तृतीय ने लगभग २०० ई० पू० में टॉलेमी को हरा कर इसका दक्षिणी भाग अपने अधीन कर लिया तदनन्तर सेल्युकस के वंशज – नरेश को हरा कर पूर्ण सीरिया अपने अधीन कर लिया जो ६३६ ई० तक रोम साम्राज्य का एक प्रान्त बन कर रहा। तत्पश्चात् यह मुसलमानों के अधीन रहा।

तदुपरान्त १५१६ में यह तुर्कों के हाथ में आ गया जो १९१८ तक रहा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इस देश की देखरेख फ्रांस ने की और १७ अप्रैल १९४६ को पूर्ण स्वतन्त्र हो गया।

इस देश की कोई मुख्य लिपि न थी। काल – परिस्थिति के अनुसार यह दूसरों की लिपियों को अपनाता गया। यहाँ कई प्रकार की लिपियाँ आईं और परिवर्तित होती रहीं। प्राचीनतम् अरमायक विदित होती है जो फ़िनशियन लिपि (या जिसका दूसरा नाम उत्तरी सेमेटिक लिपि) से विकसित हुई। परन्तु ग्रीस के पूर्वी चर्च से सम्बन्धित होने के कारण तथा उनमें भी कई मत – मतान्तर होने के कारण ईसा की पाँचवीं श० से कई प्रकार की लिपियाँ दृष्टिगोचर होती हैं जिनकी चर्चा आगे विस्तार से की गई है। इनका मुख्य नगर एडेसा था।

सीरिया

आधुनिक सीमा

फलक संख्या – १७२

सीरिया की लिपियां

अरमायक लिपि : उत्तरी – सेमिटिक भाषा – भाषी जातियों का ।एक संघसमुदाय शनैः शनैः ई० पू० की बारहवीं श० से अरम (डैमसकस – दमिश्क) में आकर बसने लगे । असीरिया नरेश तिगलत पलेसर प्रथम (१११६ – १०७६ ई० पू०) ने लगभग २८ बार इन पर आक्रमण किया । ग्यारहवीं श० के अन्त तक अरामियन लोगों ने कारकेमिश के निकट अपना एक राज्य बित – अदीनी के नाम से स्थापित कर लिया[1] । तत्पश्चात् इन्होंने अपने राज्य का विस्तार समाल (ज़िन्ज़र्ली) तथा हमाथ तक कर लिया ।

१०३० ई० पू० में ज़ोबाह के नरेश हदादेज़ेर[2] ने अन्य सेमिटिक जातियों के सहयोग से इस्रायल पर तीन बार आक्रमण किया परन्तु तीनों वार डेविड (दाऊद) द्वारा पराजित हुए । बर हदाद द्वितीय ने इस्रायल के राजा अहाब (८७५ – ८५२ ई० पू०) से सन्धि कर ली ।

ग्यारहवीं श० के अन्त तक अरामियन ज़ातियों ने – जो अब कल्डू, कश्डू, कैल्डियन आदि के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे थे — बेबीलोनिया से भू – मध्य – सागर तक के राज्यों को अपने अधीन कर लिया था । इस प्रकार असीरिया भी इसी घेरे में आ गया था । परन्तु अशुर बनी पाल द्वितीय (८८४ से ८५९ तक राज्य किया) ने आक्रमण कर दिया । शलमनासिर तृतीय ने ८५६ में बित अदीनी पर आक्रमण किया जिसमें उसको अरम, हमाथ, फ़िनीशिया तथा इस्रायल की सेनाओं का सामना करना पड़ा और युद्ध निष्कर्ष रहित रहा । परन्तु शलमनासिर ने पुनः ८३८ में आक्रमण करके अपनी भूमि वापस ले ली । लगभग सौ वर्ष तक सन्धियाँ तथा युद्ध होते रहे ।

७४० ई० पू० में तिगलत पलेसर तृतीय ने अरामियन केन्द्र अर्पद का भूभाग ले लिया । ७३४ में समारिया तथा ७३२ में अरम भी अपने अधीन कर लिया । अन्तिम बार ७२० ई० पू० में सरगौन द्वितीय ने हमाथ पर आक्रमण करके अरामियन राज्य का अन्त कर दिया । राज्य के अन्त होने से भी अरामियन जाति का अन्त नहीं हुआ । वे लोग अब बेबीलोनिया में बस गये और कैल्डियन कहलाने लगे । उनका शासक मेरोदोख़ बलादन असीरिया के आक्रमणों का ७२२ से ७१० तक सामना करता रहा । उसके मरणोपरान्त लगभग लाखों अरामियन लोगों को बेबीलोनिया से खदेड़ दिया गया तथा ६८९ में बेबीलोनिया नष्ट – भ्रष्ट कर दिया गया । इसी बीच ६२६ में एक शूरवीर सैनिक पदाधिकारी नेबूपलासर बेबीलोनिया का नृप बन गया और सीथियन तथा मीडीज़ लोगों की सहायता से असीरिया को सदा के लिए समाप्त कर दिया । अब अरामियन बेबीलोनियन हो गये ।

इस लिपि का जन्म तथा विकास उत्तरी सेमिटिक लिपि (फ़िनीशियन) द्वारा लगभग दसवीं श० ई० पू० में हुआ । इसके प्राचीनतम अभिलेख सीरिया के उत्तर में कर्ज़ीन व ज़ेनजर्ली के नगरों से १८९० में प्राप्त हुए । यह अभिलेख मुख्य देवता हदाद की विशाल मूर्ति पर उत्कीर्ण किये गये थे । इन अभिलेखों का काल ई० पू० की नवीं श० निर्धारित किया गया है । 'फ० सं० – १७३' के प्रथम कॉलम में इसकी वर्णमाला[3] दी गई है । इसके लिखने की दिशा दायें से बायें थी । इसका रहस्योद्घाटन यस० ए० कुक ने १८९७ में किया ।

1. Encyclopaedia Britannica, Vol. II., p. – 207.
2. असीरिया के अभिलेखों में 'हदादेज़ेर' नाम है ।
   हेब्रू भाषा में—बेन हदाद । अक्कादियन भाषा में—बर हदाद । अरमायक भाषा में—अदाद इदरी ।
3. Cook, S. A. : A Glossary of Aramaic Inscriptions (1898), p. – 203 से इसकी वर्णमाला ली गई है ।

पालमीरा लिपि : लैटिन (लातीनी) भाषा में इसको 'पालमीरा' तथा स्थानीय भाषा में इसको 'टेडमोर' (आ० तादमूर) कहते हैं। यह डैमसकस (दमिश्क – सीरिया की राज़धानी) से पूरब की ओर १३५ मील पर सीरिया के मरुस्थल में एक मरूद्यान के निकट स्थित है। ई० पू० की ग्यारहवीं श० में इसकी चर्चा तिगलत पलेसर प्रथम (१११४ – १०१६ ई० पू०) के अभिलेखों में दृष्टिगोचर होती है। यह एक नगर – राज्य था। पश्चिमी एशिया के अन्य देशों की तरह यह भी असीरिया, बेबीलोनिया तथा पर्शिया आदि के आक्रमणों की ज्वाला में धधकता रहा, परन्तु ईसा की द्वितीय श० में समृद्ध हो गया। यह काल रोमन राज्य का था। इस पर पुबलियस अक्लियस हैद्रियानस (Publius Aelius Hadrianus) का राज्य था।

२६० ई० में उदेनाथस (उदयनात – Odenathus) ने, जो अब तक हैद्रियन के अन्तर्गत एक अधीन नृप था, पालमीरा को अपने एक नये राज्य के रूप में स्थापित किया और स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी परन्तु उसका वध करवा दिया गया। तत्पश्चात् २७३ में उसकी पत्नी ज़ेनोबिया (Zenobia – बाथ ज़ेबाज) शासक बनी। उसको बन्दी बना कर रोम ले जाया गया तथा पालमीरा पुनः रोमन राज्य का एक अंग बन गया शनैः शनैः यह पतन की ओर बढ़ता रहा तथा एक दिन इतना गिर गया कि उठ न सका।

इसकी दो प्रकार की लिपियाँ थीं। एक अलंकृत तथा दूसरी हस्त – लेखन[1]। अलंकृत लिपि का प्रयोग अधिकतर स्मारकों पर उत्कीर्ण करने के लिए किया जाता था तथा हस्त – लेखन का प्रयोग हस्त – लिखित पुस्तकों तथा पत्रों आदि के लिए किया जाता था। अलंकृत लिपि का प्राचीनतम अभिलेख १६७८ में प्राप्त हुआ जिसका काल ई० पू० की नवीं श० माना गया है। इस अभिलेख[2] की भाषा अरमायक थी।

हस्त – लिखित अभिलेख पालमीरा से प्राप्त नहीं हुए बल्कि इटली से प्राप्त हुए। सम्भवतः रोमन राज्य काल में पाण्डुलिपियों को रोम ले जाया गया होगा। अलंकृत लिपि की वर्णमाला[3] 'फ० सं० – १७३' के द्वितीय कॉलम में दी गई है तथा हस्त – लिखित की तृतीय कॉलम में दी गई है।

अलंकृत लिपि[4] का रहस्योद्घाटन स्वीण्टन (Swinton) ने स्वतन्त्र रूप से किया और अपना शोध – लेख ऑक्सफ़ोर्ड की रॉयल सोसायटी के समक्ष २० जून १७५४ में पढ़ा। हस्त – लिखित[5] लिपि का अब्बे बार्थेलेमी (Abbe Barthelemy) ने रहस्योद्घाटन पेरिस में किया तथा अपना शोध – लेख अकादमी दि इन्सक्रिप्शन्स (Academie de Inscriptions) के समक्ष १२ फ़रवरी १७५४ को पढ़ा।

'फ० सं० – १७३' पर नीचे की ओर एक लघु अभिलेख[6] भी लिप्यन्तरण तथा अनुवाद (लेखक ने किया है) सहित दिया गया है।

अरमायक लिपि की एक विशिष्ट शाखा : ई० पू० की पांचवीं से तीसरी शताब्दी के अभिलेखों में दृष्टिगोचर हुई। यह अभिलेख किलिशिया (एशिया माइनर के दक्षिण में स्थित) तथा मिस्र से प्राप्त हुए। इसका उद्भव प्राचीन अरमायक से हुआ। इसका रहस्योद्घाटन नोल्डेकी (Nöldeke) ने १८९२ में किया था। इस लिपि की वर्णमाला तथा एक अभिलेख 'फ० सं० – १७४' पर दिये गये हैं।

---

1. इन दोनों लिपियों का वर्णन इस पुस्तक से लिया गया है :—
   De Vogüe : Syric Centrale, Inscriptions Semitique (1868), p. – 235.
2. Chabot : Choix d' inscriptions de Palmyre (1924), p. – 202.
3. Littmann : Syriac Inscriptions (1934), p. – 57.
4. Pope, M. : The Story of Decipherment (London – 1975), p. – 94.
5. Lidzbarski : Hand buch der nord semitique Epigraphic Part 1. (1908), p. – 309.
6. Cantineu : Inventaire des inscriptions de Palmyre (1922), p. – 198.

इसी लिपि से हेब्रू लिपि का भी जन्म हुआ जिसका वर्णन इस्रायल की लिपियों में किया गया है।

अभिलेख[1] का अनुवाद भी नोल्डेकी (Nöldeke) ने इस प्रकार किया है :— "I (am) W SH W N SH[2] Son of A P W S J, grandson of W SH W N SH and my mother (is) A SH W L K R T J A N D When I hunt here, I eat in this place."

हिन्दी में अनुवाद : "मैं अपवसज का पुत्र (तथा) वशवंश का पौत्र वशवंश हूँ और मेरी माँ अशवलकतंज (है) और जब मैं यहाँ शिकार खेलता हूँ तो मैं यहीं खाना खाता हूँ।"[3]

ज़ेबेद लिपि : (कॉलम सं० – १)

ज़ेबेद में प्राप्त होने के कारण इसका नाम ज़ेबेद लिपि पड़ा। यहाँ एक त्रै – लिपि – अभिलेख १८७९ में प्राप्त हुआ जिस पर सीरिया, ग्रीस व अरेबिया की लिपियाँ अंकित थीं। इसकी तिथि ५१२ ई० है। इससे भी प्राचीन एडेसा (Edessa) से ४११ ई० की प्राप्त हुई है। ग्रीस के प्रभाव के कारण सेमेटिक होने पर भी इसकी दिशा बायें से दायें की ओर है। इस लिपि के अभिलेख बहुत कम हैं। (फ० सं०–१७५)।

ऐस्ट्रेंजलो लिपि : (कॉलम सं० – २)

यह सीरिया की मुख्य लिपि ईसा की दूसरी से पाँचवीं श० तक रही है। ग्रीक भाषा में ऐस्ट्रेंजलो (Estrangelo) का अर्थ गोल होता है। गोल होने के कारण ही यह नामकरण हुआ। बाद में इसकी कई शाखायें हो गईं। (फ० सं० – १८९)।

नेस्टोरियन लिपि : (कॉलम सं० – ३)

इसका दूसरा नाम पूर्वी – सीरियाक – लिपि है। सीरिया के कुछ (लगभग एक लाख) ईसाई व यहूदी पर्शिया में वान व उर्मिया झीलों के निकट तथा मुसल (मेसोपोटामिया) में जाकर बन गये, जिस कारण उनकी लिपि पश्चिमी निवासियों से पृथक् हो गई। लगभग ई० की नवीं श० में इसमें बहुत अन्तर आ गया। (फ० सं० – १७५)।

जैकोबाइट लिपि : (कॉलम सं० – ४ व ५)

इसकी दो शाखायें हो गईं। उत्तर के निवासी रोमन राज्य में थे और इनके पादरी जैकोबस बराडियस (Jacobus Baradaeus) थे जो एडेसा के बीशप (गिर्जा का उच्च पदाधिकारी) थे। इस लिपि का विकास ईसा की छठवीं श० में हुआ। इस लिपि को पश्चिमी – सीरियाक – लिपि के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इसकी दूसरी शाखा उन सीरिया के निवासियों द्वारा निर्मित हुई जो पेलेस्टाइन में जाकर बस गये तथा अपना सम्बन्ध पादरी जैकोबस के गिर्जा से तोड़ दिया। इसका नया रूप ग्यारहवीं श० में दृष्टिगोचर हुआ। (फ० सं० – १८९)।

---

1. Nöldeke : Beitr. Z. Semitique Sprachwiss (1904), p. – 124.
2. इस लिपि में स्वरों का प्रयोग नहीं है इस कारण अभिलेख का पढ़ने वाला स्वयं स्वरों का प्रयोग करता है। किसी का नाम ठीक ठीक पढ़ना असम्भव है। इसी कारण नोल्डेकी ने भी कोई अनुमान का प्रयोग न कर जैसा अभिलेख में था वैसा ही दे दिया।
3. लेखक ने इसका अनुवाद किया है।

अरमायक लिपि की एक विशिष्ट शाखा

त ख़ ज़ व ह द ज/ग ब अ

क़ स प अँ स न म ल क य/ज

नीचे अभिलेख दिया है
दाएँ से बाएँ पढ़ा जाएगा

त श र

.हरब. रब. जशवपअ. रब. शनव शव. ह नअ

.जतरकलवशअ. जमअव. शनवशव.जज़

ह न त. ह नअ. दब अ. अ दजस. जज़कव

. ह नअ. हरतशम. हनज़ अँरतअबव

फलक संख्या – १७४

१. ज़ेबेद, २. ऐस्ट्रैंजलो, ३. नेस्टोरियन आदि

ध्वनि	१	२	३	४	५	ध्वनि	१	२	३	४	५
अ						ल					
ब						म					
ग/ज						न					
द						स					
ह						ऐ					
व						प/फ					
ज़						स					
ह						क़					
त						र					
य						श					
क						त					

फलक संख्या – १७५

सीरिया की कर्शुनी या मलाबारी लिपि : जब नेस्टोरियन[1] पादरी सीरिया से सातवीं श० में दक्षिण – पश्चिमी भारत के किनारे पर, जिसको मलाबार कहते हैं उतरे, उस समय वह अपनी लिपि भी लाये। इस भूमि पर मलयालम भाषा बोली जाती थी और सिरिया लिपि के २२ वर्णों द्वारा मलयालम भाषा के उच्चारण पूर्णतया व्यक्त नहीं हो सकते थे। अतः आठ नये वर्णों का अविष्कार करके इस लिपि को मलयालम भाषा के उच्चारणों के अनुसार बनाया गया। इसका प्रयोग अब केवल सन्त टॉमस के ईसाईयों द्वारा धार्मिक क्षेत्र में किया जाता है।

इसके ३० वर्ण 'फ० सं० – १७६' पर दिये गये हैं।

फ्रीजिया

इतिहास : ईसा पूर्व की लगभग तेरहवीं श० में ग्रीस देश के थ्रेस व उत्तरी मैसेडोनिया के निवासियों ने ऐनाटोलिया (आ० टर्की) के हित्ती राज्य पर विध्वंसक आक्रमण करके फ्रीजिया[2] में बस गये और एक नई राजधानी का निर्माण किया जिसका नाम जार्डियन या जार्डियम रखा।

इस देश के वैभवशील काल (ई० पू० की सातवीं श०) में राजाओं का उपनाम मिडास होता था। जिनके विषय में कई प्रचलित कहानियाँ प्रसिद्ध हैं कि वे जो कुछ छू देते थे वह स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता था। लगभग ई० पू० की चौथी शताब्दी में यह देश दो भागों में विभाजित हो गया। एक ओर की भूमि को महा – फ्रीजिया तथा हेलेसपाण्टस के ओर वाले भाग को अल्प – फ्रीजिया कहने लगे। ५६० ई० पू० में इस देश पर लीडिया (Lydia) ने, ५४६ में पर्शिया ने तथा ३३३ में सिकन्दर ने आक्रमण किये। तदुपरान्त सिल्युकिड[3] वंशीय राजाओं ने इस पर शासन किया और १३३ ई० पू० से रोम – नरेशों ने राज्य किया जो चौथी शताब्दी तक रहा तत्पश्चात् बैज़ेण्टाइन साम्राज्य ने इसको सदा के लिए लोप कर दिया।

लिपि : लगभग पच्चीस अभिलेख जो सातवीं एवं छठी शताब्दियों के माने जाते हैं और जो दोगौलू के मकबरों से लीक (Leake) द्वारा प्राप्त किये गये। १८८३ ई० सन् में रामसे (Ramsay) द्वारा प्रकाशित किये गये। इसके अतिरिक्त लगभग सौ अभिलेख ईसा की प्रथम श० के भी प्राप्त हुए हैं। इनकी वर्णमाला 'फ० सं० – १७८' पर दी गई है।

लीकिया

इतिहास : ई० पू० की चौदहवीं शताब्दी में लीकिया का नाम मिस्र की प्रसिद्ध टेल – एल – अमरना पाटियों में दृष्टिगोचर हुआ है। आरम्भ में यह लोग सामुद्रिक व्यापारियों को तथा समुद्री किनारे के नगरों

1. ४२८ से ४३१ ई० तक कान्सटेण्टीनोपिल (Constantinople) के एक गिर्जाघर में एक उच्च सीरिया का पादरी (Syrian Patriarch) नेस्टोरियस (Nestorius) था जो एशिया माइनर के नगर एफीसस (Ephesus) की धार्मिक समिति (Council) से पृथक् कर दिया गया था। नेस्टोरियस का कहना था कि ईशू की मानवीय तथा दैवीय शक्तियाँ बिलकुल पवित्र दृष्टिगोचर होती हैं इस कारण उसने मेरी (Mary) की पदवी 'भगवान् की माता (Mother of God)' को नहीं माना। नेस्टोरियस के मतानुयायी नेस्टोरियन्स (Nestorians) कहलाते थे। वे मुख्य गिर्जाघर से पृथक् होने के पश्चात् भी एक धार्मिक जाति के रूप में सीरिया व पैलेस्टाइन आदि देशों में अपनी स्थिति को स्थिर किये रहे और अब भी जीवित हैं।
2. इसको फ्रीगिया भी कह सकते हैं।
3. सिकन्दर के देहान्त के पश्चात् उसके सेनापति ही उसके विजय किये गये देशों के शासक हो गये और उनका वंश प्रचलित हो गया।

सीरिया की कर्शुनी या मलाबारी लिपि

व	ह	द	ग	ब	अ
ल	क	ज	ट	छ	ज़
झ	प	अ	स	न	म
ङ	ण	त	श	र	ख
झ़	ष	ढ	ळ	ठ	अ

फलक संख्या – १७६

एशिया माइनर के देश

फ्रीजिया १२०० से ७०० ई० पू० तक
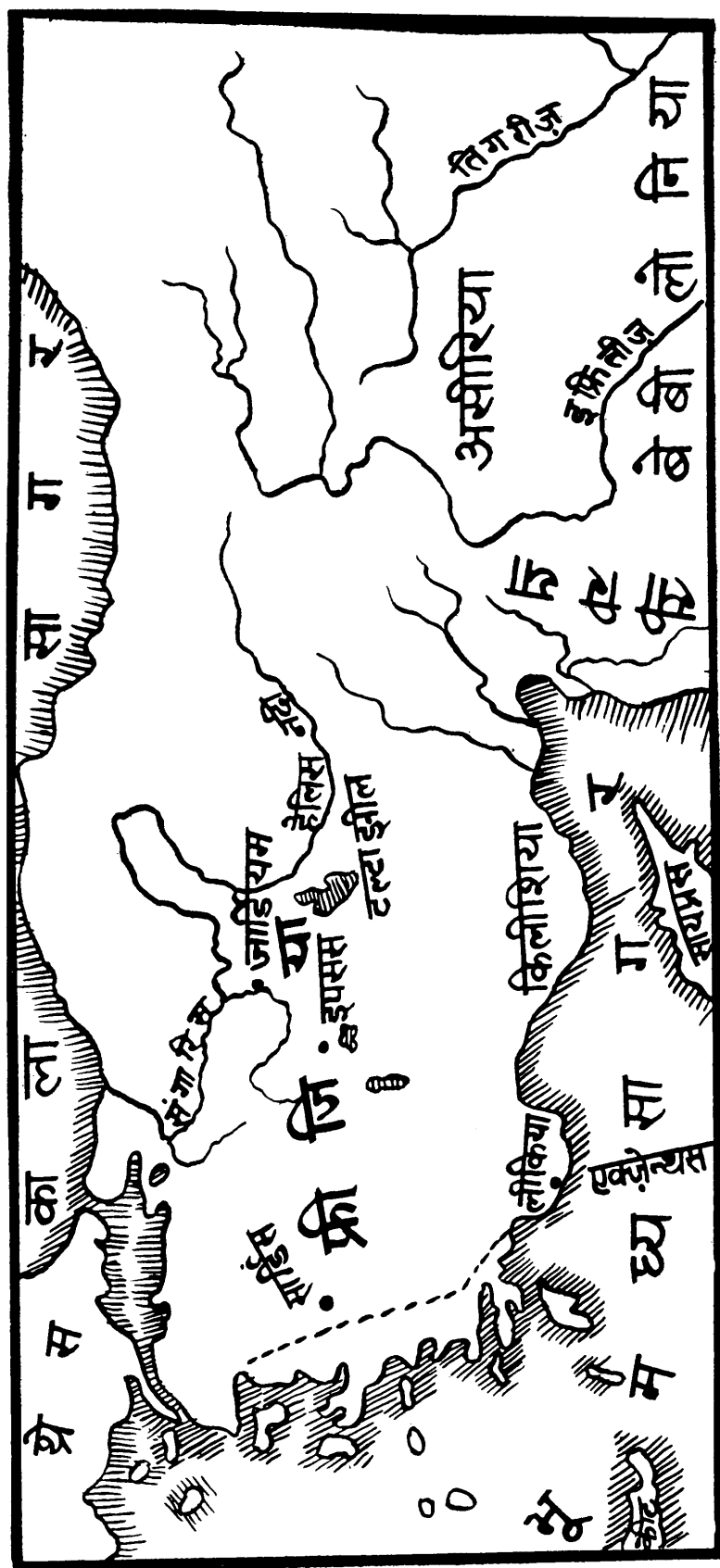
फलक संख्या - १७७

फ्रीजिया की लिपि

अ A	ब B	ग/ज Γ	द Δ	इ/ए E
थ Θ	ज़ ſ	ई H. I.	क K	ल Λ
म M	न N	ओ O	प Π	र P
स ξ ξ	त T	ऊ Y	फ़ Φ	ख X
प्स Ψ	ब Ω			

फलक संख्या – १७८

लोकियन लिपि

अ	आ	इ	ऐ	ब	व	ग ग ग	द
P	Y	↑	Ψ	B.b.	β	Y Y V	Δ
(हे)ई	फ	ज़	ह	थ	ज	क	
E	F	I	+X	X	I	K	
ल	म	न	मा	ना	ओ	प	एक्स
Λ	M	N	X	‡	O	Γ	◇
क़	र	सस	त	व	का		
X	P	S ϟ	T	Ψ	Y		

फलक संख्या – १७९

को लूट कर अपनी जन्म भूमि क्रीट को लौट जाते थे। शनैः शनैः वह एशिया माइनर के दक्षिणी किनारे पर बसने लगे और अपना एक राज्य स्थापित कर लिया जिसका मुख्य नगर एक्ज़ेन्थस था।

लीडिया निवासी इन पर अपना अधिकार जमाना चाहते थे परन्तु जब पर्शिया ने लीडिया पर अधिकार कर लिया तब सायरस के एक जनरल हेर्पागस ने इस पर भी अधिकार कर लिया फिर भी लीकिया स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करता रहा।

३३४ ई० पू० में इसे सिकन्दर ने अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। ४५ ई० सन् में रोम के नरेश क्लाडियस प्रथम (Claudius) ने इसको पैम्फीलिया के साथ मिला कर अपने रोमन साम्राज्य में मिला लिया। तदनन्तर यह देश लोप हो गया।

लेखन कला : इसके १५० से अधिक अभिलेख १८८४ से १८८९ के मध्य कलिन्क (Kalinka) एवं जे० फ्रेडरिक (J. Friedrich – 1901) को ई० पू० की चौथी व पाँचवीं शताब्दी के प्राप्त हुए। इसकी वर्णमाला कलिन्क और बोर्क (Bork) ने तैयार की। इसमें २९ अक्षर मिलते हैं जिसमें १७ ग्रीक लिपि से

लीकिया का एक द्विभाषिक अभिलेख

इ ब इ ईजअ इ र अ व अ ज़ ई ज अ

म इ त ई पर ना न अ अ त ऐ

स ई द इ र ई ज अ प अ र म न त ई द

इ ई म ई र प प ई ई त ल ई इ ब ब ई

स इ ल अ द ई इ ब ब ई स इ त ई द इ ई

म ई प ओ ब ई इ ल इ ज इ

फलक संख्या – १८०

तथा ६ सायप्रस की लिपि से लिये गये हैं, परन्तु टेलर, सेसी तथा इवान्स मानते हैं कि वे क्रीट की लिपि से लिये गये हैं। इसकी वर्णमाला[1] 'फ० स० – १७९' पर दी गई है।

लीकिया का एक द्विभाषिक अभिलेख : लीकिया से एक द्विभाषिक अभिलेख प्राप्त हुआ, जिस पर यूनानी तथा लीकियन लिपि अंकित थी। इसको कलिन्क (Kalinka) ने अपनी पुस्तक[2] में प्रकाशित किया। इसको जे० फ्राइदरिख़ (J. Freidrich) की पुस्तक[3] से लिया गया है। इसका लिप्यन्तरण तथा अनुवाद कलिन्क ने किया है। इसका अंग्रेजी[4] का पाठ फ़ुटनोट में दिया है जिसका हिन्दी अनुवाद लेखक ने इस प्रकार किया है :— "यह स्मारक अब परमेना के पुत्र सिदेरिज ने अपने लिये, अपनी पत्नी तथा अपने पुत्र पुबीले के लिए बनवाया (है)।"

लिप्यन्तरण :— "इबिईजा : इरावाज़ीजा :
मिती : प्रन्नाअतँ : सीदिरीजा :
पार्मीन [ई] : तीदिईमीरप्पी :
ईतलीइब्बी : सिलादी : इब्बी :
सितीदिईमी : पोबीलिजिइं :"

इस लिपि की दिशा बाईं ओर से आरम्भ होती है।

लीडिया

इतिहास : सर्वप्रथम लीडिया का नाम अशुर बनीपाल के लेखों में ६६० ई० पू० में लुड्डी के नाम से मिलता हैं। फ्रीजिया के अन्तिम दिनों में लीडिया के निवासियों ने सत्ता को अपने हाथ में लेकर एक बड़ा राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी सार्डिस थी। हेरोडोटस के अनुसार जायगीज़ (Gyges) सर्वप्रथम नरेश था जिसने राजगद्दी पर ६८५ ई० पू० में अधिकार करके लीडिया की नौसेना को शक्तिशाली बनाया। जायगीज़ और सिमेरी मिल गये और असीरिया के विरुद्ध एक क्रान्ति कर दी जिसके फलस्वरूप ६५२ ई० पू० के एक युद्ध में जायगीज़ वीरगति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उसका पुत्र आर्डिस शासक बना जिसने निनेवः से मित्रता कर ली। तदनन्तर आर्डिस (Aryds) का पौत्र अलियातीज़ (Alyattes) सिंहासनारूढ़ हुआ जिसने ५७ वर्ष राज्य किया तथा कई छोटे राज्य अपने विशाल राज्य में मिला लिये। इस राज्य का अंतिम नरेश अलियातीज़ का पुत्र क्रोशस (Croesos) था जो बहुत धनवान था। इसी ने आदान – प्रदान की सुविधा के लिए मुद्रा पद्धति को जन्म दिया।

५८५ ई० पू० में मीडिया व लीडिया के राज्यों ने अपनी सीमा हेलिस (Halis) नदी को बना लिया, परन्तु जब सायरस को ज्ञात हुआ कि क्रोशस ने सीमा उल्लघन कर दी तो उसने क्रोशस को परास्त कर पहले तो वध करने का निश्चय किया फिर बाद में ५४७ में उसको अपना मन्त्री बना लिया। अब लीडिया की राजधानी सार्डिस पर्शिया की पश्चिमी राजधानी बन गई। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् एक – आँख – वाला

---

1. Friedrich, J. : Kleinasiatische Sprachdenkmäler (1901), p. – 157.
2. 'Tituli Lyciae Lingua' No. 117.
3. 'Lycian and Lydian Alphabet' – Kleinasiatische Sprachdenkmäler, p. – 157.
4. "This monument, now he built (it), (is) Siderija, son of Parmena, for ownself and his own wife and the son, Pubiele".

लीडिया तथा फ्रीजिया
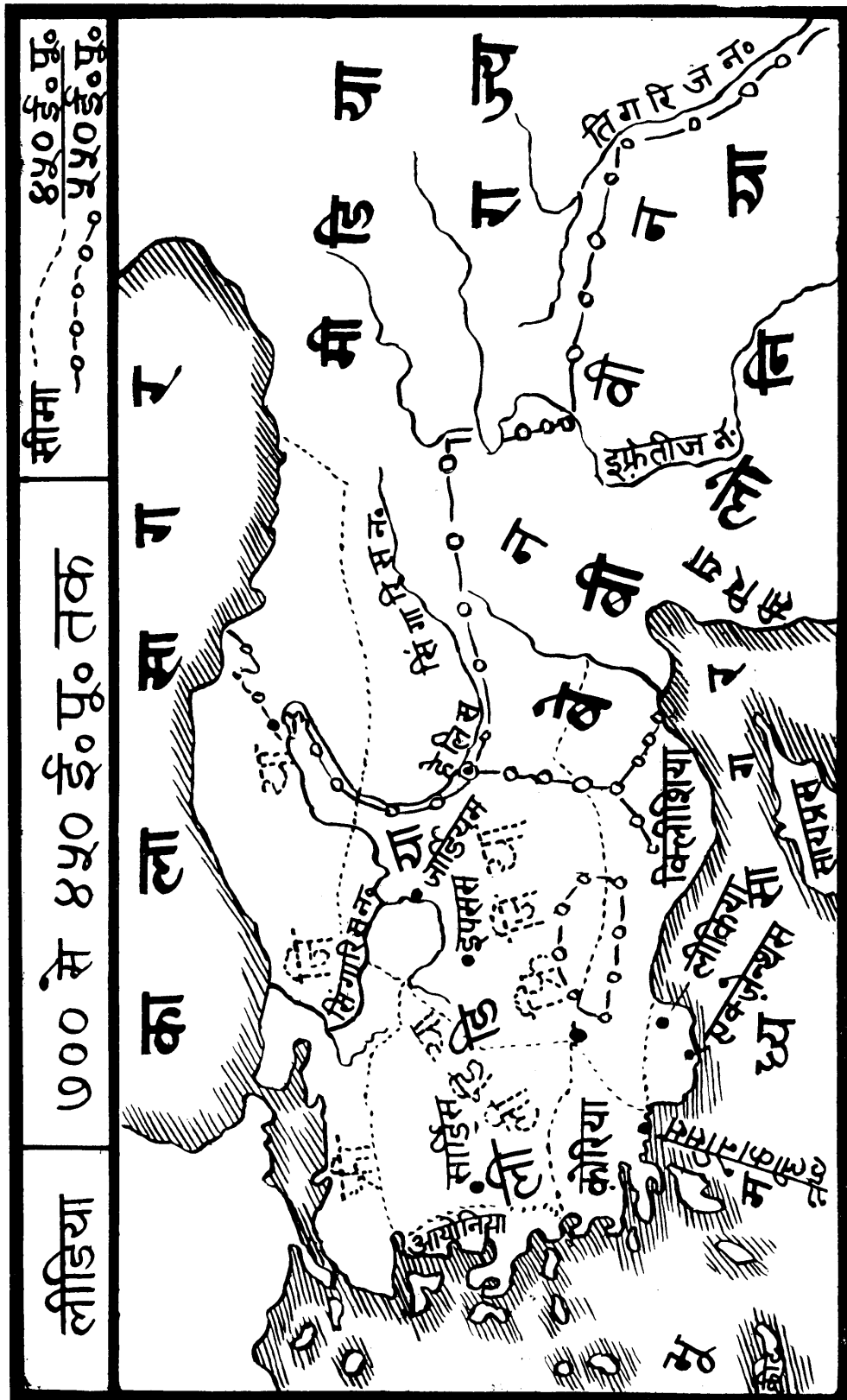
फलक संख्या – १८१

जनरल ऐण्टोगोनस पूरे एशिया – माइनर का स्वामी बन गया परन्तु द्वेष के कारण ३०१ ई० पू० में इसका वध कर दिया गया। तत्पश्चात् ऐकियस सार्डिस का नरेश बन गया।

लिपि : इस लिपि का उद्भव ग्रीस द्वारा लगभग ई० पू० की छठी शताब्दी में हुआ। इसमें २५ अक्षर हैं जिसमें १३ तो ग्रीक लिपि के हैं। ९ अक्षरों का निश्चय नहीं हो सका है।

इस लिपि का सर्वप्रथम पाँच अक्षरों का अभिलेख आर्तेमिसदेवी के मन्दिर से प्राप्त हुआ जो एफ़िसस में स्थित था। परन्तु आज नष्ट – भ्रष्ट पड़ा है। इसके प्राप्तकर्ता वुड (Wood) हैं जिनको यह १९७३ में मिला था।

१९१० और १९१३ के बीच एक अमरीका की साहसी टोली ने सार्डिस में उत्खनन किया जिसमें ३० से अधिक लम्बे लम्बे अभिलेख प्राप्त हुए, जिनको लिटमन और बकलर ने १९१६ और १९२४ में प्रकाशित किया।

आरम्भ में लिटमन ने इन अभिलेखों को पढ़ने का प्रयास किया। इसके पश्चात् सेसी ने १९२५ में, सोमर ने १९२७ में तथा ब्रांडेस्टीन ने १९२९ में इस लिपि के पढ़ने के प्रयास को प्रगति प्रदान की।

इस लिपि के एक अभिलेख पर अरामायक लिपि भी अंकित थी जिस कारण इसके रहस्योद्घाटन का कार्य सरल हो गया। इस द्वि – लिपि अभिलेख का काल ई० पू० की पाँचवीं श० निर्धारित किया गया है। इसकी दिशा दायें से बायें थी अन्यथा और अभिलेख बायें से दायें प्राप्त हुए हैं। (फ० सं० – १८२ नीचे की ओर)।

इसकी वर्णमाला[1] 'फ० सं० – १८२' पर दी गई है।

अभिलेख[2] का लिप्यन्तरण इस प्रकार है :—

'बाकीवालीज़ अरतोम्यू नान्नास'

हिन्दी अनुवाद : 'नान्नास (सुत) बाकोवालोज़् (ने यह मूर्ति) आर्तेमिस (देवी) को (अर्पण करके स्थापित की है)।'

कैरिया

इतिहास : कैरिया[3] (क़ारिया) तुर्की के दक्षिणी तट पर स्थित एक प्राचीन देश था। यह टारस पर्वत – माला की उच्च समभूमि पर, ८००० फ़ुट ऊँचाई पर बसा था। इसके शासक का नाम ललेगीज था। लगभग तेरहवीं श० ई० पू० में ग्रीस के डोरियन्स ने अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात् यह लीडिया के अधीन रहा। इसका अन्तिम शासक पिख़ोडारस (Pixodarus) था, जिसका वध करके पर्शिया के एक सेना – नायक ओरोंतोब्तीज़ (Orontobates) ने अपने अधीन कर लिया। इसकी राजधानी हाली – कार्नेसस थी।

---

1. Littmann : Lydian Inscriptions (1916), p. – 251.
2. Buckler : 'Lydian inschriften' – Journal of Sardis. Vol. VI, Part II, No. 20 (1924), p. – 197.
3. कैरिया के निवासियों को पर्शिया निवासी कुर्का (मुर्गा) कहा करते थे क्योंकि कैरिया निवासी कलगीदार टोपी पहनते थे।

लीडिया की लिपि

अ ब ग द ए फ़ ज़ ऐ

प ई क ल म न क्स ओ क़

र स त/ट व(w) ɔ व(v) पु आ

इसी लिपि का एक प्रतिदर्श

ज़ ई ल अ व ई क अ ब

स अ न न अ न पु म ई त र अ

फलक संख्या – १८२

ई० पू० की चौथी शताब्दी के अन्तिम काल में सिकन्दर (Alexander) ने इसको परास्त कर यहाँ की एक राजकुमारी आदा (Ada) को रानी बना दिया।

कुछ दिनों पश्चात् यह सीरिया के साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। तदनन्तर यह रोमन राज्य के अधीन रह कर लोप हो गया।

लिपि : इसकी भाषा भारोपीय नहीं है। सर्वप्रथम सी० टी० न्यूटन (C. T. Newton) ने हैलीकार्नेसस में १८५७ में उत्खनन किया। तदनन्तर डब्ल्यू० आर० पैटन (W. R. Paten) ने असारलिक में तथा यफ़० विन्टर (F. Winter) ने इदरियास में उत्खनन किया। इसकी लिपि यूनानी लिपि से मिलती – जुलती है।

इस लिपि के सात अभिलेख अबूसिम्बल की रामेसीज द्वितीय की विशाल मूर्तियों की जाँघों पर उत्कीर्ण[1] पाये गये। यह अभिलेख कैरिया (क़ारी) के भृतक सैनिकों ने मिस्र के शासक सामथेक द्वितीय (Psamthek II – ५९४ – ५८८ ई० पू०) के शासनकाल में उत्कीर्ण किये थे। इसके अन्य अभिलेख नूबिया तथा इथियोपिया से भी प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त बोसार्ट को कैरिया के छोटे से नगर कौनस से, कुछ सेसी[2] को तथा कुछ लेपसियस को प्राप्त हुए, जो उसने १८४९ व १८६० में प्रकाशित[3] किये। यह सब अभिलेख भिन्न भिन्न पुस्तकों में प्रकाशित हुए। यल० राबर्ट ने भी अनेक अभिलेख प्रकाशित[4] किये। बोर्क ने इसकी वर्णमाला[5] प्रकाशित की (फ० सं० – १८३)।

सिडेटिक भाषा

परिचय : सिडे (आधु० एस्की अदालिया – Eski Adalia) एक प्राचीन नगर – राज्य था, जो तुर्की के दक्षिण – पश्चिमी तट पर पम्फ़ेलिया के भू – भाग में स्थित था। एक यूनानी इतिहासकार अर्यन (Arrian) के अनुसार यह ई० पू० की छठवीं श० में अपनी समृद्धि शिखर पर था। चौथी श० में सिकन्दर महान् ने इसको अपने अधीन कर लिया। भावी शताब्दियों में किलीशिया के समुद्री – डाकू इसमें लूटपाट मचाते रहे तत्पश्चात् यहूदियों ने अपने अधिकार में रखा। शनैः शनैः यह इतिहास के पृष्ठों से लोप हो गया।

लिपि : यहाँ की भाषा एक भिन्न प्रकार की थी जो किसी अन्य भाषा से सम्बन्धित नहीं थी। इस लिपि का पता उन्नीसवीं श० में कुछ लघु – अभिलेखों द्वारा लगा, जो सिक्कों पर अंकित पाये गये, जिनका काल विद्वानों ने ई० पू० की पांचवीं व चौथी श० माना है। एक सिक्के पर द्विभाषिक – ग्रीक, सिडेटिक – लघु – अभिलेख अंकित था। यह १९१४ में सिडे के उत्खनन में प्राप्त हुआ। इसका नाम 'आर्तेमोन-अभिलेख' के नाम से ज्ञात हुआ। एक अन्य अभिलेख, जो थोड़ा लम्बा था, यह भी द्विभाषिक था, उत्खनन से १९२९ में प्राप्त हुआ। यह दोनों उत्खनन कार्य इटली के दो विद्वानों – परीबेनी (Paribeni) तथा रोमनेली (Romanelli) द्वारा सम्पन्न हुए।

1 "Sprachdenkmäler, (Berlin 1932), p. – 109.
2. Steinherr, 'Zu der neuen Karschen Inschriften' Jahrb. F. Klenas. Forsch. 1. (1951) p. – 328.
3 Friedrich, J. : Entziffering Ver Schollener Schriften und Sprachen (Berlin 1954), p. – 92.
4. 'Inscriptions inedites en langue Carienne in the J. Hellenica recueil d' epigraphie VIII (1950), p. – 5.
5. 'Die Schrift der Karer' — Arch. F. Schreib und Buchwesen IV (1930), p. – 14.

कै़रियन (का़री) लिपि के अक्षर

				संयुक्ताक्षर	
अ	A ᗅ P ɑ λ	प	՟ ∇ Φ		
इ	ⴱ ⋿ E ⋺ Ш	च	W	को	Ω
इ	∣∣∣	ई	♀	र	P R q ...	ती	↑
ए	⍑	ह	X ✕	तो	⊼ ⊓
उ	□ □	स	M M ...	पे	ϟ ϟ
ऊ	V Y Y ⋎	ब	B ⋀	रे	⩕
व	F F ⋺ X	थ	⊕ ⊗	रो	⊓ ⊓ ⋏
क	K ⋊	त	+ ↑ T T	नो	⊤⊤)(
ल	Γ ⌝ Γ Λ	द	△	ज़	)(	जा	▯
म	M	ख	↓ V Y Y ⋎	वो	Y ш 8
न	N ⋀ ⋎	ख़	X	ग	C	फ़	d b
ओ	O o	ज़	I	नं	H H	क्ख़	< [( )

रहस्योद्घाटन : इस लिपि के पढ़ने के प्रयास निम्नलिखित विद्वानों ने किये :—

१८६१ में : वाडिंगलन (Waddinglon) ने असफल प्रयास किया ।

१८७७ में : फ़ाइड (Fried) ने ।

१८८३ में : लैण्डर (Länder) ने ।

१८९७ में : सिक्स (Six) ने ।

ये सभी लोग असफल रहे ।

१९३२ में : बोसार्ट ने द्विभाषिक अभिलेख[1] को पढ़ लिया । पढ़ने का निष्कर्ष एक पुस्तक[2] में प्रकाशित हुआ । इसने सर्वप्रथम ग्रीक अभिलेख पढ़ा, तब सिडेटिक पढ़ी । इसी का लिप्यन्तरण तथा अनुवाद 'फ० सं० – १८४' पर दिया गया है, जो अंग्रेज़ी के पाठ से लिया गया है ।

हिन्दी अनुवाद :—'अपोलोनियस के पुत्र अपोलोडोरस के पुत्र अपोलोनियस[3] ने अपनी मूर्ति को भगवान् के लिए (अर्पित) स्थापित किया (है) ।'

सिडेटिक लिपि – पाँचवीं श० ई० पू०

इ न उ ल उ प स र उ द र उ प

ओ ए अ र अ म   स अ ओ

ओ इ न उ ल उ प

फलक संख्या – १८४

1. Bossert : Belleten No. 14. Fig. 2. (1933).
2. Friedrich, J. : Entziffering verschollener Schriften und sprachen (Berlin – 1954), p. – 95.
3. 'Apollonius (son) of Apollodorus (son) of Apollonius, set up this im ge of himself for the God'.

यज़ीदी लिपि -- उन्नीसवीं श०

ध्व०	अ०	ध्व०	अ०	ध्व०	अ०
अ	|	र	⊓	फ़	//
ब	V	ज़	<	व	┘
प	Ʒ	श़	XX	क़	T
त	⊥	स	ш	क	ξ
स	<	श	⊓⊓	ग	✕
ज	△	स	+	ल	J
च	△	द़ज़	X	म	ㄴ
ह	▽	त	Ʒ	न	⊔
ख़	Δ	तज़	‡	व	>
द	□	ऐन अ	┘	ह़	O
ज़	P	ग़	#	य	ㄐ

श य प ला य व अ

म ह् व ब ल्क़ ख़ य म ह

ह् व अ ह् स व व अ क्ल

स व व अ अ न ह् क

र अ न ह् ग ल म अ व ब य

फलक संख्या – १८५

यज़ीदी लिपि

इतिहास : यज़ीदी[1] एक मतावलम्बी लोग हैं जिनकी गणना लगभग पचास सहस्र है। यह लोग ईरान के मोसुल नगर के निकट निवास करते हैं। इनका अपना नाम तो 'दसनी' है परन्तु अन्य पड़ोसी इनको यज़ीदी के नाम से सम्बोधित करते हैं। यज़ीदी पर्शियन शब्द 'यज़दान' (देवता) से बना है। यह मत मज़्दावाद की एक शाखा है जिसमें इस्लाम व ईसाई धर्मों का मिश्रण है।[2] इन लोगों का विश्वास है कि शैतान (डेविल) ने इस संसार का निर्माण किया जो सर्वशक्तिमान् है। ख़ुदा की इबादत को पाप समझते हैं। वह अपने इष्ट का नाम नहीं बताते परन्तु वे मयूर[3] को अपने देवता का प्रतिनिधि मानते हैं।

लिपि : यज़ीदी कुर्दिश[4] भाषा – भाषी हैं। इन्होंने अपनी लिपि का आविष्कार पर्शियन लिपि से लगभग अठारहवीं श० के अन्त में किया। इसमें ३३ अक्षर हैं जो 'फ० सं० – १८५' पर दिये गये हैं। इसका रहस्योद्घाटन बिटनर (Bittner) ने १८८० में किया जो १९१३ में प्रकाशित हुआ। इसकी वर्णमाला भी बिटनर ने तैयार की तथा अभिलेख का लिप्यन्तरण[5] भी किया परन्तु उसके अर्थ स्पष्ट नहीं हो सके।

पठनीय सामग्री

Allen, A. B. : Romance of Alphabet (1937).
Arkwright, W. : Lycian Epitaphs (Anatolian Studies – 1923).
Burckhardt, J. L. : Travels in Syria and the Holy Land (1822).
Burton, R. : Unexplored Syria (1872).
Buresch, K. : Aus Lydien (1898).
Cooke, G. A. : A Text Book of North Semitic Inscriptions (1903).
Cook, S. A. : Glossary of Aramaic Inscriptions (1903).
Cowley, A. E. : Aramaic Papyri of the Fifth Century B. C. (1923).
Fraser, J. : Phyrigian Studies (Transaction of the Cambridge Philological Society – 1913).
Gyles, Mary Francis : Ancient World.
Harrer, A. : Studies in the History of the Roman Province of Syria (1915).
Hitti, P. K. : History of Syria (1951).
Hogarth, D. C. : Cambridge Ancient History Vol. II and III (1924).

1. Menant, L. : Les Yezidis (1892), p. – 173.
2. Lescot, R. : 'Enquete sur les Yezidis de Syrie et du Diebel Sindjar' – Memoire de l' institute francaise. de Damas. V. Beirut (1938), p. – 221.
3. Empson, R. H. W. : The Cult of Peacock Angel (1928), p. – 257.
4. Anastase, P. and Marie : 'La deconverte recente des deux livres Sacres des Yezids' Journal 'Anthropos VI (1911), p. – 109.
5. Bittner : 'Die heilgen Bücher der Jeziden Oder Teufelsanbeter', Denkschr. d. Wiener Akadami No. 55. (1913), p. – 285.

Jansen, H. : Sign Symbols and Scripts (1965).

Kalinka, E, and Heberdey, R. : Tituli Asiae Minoris (1901).

Lidzbarski : 'Epigraphisches aus Syrien' Phil – History (1924).

Littmann, E. : Syriac Inscriptions (1934).

Luckenbill, D. D. : Ancient Records of Assyria and Babylonia – 2 Vols. (1927).

Maspero, G. : Dawn of Civilization, p. – 232, (1892).

Nöldeke : Veröffentlich – Ungen (1939).

Perrot : Cities and Bishoprics of Phyrigia (1897).

Sayce, A. H. : The decipherment of the Lydian Language (American Journal of Philology – 1925).

Schiffer, S. : Die Aramaer (1911).

Schubert, R. : Cambridge Ancient History Vol. III.

Swain, J. Edger : History of World Civilization.

Treuber, O. : Geschichte der Lykier.

Woolley, Sir Leonard : History Unearthed.

□

अरेबिया

इतिहास

हेब्रू भाषा में इसका नाम अराबाह् अर्थात् रेगिस्तान तथा प्राचीन फ़ारसी में इसका नाम अरबाया था जिनके द्वारा आधुनिक नाम अरेबिया पड़ा। इसका क्षेत्रफल भारत से कुछ ही कम है परन्तु जनसंख्या केवल दो नगरों – बम्बई व कलकत्ता – के बराबर है। आरम्भ काल में यातायात के साधन न होने से यह देश कभी एक सूत्र में न बँध सका। जीवनोपार्जन के साधनों की कमी के कारण लूटमार तथा व्यापार प्रचलित कार्य थे। दूर दूर लोग बसे थे जहाँ कुछ साधन प्राप्त थे। इस कारण यहाँ छोटे बड़े बहुत से राज्य थे। अरेबिया का इतिहास आरम्भ काल में इन्हीं राज्यों का इतिहास रहा परन्तु इस्लाम आने के पश्चात् इस देश ने बहुत उन्नति की।

मीनियन राज्य : इसको माईयन राज्य के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। अरबी विशेषज्ञों द्वारा पता लगता है कि यह राज्य १२०० से ६५० ई० पू० तक बड़ा समृद्ध रहा और इसका केन्द्र यमन के जऊफ़ में स्थित था। इस राज्य में २५ शासकों ने शासन किया। इस बात का प्रमाण अल – ऊला के अभिलेखों से प्राप्त हुआ है। ई० पू० की दसवीं से सातवीं श० तक मुकारिब – पुजारी – शासकों का राज्य रहा जिनकी राजधानी सिरवाह् (आ० ख़रीबा) थी।

सैबियन राज्य : इस राज्य का काल ६५० ई० पू० से आरम्भ होता है और इसके शासक सबा के राजा कहलाते थे। इनकी राजधानी मारवी या मारिब थी। इस राज्य ने ११५ ई० पू० तक शासन किया।

हिमारी राज्य : इन हिमारी लोगों (Himyarites) का शासन ११५ ई० पू० से आरम्भ होता है। इनके शासन काल में निरन्तर लड़ाई झगड़े होते ही रहे। इस राज्य के निकट दो और राज्य, कताबान और हैदरामौत थे। इस राज्य का आरम्भ सैबियन लोगों के स्थानान्तरण से हुआ। भारत और मिस्र के बीच जब व्यापार होता था तो सबा के निवासी ही माल को थल के रास्ते पहुँचाया करते थे। परन्तु जब टॉलेमी शासक भारत से समुद्री – मार्ग से सीधा माम मंगवाने लगे तो सबा के लोग इधर उधर बिखर गये। तत्पश्चात् अरेबिया के दक्षिणी – पश्चिमी कोने पर निवास करने वाले हिमारी लोगों ने राज्याधिकार प्राप्त कर लिया। उपर्युक्त झगड़ों के कारण कताबान राज्य समाप्त हो गया। ई० पू० की प्रथम श० में रोमन राज्य की दृष्टि इस ओर पड़ी और शासन करने की प्रबल इच्छा के कारण रोम के कारण सम्राट् ने एक फौजी–टुकड़ी को ऐलियस गैलस (Aelius Gallus) के अन्तर्गत २४ ई० पू० में भेजी। इसके पथ – प्रदर्शकों ने उसको ग़लत रास्ते पर ले जाकर छोड़ दिया जिसके कारण पूरी टोली मृत्यु का ग्रास बन गई। अब हिमारी राज्य के झगड़े एबीसीनिया के राज्य से, जो अफ़्रीका देश में स्थित था, चलने लगे। हिमारी शासकों ने यहूदी धर्म (Judaism) अपना कर एबीसीनिया से दुश्मनी कर ली। इस कारण हिमारी राज्य ने पर्शिया राज्य की सहायता प्राप्त करके यह युद्ध समाप्त किया। एबीसीनिया राज्य को ईसाई उकसाते थे क्योंकि इसके राजा ने ईसाई धर्म अपना लिया था। ५१६ ई० में पर्शिया का एक प्रान्तपाल नियुक्त कर दिया गया था।

प्राचीन अरेबिया
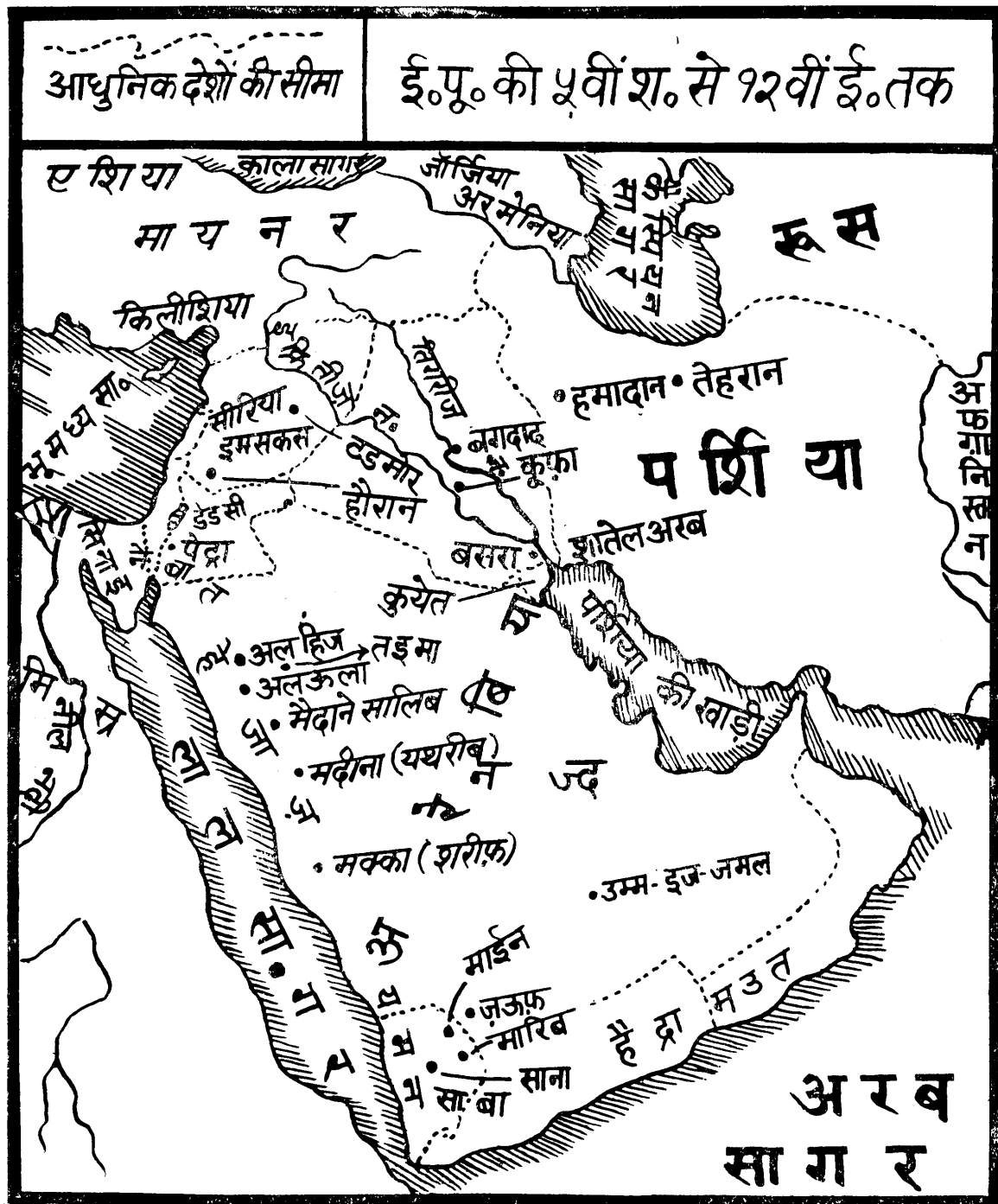
फलक संख्या – १८६

हीरा राज्य : ईसा की तीसरी शताब्दी में तिहामा और नज्द के अरब – फ़रात नदी (R. Euphrates) और अरेबिया के मध्य बस गये। आरम्भ में तो यह लोग पर्यटनशील होने के कारण डेरों में रहते थे परन्तु बाद में इन लोगों ने अपने घर का निर्माण कर लिया। इन लोगों ने ईसाई धर्म अपना लिया। इनकी धार्मिक भाषा सीरियाक थी परन्तु बातचीत की भाषा अरबी थी। पाँचवीं श० में यह लोग नेस्टोरियन (Nestorians) हो गये।

इस्लाम राज्य : इस्लाम संसार में ऐसी जगह आरम्भ हुआ जहाँ परिस्थितियोंवश सभ्यता कम तथा असभ्यता अधिक थी। आपस में झगड़े होते थे। समाज क़बीलों में विभाजित था। प्रत्येक क़बीला अपने इष्ट की पूजा करता था। एकता तथा प्रेम आदि का नाम न था। स्वार्थपूर्ति के लिए हत्या करना साधारण बात थी। ऐसी परिस्थितियों में एक महान् विचारक एवं सुधारक, सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति आया जो बाद में पैग़म्बर (पैग़ाम लाने वाला, ख़ुदा से) हज़रत मोहम्मद (रसूल अल्लाह सलल्लाहो अलहिवसल्लम) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आपका जन्म मक्का में ५७० ई० में हुआ। जब तक आप इस्लाम धर्म का प्रचार करते रहे (इस्लाम का अर्थ है समर्पण करना – अर्थात् ख़ुदा की आज्ञा व इच्छा के समक्ष समर्पण) तब तक यह केवल धर्म कहलाया परन्तु जब हज़रत ने मदीना को कूच किया, मक्का निवासियों के साथ कई युद्ध हुए, तब से मदीना इस्लाम का, अर्थात् इस्लाम राज्य का सर्वप्रथम केन्द्र हो गया। आपके स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् चार ख़लीफ़ा हुए।

१. हज़रत अबू बकर	६३२ – ६३४ तक
२. ह० उमर	६३४ – ६४४ तक
३. ह० उसमान	६४४ – ६५६ तक
४. ह० अली	६५६ – ६६१ तक

हज़रत मोहम्मद के काल में ही कई राज्यों ने आत्मसमर्पण कर दिया था। तत्पश्चात् कई देशों ने समर्पण किया अर्थात् इस्लाम धर्म अपनाया। इसके कारण ख़लीफ़ाओं ने युद्ध भी किये।

कूफ़ा का नगर (ईराक़ में) ६३५ में केवल एक सैनिक कैम्प था जो बाद में इस्लाम की शिक्षा का एक विश्वविख्यात केन्द्र हो गया। तत्पश्चात् इस्लाम के मानने वालों में आपस में केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए युद्ध आरम्भ हो गये। बाद में मंगोलों से तथा ईसाईयों से युद्ध होते रहे। शनैः शनैः कई देशों पर इस्लाम का राज्य स्थापित हो गया। स्पेन से मंगोलिया तक इस्लाम के राज्य का विस्तार हुआ। इधर भारत में (अकबर के काल में) इस्लाम छा गया और दक्षिण – पूर्व – एशिया के देशों तक पहुँचा।

ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य हज़रत मोहम्मद के दो वंशों (बनी उम्मिया अर्थात् उम्मिया का वंश तथा बनी अब्बास अर्थात् अब्बास का वंश) में शत्रुता हो गई। एक दूसरे के इतने रक्त के प्यासे हुए कि चुन चुन कर वध करवाये गये। इस्लाम के तीन बड़े राजनैतिक केन्द्र हो गये जहाँ से मुस्लिम संस्कृति का सूर्योदय होने लगा। पहला ईराक़ में बग़दाद, मिस्र में क़ाहिरा तथा स्पेन में कार्डोबा या कारतूबा। इन्हीं केन्द्रों से इस्लाम ने संसार को (मुख्यतया पश्चिमी देशों को) बीजगणित (अलजेब्रा) (अल – जब्र Algebra), खगोलशास्त्र (जो इन्होंने भारत से सीखा – नवीं शताब्दी में) तथा अंकगणित आदि प्रदान किये।

अन्त में ईसाईयों और मंगलों ने इनकी संस्कृति को बहुत क्षति पहुँचाई। बग़दाद को, जो कभी एक सुन्दर नगर था, १२५८ में मंगोलों ने नष्ट – भ्रष्ट करके एक ढेर बना दिया। आपस के युद्धों ने भी इस्लाम

पश्चिम एशिया
इस्लाम के पूर्व
तथा पश्चात् - परिवर्तन
५५० से ७०० ई० तक
भारत
बुखारा
समरकन्द
काशगर
अलेप्पो
दमिश्क
जेरूसेलम
कूफ़ा
हीरा
मदीना
मक्का
नज्द
हिज्र
यमामा
ओमन
मसकट
यमन
सांना
अदन

फलक संख्या – १८७
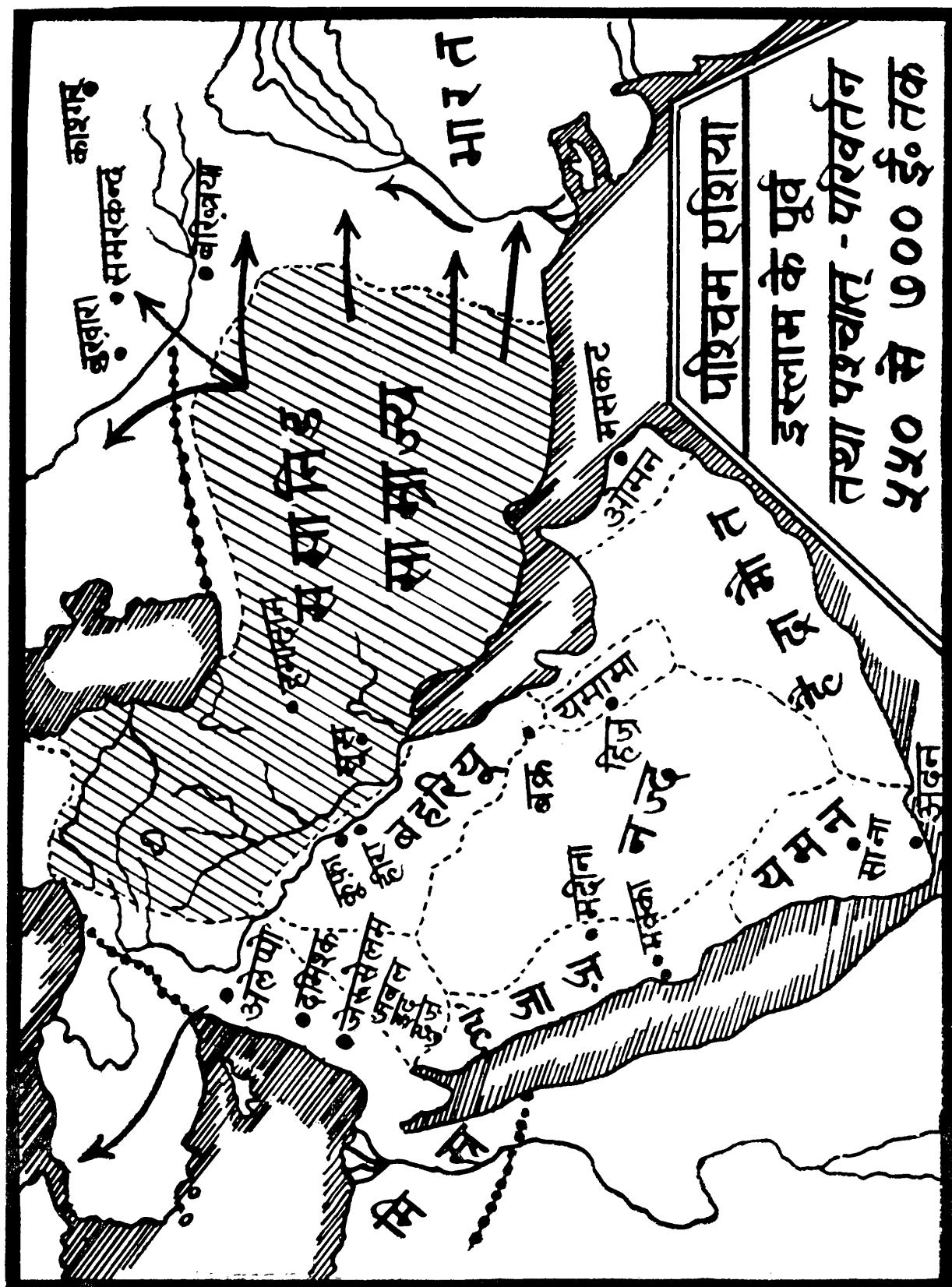
की संस्कृति को बड़ी हानि पहुँचाई। मुसलमानों ने जितना विदेशों को प्रभावित किया उतनी तीव्रता से वह अपनी जन्म भूमि पर कार्य न कर सके, क्योंकि उनका विशाल देश एक रेतीला देश है, जहाँ यातायात के साधन नहीं पनप सके।

अरेबिया में इस्लाम के पूर्व कई राज्य तथा अनेकों क़बीले (जातियाँ) थे। प्रथम महायुद्ध के पूर्व लगभग पूरा अरब देश तुर्कों के अन्तर्गत था। इसमें दो मुख्य अधीन राज्य – नज्द जो फ़ारस की खाड़ी के किनारे था तथा दूसरा हेजाज़, जो लाल सागर के किनारे पर था। एक तीसरा मुख्य राज्य इसके पश्चिम दक्षिण में यमन का था। नज्द का अमीर इब्न सऊद स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगा। यह अमीर एक इस्लाम की सुधारक शाखा 'वाहबी' का मतानुयायी था। इस शाखा का संस्थापक (१८वीं शताब्दी में) अब्दुलवहाब था। अब्दुलवहाब ने मुस्लिम सन्तों के मज़ारों पर सिज्दा करने के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। वह यह मूर्तिपूजन के समान समझता व मुसलमानों को समझाता था। इस कारण वहाबियों तथा अन्य मुसलमानों में द्वेष व झगड़े उत्पन्न हो गये।

प्रथम महायुद्ध के काल में ब्रिटेन ने अपना जाल यहाँ फैलाया। टर्की के विरुद्ध अरेबिया के राज्यों को लालच दिया तथा अनेकों प्रकार के वचन दिये। युद्ध के पश्चात अवसर पाकर इब्न सऊद ने हेजाज़ के शासक हुसैन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और मक्का को हाथ में लेकर वहाँ के मज़ारों को, इस्लाम से बुराइयाँ निकालने के बहाने, नष्ट किया। अरब व अन्य देशों के मुसलमानों ने इस पवित्र कार्य का समर्थन किया और इस प्रकार इब्न सऊद अरेबिया के एक बड़े खण्ड का शासक बन गया।

आज अरेबिया का देश कई देशों में विभाजित हो गया है। अब एक राज्य दूसरे राज्य को हड़प नहीं सकता। इस वैज्ञानिक युग में जहाँ वैमनस्य फैल रहे हैं, झगड़े भी हो रहे हैं, वहाँ अब बड़े देशों द्वारा छोटे देशों को उपनिवेश बनाने की प्रथा का भी अन्त हो रहा है तथा जनता जनार्दन में एकता का भाव भी जागृत हो रहा है। वह देश निम्नलिखित हैं :—

१. सऊदी अरेबिया; २. यमन; ३. दक्षिणी यमन; ४. कटार; ५. कुयेत; ६. मसकट – ओमान; ७. ट्रूशल ओमान तथा ८. जार्डन (दक्षिणी भाग)।

अरेबिया की लिपियाँ

नब्ती लिपि : नबात देश की आयु लगभग ३०० वर्ष की रही। यह सिनाइ के पूर्व में तथा अरेबिया के उत्तर – पश्चिम में स्थित था। मध्य अरेबिया में ई० पू० की पाँचवीं श० में एक पर्यटनशील जाति निवास करती थी। इसके मुख्य केन्द्र तैमा तथा मैदाने – सालिब थे। इन्होंने सिनाइ की ओर स्थानान्तरण किया और एडोम के निवासियों से युद्ध करके तथा उनको वहाँ से निकाल कर स्वयं बस गये। पेट्रा की एक पहाड़ी पर दुर्ग का निर्माण किया। अपना व्यापार तथा कुछ लूटमार का कार्य अपनी उदरपूर्ति के लिए आरम्भ कर दिया।

३१२ ई० पू० में सिकन्दर के एक सेनापति एण्टोगोनस ने इस दुर्ग पर तथा पेट्रा के नगर पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् जब यह जाति सम्पन्न होने लगी तो इस जाति के लोगों ने एक राज्य का निर्माण किया। इसकी स्थापना १६९ ई० पू० में हुई तथा पेट्रा इसकी राजधानी बना। ८५ ई० पू० में इस नबात देश के शासक अरतास ने हौरन (Hauran) तथा सीरिया की राजधानी दमिश्क या डैमसकस (Damascus) को कुछ समय के लिए अपने अधीन रखा। १०६ ई० सन् में रोम देश ने इस पर आक्रमण किया तथा भविष्य के लिए इसको इतिहास के पृष्ठों से लोप कर दिया। परन्तु इस देश की लिपि जीवित रही।

यहाँ की लिपि का नामकरण नवात देश से नब्ती हुआ। इसका विकास अरमायक द्वारा हुआ और यही आगे चल कर अरबी की जन्मदात्री बनी। जे० यल बर्कहार्ड (J. L. Burckhardt) ने सर्वप्रथम १८३० में पेट्रा के दर्शन किये। १८३५ में इटली का एक पर्यटक कार्लो गुरमानी (Carlo Gurmani) तैमा पहुँचा। १८३७ में वेल्सटेड (Wellsted) नक्ब अलहिजर से कुछ अभिलेखों की छापें लाया। १८७५ में एक ब्रिटेन निवासी यात्री चार्ल्स डाउटी (Chaıles Doughty) अलहिजर आया और इसने चट्टानों पर उत्कीर्ण लेखों की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं। इस लिपि के कुछ अभिलेख जेबेल द्रुज़ से भी प्राप्त हुए। इनको एमिल रोडिगर (Emile Rodiger) ने पढ़ा जो एक पुस्तक[1] में प्रकाशित हुआ।

इस लिपि के अक्षर[2] 'फ० सं० – १८८' पर दिये गये हैं, तथा उसका एक प्रतिदर्श 'फ० सं० – १८८क' पर दिया गया है। यह प्रतिदर्श एक द्विभाषिक – ग्रीक, नब्ती – अभिलेख से लिया गया है। यह हौरन में दि वोग (De Vogüe) तथा वाडिंगटन (Waddington) को १८६१ में प्राप्त हुआ। इसका काल ई० पू० की अन्तिम शताब्दी निर्धारित किया गया है। इसका अंग्रेज़ी का अनुवाद[3] फ़ुटनोट में दिया गया है जिससे हिन्दी का अनुवाद लेखक ने किया है।

हिन्दी अनुवाद : "(यह) स्मारक हमरात (की याद में) उदयनात के (द्वारा) बनाया गया, जो उसका देवता (स्वरूप) था"।

नब्ती लिपि का प्रतिदर्श

ह न ब ज द त र म ह ज द ह श प न

ह ल अँ ब त न ज द ह ल

फलक संख्या – १८८ क

थामुडिक लिपि : इस लिपि की दो शाखायें हैं। इस लिपि को ग्रिम (Grimme) ने १९०९ में विभाजित किया था क्योंकि दो प्रकार के वर्ण पाये गये थे। उनके नाम हैं हेजाज़ व नज्द के या प्राचीन व नवीन अथवा पश्चिम व पूर्व के वर्ण :—

1. Littmann : Nabataean Inscriptions (1914), p. – 203.
2. Enting : Nabatäische Inschriften (1895), p. – 312.
3. 'Monument to Hamrat, which (was) built to her (by) Odainat, her lord...'

नबात की नब्ती लिपि

फलक संख्या – १८८

१. हेजाज़ का एक राज्य लाल सागर के किनारे पर अरेबिया में स्थित था जिसमें दो धार्मिक मुख्य नगर थे — मक्का व मदीना। लाखों की संख्या में समस्त देशों से मुसलमान इन पवित्र स्थानों के दर्शनार्थ यहाँ आते थे। बनी अब्बास (के वंश) के ख़लीफ़ा के अन्त होने से यह राज्य मिस्र के अधीन हो गया तथा १५१७ में तुर्की के अधीन हो गया। इस राज्य के शासक हुसैन के दो पुत्र थे। ब्रिटिश सरकार ने इसको प्रसन्न करने के कारण उनको दो देशों का बादशाह बना दिया। अब्दुल्ला को ट्रांस जॉर्डन (Trans Jordon) का तथा फैज़ल को ईराक़ का। इस राज्य की लिपि के अभिलेख यहाँ मिलने से उसका नाम इस देश पर रख दिया गया।
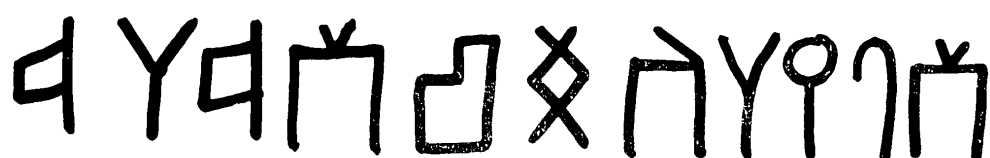
२. दूसरी शाखा का नाम नज्द था, क्योंकि यह इस राज्य में तथा अन्य स्थानों से भी प्राप्त की गई। नज्द अरेबिया के पूर्व की ओर था। यह भी तुर्कों के अधीन था। १९०५ में एक वहाबी शासक इब्न सऊद द्वारा यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। १९२६ में यह हेजाज़ का भी शासक बन गया, जिसके लिए इसने हेजाज़ पर आक्रमण किया था। १९३२ में यह दो राज्य मिल कर सऊदी अरेबिया के नाम से प्रचलित हो गया।

थामुडिक लिपि की उपर्युक्त दो प्रकार की लिपियों के लगभग १७५० अभिलेख हेजाज़ व नज्द से तथा कुछ सिनाइ व सफ़ा (दमिश्क के उत्तर में) से भी प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों को बड़े प्रयासों व कठिनाइयों द्वारा हूबर (Huber), एण्टिग (Enting), लिटमन (Littmann), याओसन (Jaussen), सैविगनाक (Savignac) और डाउटी (Doughty) ने एकत्रित किये।

इन अलिलेखों का काल ई० पू० की छठी से पाँचवीं शताब्दी, ग्रिम (Grimme – १९२६) व विनेट (Winnett – १९३८) द्वारा निर्धारित किया गया है। इनकी दिशा सीधे से बाईं ओर है।

इनमें २२ वर्ण थे जैसे कि अधिकतर प्राचीन सेमिटिक लिपियों में पाये जाते थे परन्तु आवश्यकता के अनुसार ६ वर्ण जोड़ कर २८ बना दिये गये। यह दायें से बायें तथा हल चलाने की पद्धति (Ploughing style) में भी प्रयोग की जाती थीं।

प्राचीन थामुडिक (हेजाज़) -- प्रतिदर्श

द ह द अ ग स क ह य ल अ

फलक संख्या – १८९ क

इन अभिलेखों की वर्णमाला[1] 'फ० सं० – १८९' पर दी गई है। एक लघ अभिलेख[2]

1. Hess, Jaussen. : Die Entziffering der thamudischen Inschriften (Paris – 1911) p. – 126.
2. Grimme, H. : Die Lösung des Sinaischrift problems, Die altthamudische Schrift (1926), p. – 23.

हेजाज़ और नज्द की लिपियाँ

ध्व	हेजाज़	नज्द	ध्व	हेजाज़	नज्द
अ			स		
ब			आ		
ग, ज			प, फ़		
द			ऑ		
ह			क़		
व			र		
ज़			श		
ह			त		
त			स		
य			ड		
क			ट		
ल			ख़		
म			ज़		
न			ज		

फलक संख्या – १८९

'फ० सं० – १८९ क' पर दिया गया है जिसको ग्रिम ने पढ़ा और प्रकाशित किया। इसका हिन्दी अनुवाद अंग्रेज़ी के अनुवाद[1] से किया गया है।

हिन्दी अनुवाद : 'एलिजाह गद – हद (अद) का पुजारी था'। यह तैमा से १६२६ में प्राप्त हुआ और इसका काल लगभग ६०० ई० पू०[2] माना गया है।

मण्डायक लिपि : यह लिपि उन ईसाईयों की थी जो बसरा (ईराक़) के निकट शातेल – अरब पर रहते थे। यह ईसाई अपने धर्म से ईसा की दूसरी श० में पृथक् हो गये थे क्योंकि वह अन्य देवताओं की भी पूजा करते थे। ईराक़ में आकर इनका नाम मण्डाइन, नाज़रीनी, सेबियन आदि पड़ गया था। चौदहवीं श० में इनकी संख्या लगभग १४००० थीं। अब बहुत कम रह गये हैं। सत्रहवीं श० में इनका नाम सेण्ट जॉन के क्रिश्चियन पड़ गया। इस जाति के नाम पर इस लिपि को भी मण्डायक, नाज़रीनी व सेबियन कहते हैं। यह लिपि धार्मिक पुस्तकों में ही दृष्टिगोचर होती है। इसका जन्म अरमायक तथा नब्ती से हुआ। इसकी भाषा अरमायक है। इसके वर्ण[3] तथा उच्चारण 'फ० सं० – १९०' के प्रथम कॉलम मे दिये गये हैं।

सफ़ातैनी लिपि : यह लिपि डेमसकस के उत्तर में पाई जाती थी। इस लिपि के अभिलेखों की खोज ग्राहम (Graham), वेस्टाइन (Wetzstein), डी वोग (De Vogue), वेडिंगटन (Waddington), दुस्साऊद (Dussaud) और लिटमन (Littmann) ने की तथा लगभग २००० अभिलेख प्राप्त किये। इसके अक्षरों का रहस्योद्घाटन हलेवी (Halevy), प्रेटोरियस (Praetorius), लिटमन और ग्रिम (Grimme) ने किया। (फ० सं० – १९० – द्वितीय कॉलम)

इस लिपि की दो शाखायें ग्रिम द्वारा निर्धारित की गई हैं। पहली उन अभिलेखों की जो सफ़ा से प्राप्त हुए तथा दूसरी वह लिपि जिसके अभिलेख उम्म – अल – जमल से प्राप्त हुए। यह अभिलेख दूसरी से चौथी शताब्दी के माने जाते हैं। सफ़ातैनी के वर्ण एक पुस्तक[4] से लिये गये हैं तथा उम्म – अल – जमल के वर्ण एक दूसरी पुस्तक[5] से लिये गये हैं। (फलक संख्या – १९० – तृतीय कॉलम)

नब्ती व मण्डायक में केवल २२ अक्षर मिलते हैं परन्तु इस लिपि में ६ अक्षर और जुड़ने से २८ अक्षर मिलते हैं।

सफ़ातैनी का प्रतिदर्श : इस अभिलेख का रहस्योद्घाटन ग्रिम ने १९२६ में किया, जो १९२९ में प्रकाशित[6] हुआ। इसकी दिशा बाणों द्वारा 'फ० स० – १९० क' पर दी गई है जिसको हल – पद्धति कहते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद (अंग्रेज़ी[7] के अनुवाद से) इस प्रकार होगा।—

---

1. 'Elijah, priest of Gad – Had (ad).'
2. Winnett : A Study of the Lihyanish and Thamudic Inscriptions (1938), p. – 185.
3. Müller, D. H. : Epigraphie Denkmäler aus Arabien (1899), p. – 304.
4. Halevy : 'Essai sur les inscriptions du Safa' – Extrait du Journal Asiatic (Paris – 1882), p. – 391.
5. Littmann : Zur Entziffering der Safa – inschriften (1901), p. – 92.
6. Grimme, H : Texte und unter Suchungen Zur Safaten - arab. Religion Mit einer Epigraphik (1929), p. – 259.
7. 'For A – ḥ – l – m son of A – sh – j – m, son of K – s – t and he spent the spring in the (Sacred) region, in the year of Gods.'

'कस्त सुत द्राल, सुत अशेम, सुत अख़लम ने बसन्त ऋतु (एक पवित्र) स्थान में (उस वर्ष) बिताई (जो) वर्ष देवताओं के (थे) ।'

सफ़ातैनी का प्रतिदर्श

व द त अ . ह द र . स ल त . श ज र त.

म ज श अ . न ब . ल अ र द न ब . त स क

बन अ ख़ ल म

फलक संख्या – १९० क

लिहियानिक लिपि : इस लिपि का नाम पश्चिम के विद्वानों ने लिहियानिक, लिथिनाइट तथा देदेनाइट रखा है। यह चट्टानों पर उत्कीर्ण किये हुए लेखनकला की तीन शाखाओं में से (थामुडिक, सफ़ायटिक तथा लिहियानिक) एक है। इस लिपि के अभिलेख १८८९ में हूबर, एण्टिग, याओसन तथा सैविगनाक द्वारा उत्तरी अरेबिया के अल – ऊला तथा अल हिजर के नगरों से प्राप्त हुए। इनकी लेखन पद्धति दायें से बायें तथा बायें से दायें – दोनों ओर की – मिली है। इन अभिलेखों का काल ई० पू० के ४०० से २०० तक निर्धारित किया गया है। कुछ अभिलेख ७०० से ४०० तक के भी प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों का रहस्योद्घाटन इमाइल रोडिगर तथा जेसेनियस ने किया था और जी० रीकमन्स (G. Ryckmans) ने एक पुस्तक[1] में संकलित किये हैं।

उन अभिलेखों की एक वर्णमाला[2] 'फ० सं० – १९१' पर दी गई है। देवनागरी अक्षरों का प्रयोग केवल ध्वनि का बोध कराने के लिए किया गया है।

ई० पू० की दूसरी शताब्दी के आरम्भ के पश्चात् जब उत्तरी अरेबिया से नब्ती का विकास तथा प्रसार हुआ तब लिहियानिक का शनैः शनैः लोप होने लगा। यह लिपि दक्षिण – सेमिटिक वंश की मानी जाती है।

1. Repertoire d'epigraphic Semitique Vol. VII (1912), p. – 271.
2. Winnett : A study of Lihyanish and Thamundic Inscriptions (1938), p. – 171.

मण्डायक, सफ़ातैनी, उम्म -- अल -- जमल

ध्व	म०	सफा०	उ०ज०	ध्व	म०	सफ़ा०	उ०ज०
अ				स			
ब				हे			
ग/ज				प/फ			
द				स			
ह				क़			
व				र			
ज़				श			
हे				त			
त				स			
इ				ड़			
क				ट/त			
ल				ख़			
म				ड			
न				ज़			
				ये			

फलक संख्या – १९०

लिहियानिक लिपि

व	ह	द	ज	ब	अ
ल	क	ज	त	ह	ज़
क़	स	प/फ़	अ	न	म
	ड	स	त	श	र
ये(ज)	ज़	ख़			ट

फलक संख्या – १९१

सिनाइ

फलक संख्या – १९२

सिनाइ की लिपियाँ

परिचय : सिनाइ मिस्र तथा अरेबिया के मध्य एक प्रायद्वीप है। इस भूभाग में न कभी कोई राज्य था, न कोई राजधानी थी और न कोई राजा। यहाँ न कभी इतनी जनसंख्या थी कि कोई राज्य स्थापित हो सके। यह भूभाग रेत से परिपूर्ण है। परन्तु फिर भी प्राचीन काल से बड़ा प्रसिद्ध रहा। इस स्थान को यहूदी, ईसाई तथा मुसलमान बड़ा पवित्र स्थान मानते हैं क्योंकि इसी सिनाइ के एक पहाड़ पर हज़रत मूसा को भगवान् यहोवा के दर्शन प्रकाश के रूप में हुए और उनकी ओर से कुछ आज्ञायें प्राप्त हुईं। इस पहाड़ को माउण्ट सिनाइ (Mount Sinai व कोहेतूर) कहते हैं। यहीं पर हेब्रू जाति के लोगों का पड़ाव पड़ा था जब कि वे मिस्र को छोड़ कर ई० पू० तेरहवीं श० में आये थे।

इसके अतिरिक्त मिस्र तथा अन्य पश्चिमी देशों के मध्य स्थित होने के कारण यह स्थान दोनों ओर के देशों की संस्कृतियों को मिलाने में बड़ा प्रसिद्ध रहा है। यह सदैव मिस्र के अधीन रहा चाहे मिस्र पर किसी वंश का राज्य क्यों न रहा हो। यहाँ पर तांबे की खानें भी थीं और ई० पू० की सत्रहवीं श० में इन खानों में बहुत से लोग, जो इस स्थान के पूर्व व पश्चिम में निवास करते थे, काम करते थे। यह काल सेमिटिक जाति के हिक्सास के राज्य का काल था जब वे मिस्र पर राज्य करते थे।

सिनाइ की प्राचीन लिपि : इस लिपि के १५ शिलालेख एक विश्वविख्यात पुरातत्त्ववेत्ता फिलण्डर्स पेट्री (Flinders Petrie) ने १९०४ – ५ के उत्खनन[1] द्वारा प्राप्त किये। इन शिलालेखों का काल १८०० – १६०० ई० पू० माना गया है। अन्य सेमिटिक लिपियों की तरह इसमें भी स्वर चिह्न नहीं मिलते। इसको पढ़ने वाला स्वयं स्वरों को अर्थानुसार पढ़ते समय जोड़ लिया करता था। इसमें १९ चिह्न प्राप्त हुए थे। 'फ० सं० – १६३' पर दिये गये वर्णों की ध्वनियाँ तथा उनका रहस्योद्घाटन ए० यच० गार्डिनर (A. H. Gardiner) द्वारा १९१६ में किया गया[2]। इस लिपि में पहले ३२ चिह्न मिले परन्तु उनमें से ८ के केवल रूप भेद थे इस कारण वर्णमाला में २४ चिह्न[3] दिये गये हैं। इस लिपि के दो लघु – अभिलेख[4] एक स्फ़िन्क्स[5] (शरीर शेर का परन्तु सिर मनुष्य का) के प्रतिदर्श के दोनों ओर अंकित हैं। यह स्फ़िन्क्स ब्रिटिश संग्रहालय – लन्दन (यु० के०) में सुरक्षित है। इन दोनों अभिलेखों की दिशा बाईं ओर से है। इनका हिन्दी अनुवाद, जो अंग्रेजी[6] के अनुवाद से लिया गया है, इस प्रकार है :— (फ० सं० – १९३ के नीचे)

१. 'बालत (बाल देवता) का प्रेम (कृपा दृष्टि) मिला'।
२. 'बालत (बाल देवता) की सेवा में'।

---

1. Moorhouse, C. : Writing and the Alphabet (Lond. 1946), p. – 41.
2. Gardiner, A. H. : The Inscriptions of Sinai (1955), p. – 201.
3. Sprengling, M. : The Alphabet (1931), p. – 28.
4. Albright, W. F. : 'Early Alphabatic Inscriptions from Sinai and their Decipherment- Bulletin of the American Schools of Oriental Research – No. 110 (NY. 1948), p. – 6 – 22.
5. इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मिस्र में दृष्टिगोचर होती हैं। लेखक के पूछने पर वहाँ पथप्रदर्शक ने बताया कि प्राचीन मिस्र के शासक यह विश्वास करते थे कि शासक को शक्ति शेर की रखनी चाहिये परन्तु बुद्धि मनुष्य की हो।
6. (i) 'Loved by Baalat (Baal) – (final 't' is damaged)
   (ii) 'Voting for Baalal.'

सिनाइ की लिपियाँ

व ह द द ग/ज ब ब अ अ

प/फ़ ए/ओ स न म ल क इ ज़

त श र क़

1

म अँ ह ब अ ल त

2

इ व द ल ब अ ल त

फलक संख्या – १९३

सिनाइ की अरबी लिपि : इस लिपि को नबात तथा उसके निकट के अरब निवासी ईसा की लगभग पहली तथा तीसरी शताब्दी के मध्य उत्कीर्ण करते रहे। उत्कीर्ण करने वाले अधिकतर पर्यटनशील व्यापारी थे जो अपने काफ़िले के साथ स्वेज़ नहर से पूरब की ओर ७५ मील पर एक ग्राम अबुज़िनेमा की उपत्यका में पड़ाव डाला करते थे। उत्कीर्ण की हुई चट्टानों के स्थान का नाम इसी कारण 'वादियेमुकत्तब' (लेखन की उपत्यका) पड़ गया।

सर्वप्रथम कॉसमस (Cosmus), जो सिकन्द्रिया का एक व्यापारी था लगभग ३०० वर्ष पूर्व भारत आया था। उसने यह मरुस्थान पैदल पार किया, तब उसने इन चट्टानों को देखा। अपने संस्मरण १७०७ में इटली में प्रकाशित कराये। तत्पश्चात् डा० रिचर्ड पोकॉक (Richard Pococke) ने इन शिलालेखों की कुछ प्रतिलिपियाँ तैयार कीं। उसने समझा कि यह उत्कीर्ण कार्य उन हेब्रू लोगों का है जो ह० मूसा के साथ सिनाइ आये थे। तदनन्तर १८३० में जॉ० यफ़० ग्रे (G. F. Gray) ने १७७ प्रतिलिपियाँ तैयार कीं जो एक पाक्षिक[1] में प्रकाशित हुईं तथा १८४० में एक जर्मन प्राच्यवेत्ता ई० यफ० यफ० बियर (E. F. F. Beer) ने अपना एक शोध – लेख प्रकाशित[2] किया जिसमें अनेक विद्वानों के रहस्योद्घाटन के प्रयासों का वर्णन किया, उदाहरणार्थ — पोकॉक, मोन्तेग, नीब्हुर, कॉन्तेली, रोज़िएर, बर्कहार्ड, ग्रे, लाबोर्दे, प्रूधोक, मेजर फ़ेलिक्स इत्यादि। अन्त में १९०४ में फ़्लिण्डर्स पेट्री ने उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार कीं तथा उसकी वर्णमाला[3] भी तैयार की जो 'फ० सं० – १९४' पर ऊपर की ओर दी गई है।

उसी के नीचे एक अभिलेख[4] भी दिया गया है जिसको बियर ने पढ़ा। इस अभिलेख का लिप्यन्तरण, शब्दार्थ तथा हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है :— (सीधी ओर से पढ़िये)

उत्कीर्ण शब्द	अर्थ
आम	साधारण (मनुष्य)
कारा	चिल्लू से पानी पीना
अदरदर	पानी का सोत (चश्मा)
अमा	यह सत्य है (बिलाशक)
आम	साधारण
अदरम (अदाराम)	दो स्थान जहाँ पानी भरा रहता था
रमहा	गधे को पीटना
हज़र	छड़ी से पीटना
दर (ज़र)	वृक्ष की पतली शाखा
ऑन (एन)	पानी
मर (मुरा)	कड़वा
रफ़ (राफ़)	स्वस्थ करना

1. Gray, G. F. : Transactions of the Royal Society of Literature – Vol. ii – Part. 1. (1830), p. – 251.
2. Beer, E. F. F. : Studia Asiatica (1840), p. – 283.
3. Cowley, A. E. : 'Sinaitic Inscriptions' – Journal of Egyptian Archaeology (1929), p. – 200.
4. Forster, Rev. Charles : One Primeval Language (1850), p. – 273.

सिनाइ की अरबी लिपि

स ज़ द ख़ ह स त ब अ

म ल क क़ फ़ ऑ स श

ज़ र ये ह न

सिनाइ की अरबी लिपि का प्रतिदर्श

अ म अ र द र द ऑ ऑरा का . म आ

र ज़ ह ऑ ह म र म र द अ म आ

फ़ र र म न ऑ र द

फलक संख्या – १९४

इस अभिलेख का हिन्दी अनुवाद अंग्रेज़ी[1] के अनुवाद से लेखक द्वारा इस प्रकार किया गया है :—

भावार्थ :— '(जो) लोग औंधे मुँह से स्रोत (चश्मा) से पानी पीते हैं, (जो) लोग दो स्रोतों पर गधों को वृक्षों की शाखाओं (छड़ियों) से पीटते हैं (वे) कटुता के कुवें को स्वस्थ रखते (पाटते) हैं।'

सबा की लिपि : सबाई या साबी लोग अरेबिया के पर्यटनशील लुटेरे थे। यह लोग दक्षिण की ओर गये और वहाँ जाकर लगभग १२०० ई० पू० में बस गये और अपना एक राज्य स्थापित कर लिया जिसका नाम अपनी जाति के नाम पर सबा रखा। उसकी राजधानी मारिब थी। असीरिया के शासक सेन्नाख़रिब (६८५ ई० पू०) के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस समय इस देश का एक क – री – बी – लू राजा था और उसने इसी शासक से कुछ सुन्दर वस्तुयें भेंट – स्वरूप प्राप्त की थीं।

इन्हीं अभिलेखों से ज्ञात होता है कि लगभग ई० पू० की सातवीं शताब्दी में सबा के निकट तीन अन्य राज्य भी स्थित थे। एक मिनायन अथवा माईन का राज्य, जिसके मुख्य नगर करनवू, माईन तथा यथील थे। दूसरा हैद्रामौत तथा तीसरा कताबान था। अन्तिम दो राज्य उल्लेखनीय नहीं हैं।

माईन राज्य में लगभग २५ शासकों ने ई० पू० की बारहवीं से सातवीं श० तक राज्य किया। इसी काल के कुछ अभिलेख पश्चिमोत्तर अरेबिया के अल – ऊला नगर से प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस राज्य के कुछ उपनिवेश वहाँ पर स्थित थे।

सबा का राज्य ई० पू० की सातवीं से तीसरी शताब्दी तक स्थापित रहा तथा ई० पू० की तीसरी शताब्दी से ईसा की छठी श० तक हिमारी जाति का राज्य स्थापित रहा। दक्षिणी – पश्चिमी अरेबिया का कोना अफ्रीका देश से मिला हुआ था जहाँ अबीसीनिया का राज्य था। हिमारी राजा ने ३७५ ई० में यहूदी धर्म अपना लिया परन्तु अबीसीनिया का राजा ईसाई धर्म को पालने वाला था। इस कारण इन दोनों देशों में निरन्तर झगड़े चलते रहे। अन्त में हिमारी राज्य अबीसीनिया के अन्तर्गत हो गया और वहाँ का एक प्रान्तपाल शासन करने लगा। ५७९ ई० में हिमारी राज्य पर्शिया राज्य के अधीन आ गया तथा ६२८ में यहाँ के पर्शिया – राज्य के प्रान्तपाल ने इस्लाम धर्म अपना लिया। सबा की लिपि के अभिलेखों को १८८९ में हूबर तथा हूण्टिग ने अल – ऊला से प्राप्त किया। इन अभिलेखों के वर्णों का रहस्योद्घाटन डब्ल्यू० जेसेनियस (W. Gesenius) तथा ई० रोडिगर (E. Rodiger) ने किया और २९ वर्णों में से २४ को ठीक ठीक पहचान लिया। तत्पश्चात् पाँच वर्ण भी पहचान लिये गये। इस लिपि का काल ई० पू० की सातवीं से तीसरी शताब्दी तक का माना जाता है।

इस लिपि के वर्ण[2] 'फ० सं० – १९५' पर दिये गये हैं। ऊपर २२ वर्ण हैं तथा नीचे ७ और जोड़े गये थे, केवल भाषा के उच्चारणों के लिए निर्मित हुए। दायें बायें के रेखाचित्रों को देखने से लगता है कि किसी ने बाँसों को जोड़ कर ऊपर चढने के लिए कोई सीढ़ी जैसी बनाई है परन्तु यह शब्द[3] हैं जिनको

---
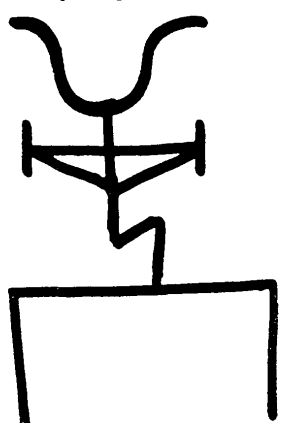
1. 'The people with prone mouth drinketh (at) water springs. The people (at) the two springs kicketh (like) an ass smiting with the branch of a tree the well of bitterness he heals.'
2. Lidzbarski : 'Der Ursprung der nord Südsemitischen schrift' – Ephemeris. 1. (1928), p. – 109.
3. Müller, D. H. : Epigraphic Deukmäler aus Arabien (1899), p. – 233.

सबा की लिपि

ध्व	चिन्ह	ध्व	चिन्ह	ध्व	चिन्ह	ध्व	चिन्ह
अ		ह		स		त	X
ब		त		आ	O	स	
ग ज		य		प फ		ड़	
द		क		स		ट	
ह		ल		क़		ख़	
व		म		र		ड	
ज़		न		श	३	ज़	

ह र श ल अ

स ख़ अ
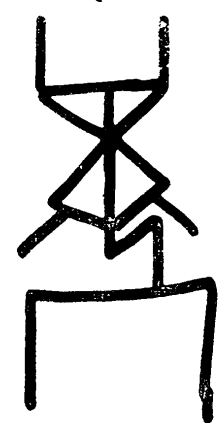
दायें से बायें पढ़िये

सात वर्ण जोड़े गये

स य ड ट ख़ ज़ द

'अख़स' तथा 'अल शरह्' पढ़ा जायेगा। पहले शब्द के अर्थ हैं 'प्रतिविम्ब' तथा दूसरे के 'धार्मिक विधि संहिता'।

अरबी लिपि की अन्य शाखायें

अन्य शाखाओं में चार प्रकार की अरबी लिपियाँ मिलती हैं। इनका जन्म व विकास नब्ती लिपि से माना जाता है।

१. ज़ेबेद लिपि : सिरिया की लिपियों में एक अभिलेख का वर्णन पहले किया जा चुका है। यह अभिलेख ज़ेबेद (सीरिया) से १८७९ में प्राप्त हुआ था और इस पर तीन प्रकार की (सीरिया, ग्रीस तथा अरेबिया की) लिपियाँ अंकित थीं। इस अभिलेख का काल ईसा की छठी शताब्दी माना जाता है। इसी अभिलेख की अरबी लिपि का यहाँ वर्णन दिया गया है। इसके १७ वर्ण 'फ० सं० – १९६' पर दिये गये हैं।

२. कूफ़ा की लिपि : अरबी में इसको ख़त्ते कूफ़ी कहते हैं। यह लिपि सुलेख के लिए स्मारकों पर अंकित की जाती थी। इसमें सीधी पंक्तियों से वर्ण बनाये जाते हैं। इस लिपि में क़ुरआन शरीफ़ भी लिखा गया है। इसका जन्म कूफ़ा के नगर में, जो आधुनिक अल हीरा है, ईसा की सातवीं शताब्दी में हुआ था। बारहवीं श० के पश्चात् इसका प्रयोग लगभग समाप्त हो गया। सबसे प्राचीन अभिलेख ज़ेरुसेलम की एक मस्जिद के गुम्बज पर उत्कीर्ण किया हुआ मिला है। इस मस्जिद का निर्माण ६९१ – ९२ में हुआ था। इसमें २८ वर्ण हैं जो 'फ० सं० – १९६' पर दिये गये हैं।

३. मग़रिबी : (पश्चिम अरबी) इस लिपि की उत्पत्ति एक विद्वान् द्वारा लगभग ईसा की नवीं शताब्दी में कूफ़ा की लिपि से उन मुसलमानों के लिए की गई थी जो अरेबिया के पश्चिमी देशों में जाकर लड़े, बसे तथा इस्लामी राज्य (स्पेन तक) स्थापित किया (फ० सं० – १९६)।

४. नस्ख़ : (शीघ्र लिखी जाने वाली अरबी) – शनैः शनैः जब मुसलमानों ने जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र तथा विषयों में प्रगति की तब कार्यक्षमता बढ़ाने की भी आवश्यकता हुई और लिपि की गति बढ़ाने के लिए इस नस्ख़ लिपि का विकास किया गया। इसका विकास एक मनुष्य ने नहीं किया। यह समय की आवश्यकतानुसार स्वयं विकसित हुई। इसी लिपि से पर्शिया, अफ़ग़ानिस्तान, सिन्ध, कश्मीर व मलाया आदि देशों की लिपियों का विकास उच्चारण की सुविधानुसार परिवर्तन करके हुआ (फ० सं० – १९६)।

नस्ख़ लिपि का विकास :[1] नब्ती लिपि से आठ सौ वर्षों में किस प्रकार हुआ – 'फ० सं० – १९७, १९७ क' पर आठ कॉलमों में दिया गया है, जिनका विवरण निम्नलिखित है :—

१. इस कॉलम में ध्वनि को जानने के लिए देवनागरी के वर्ण दिये गये हैं।
२. इसमें नब्ती लिपि (उत्तरी अरबी), जिसका प्रयोग पेट्रा व हिज्र में ई० सन् की पहली से तीसरी शताब्दी तक रहा, दी गई है।
३. इसमें उस नब्ती लिपि के वर्ण दिथे गये हैं जो नमारह में चौथी श० में प्रयोगात्मक थे। लिपि के वर्ण एक अभिलेख से लिये गये हैं जो इम्रअल क़ैस से प्राप्त हुआ और विद्वानों ने इस अभिलेख का काल ३२८ निर्धारित किया।
४. इसमें छठी श० के वर्ण दिये हैं जो ज़ेबेद व हरन के अभिलेखों से लिये गये हैं। इन अभिलेखों का काल ५१२ तथा ५६८ ई० सन् माना गया है।

1. Abott, Nabia : Rise and Development of North Arabic Script (1939), p. – 103.

अरबी लिपि की अन्य शाखायें

ध्व	ज़ेबेद	कूफी	मग़रिबी	नस्ख़	ध्व	ज़ेबेद	कूफी	मग़रबी	नस्ख़
अ	ا	ا	ا	ا	ज़		ض	ض	ض
ब	ب	ب	ب	ب	त	ط	ط	ط	ط
त	ت	ت	ت	ت	ज़		ظ	ظ	ظ
स		ث	ث	ث	अ	ع	ع	ع	ع
ज	ج	ج	ج	ج	ग़		غ	غ	غ
ह	ح	ح	ح	ح	फ़	ف	ف	ف	ف
ख़		خ		خ	क़		ق	ق	ق
द	د	د	د	د	ला			لا	لا
ज़		ذ	ذ	ذ	ल	ل	ل	ل	ل
र	ر	ر	ر	ر	म	م	م	م	م
ज़		ز	ز	ز	न	ن	ن	ن	ن
स		س	س	س	व	و	و	و	و
श	ش	ش	ش	ش	ह	ه	ه	ه	ه
स		ص	ص	ص	य	ي	ي	ي	ي
					क		ك		

फलक संख्या – १९६

१	२	३	४	५	६	७	८
ल						लाम	ل
म						मीम	م
न						नून	ن
अॅ						ऐन	ع
फ़						फ़े	ف
स						स्वाद	ص
क़						क़ाफ़	ق
र						रे	ر
श						शीन	ش
त						ते	ت
ला						ला	لا

ग़ैन ग़ غ	ज़ोय ज़ ظ	ज़्वाद ज़ ض	ज़ाल ज़ ذ	ख़े ख़ خ	सीन स س	से स ث

फलक संख्या – १९७ क

५. कुरआन मजीद की दो प्रकार की लिपियों का एक प्रयोग हुआ, जिसमें एक मक्का शरीफ़ में तथा दूसरी कूफ़ा में प्रयोग की गई। हज़रत उस्मान द्वारा तैयार किया गया मान्यता प्राप्त था। मक्का में और दूसरा बसरा (बाद में कूफ़ा) के प्रान्तपाल अबू मूसा इब्न क़ैस द्वारा तैयार किया गया, जो कूफ़ा की लिपि में लिखा गया था, बसरा व कूफ़ा में मान्यता प्राप्त था। इन दो प्रकार की लिपियों में संकलित कुरआन मजीद दोनों जगह पढ़ा जाता था। कूफ़ी लिपि का सबसे प्राचीन अभिलेख यरुसलम की एक मस्जिद के गुम्बज पर उत्कीर्ण पाया गया जिसकी तिथि ६९१ – ९२ ई० सन् मानी गई है। इस लिपि में गोलाई नहीं थी क्योंकि इसका अधिक प्रयोग मस्जिदों पर, बड़े मकानों पर तथा धातु के बर्तनों पर उत्कीर्ण करके किया जाता। इसका प्रयोग सातवीं से बारहवीं श० तक रहा। इस कॉलम में कूफ़ी लिपि के वर्ण दिये गये हैं।

६. इस कॉलम में छठी से सातवीं श० के वर्ण दिये गये हैं जिनका प्रयोग काग़ज़ पर लिखने हेतु भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा किया गया।

७. इसमें वर्णों के नाम दिये गये हैं।

८. इसमें नस्ख़ी लिपि के वर्ण दिये गये हैं। इनकी संख्या आरम्भ काल में केवल २२ ही थी परन्तु बाद में (काल निर्धारित नहीं है) सात वर्ण जोड़ कर, जो नीचे दिये गये हैं और जिनके साथ ऊपर की पंक्ति में वर्ण का नाम तथा उसके नीचे उसकी ध्वनि दी गई हैं, २९ बना दिये गये तथा उनका क्रम भी परिवर्तित कर दिया गया जो आधुनिक नस्ख़ी (अरबी) में इस प्रकार है :— अलिफ़, बे, ते, से, जीम, हे, ख़े, दाल, ज़ाल, रे, ज़े, सीन, शीन, स्वाद, ज़्वाद, तो, ज़ो, ऐन, ग़ैन, फ़े, क़ाफ़, काफ़, लाम, मीम, नू, वाव, हे, ला, ये।

अरबी लिपि के विषय में कुछ अन्य बातें

इस्लाम धर्म के अनुसार मुसलमानों का यह विश्वास है कि अरबी लिपि हज़रत आदम के साथ पृथ्वी पर आई परन्तु केवल छः अक्षर उनको अल्लाह के द्वारा प्राप्त हुए। वे अक्षर थे :— अलिफ़, बे, जीम, से, ते, ख़े जिनकी ध्वनि थी अ, ब, ज, स, त और ख़। तत्पश्चात् हज़रत मोहम्मद पर दूसरे ढंग से उतरे और वे वर्ण थे :— अलिफ़, हे, रे, सीन, स्वाद, तो, ऐन, क़ाफ़, काफ़, लाम, मीम, नू, हे, ये, जिनकी ध्वनि थी :— अ, ह, र, स, स, त, ऑ, क़, क, ल, म, न, ह, इ।
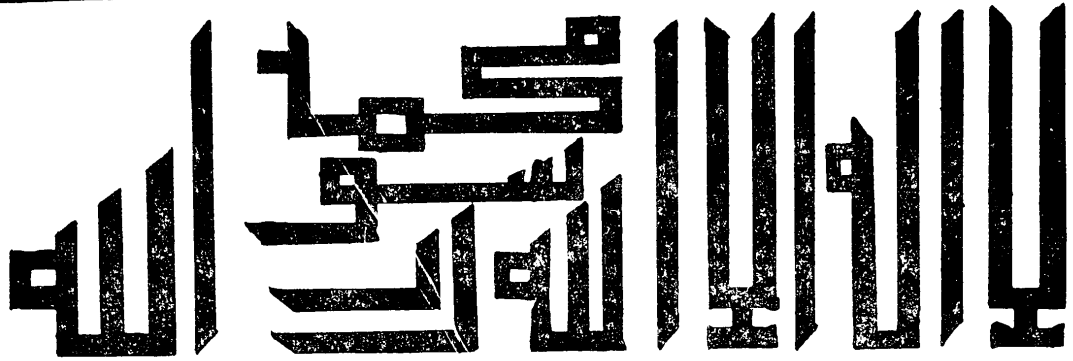
अरबी का कोई शब्द सात वर्णों से अधिक नहीं बनता।

अरबी में कराची नगर का नाम किरातिशी है तथा चर्चिल का नाम तशरशिला (तर्शतिल) और चीन का सीन है।

'फ० सं० – १९८' पर कूफ़ा की लिपि में इस्लाम धर्म का पवित्र कलमा लिखा है जिसको हृदय से पढ़ने पर कोई भी मनुष्य मुसलमान (अर्थात् अटल विश्वास वाला) हो सकता है। तदनन्तर वह अन्य धार्मिक विचारों को सीखे और जीवन में अपनाये। इस कलमे को दायें से बायें इस प्रकार पढ़ा जायेगा "ला इलाह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर रसूलुल्लाह्"। इसके अर्थ हैं 'कोइ नहीं है पूजने योग्य सिवाय उस सत्ता के जिसका नाम अल्लाह है और उसका पैग़ाम लाने वाला है (हज़रत) मुहम्मद (सल्ल०)।

'फ० सं० – १९८' के नीचे विभिन्न देशों के नाम दिये गये हैं जहाँ अरबी लिपि में उन देशों की भाषाओं के उच्चारणों के अनुसार नये प्रकार के (अरबी से समानता रखने वाले) वर्णों का आविष्कार किया

कूफ़ी लिपि में 'कलमा'

नये देशों में नये वर्णों का जन्म

ईरान की फ़ारसी में	गाफ़=ग ; ज़ाल=ज़; चे=च ; पे=प پ . چ . ژ . گ
अफ़ग़ानिस्तान की पश्तो व दरी में	त.भ.द्स.त्स्.द्ज़.ड़.ज
भारत की उर्दू में	गाफ़ काफ़ चीम जीम पे झ़े टे डाल ड़े ग क च ज प झ़ ट ड ड़
मैलेशिया की मैले में	ण अं

गया ताकि उच्चारण ठीक हो सकें। क्योंकि जो ध्वनियाँ उन देशों की भाषाओं में पाई जाती थीं वह ध्वनियाँ अरबी भाषा में थी ही नहीं। एक और कठिनाई प्रतीत होती है कि एक ध्वनि के लिए दो और तीन तक वर्ण मिलते हैं। उन वर्णों का आविष्कार क्यों और कब किया गया, जानना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है (फ० सं० – १९८)।

अरमेनिया

इतिहास : ई० पू० की नवीं श० में अरमेनिया के निवासी दो नामों से सम्बोधित किये जाते थे। एक उरार्ती से, उरार्तू पहाड़ पर व उसके निकट निवास करने के कारण तथा ख़ाल्दी से, अपने मुख्य देवता ख़ाल्दी के नाम के कारण। वान झील के किनारे पर बसा वान नगर इनकी राजधानी थी। असीरिया से इनके युद्ध होते रहते थे। अन्त में सरगोन द्वितीय (७२२ – ७०५ ई० पू०) से परास्त होने के कारण इनका पतन होने लगा।

कालासागर के उत्तर से एक भारोपीय जाति, जो यहाँ आकर बसने लगी थी, यहाँ के निवासियों से इतनी घुल – मिल गई कि वह आरमेनियन कहलाने लगी। ६१२ ई० पू० में मीडिया ने इसको परास्त किया। ५४९ में यह पर्शिया का एक प्रान्त बन गया। ३३१ में सिकन्दर के साम्राज्य का अंग बन गया। तत्पश्चात् यह दो प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया। १९० ई० पू० में दोनों प्रान्तपतियों ने ऐण्टीओकस तृतीय (Antiochus III) के, जो सीरिया का राजा (२२३ से १८७ ई० पू० तक) था, के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और स्वतन्त्र हो गये। एक प्रान्तपति आर्तक्सियाज़ ने आर्तक्सिेटा मुख्य नगर के साथ विशाल अरमेनिया का तथा दूसरे ज़ेरियाड्स ने सोफ़ीन (लेसर अरमेनिया) का राज्य स्थापित किया। ९५ ई० पू० में यह रोम द्वारा परास्त हुए तथा ६९ में रोम राज्य के अंग बन गये।

त्रिडेट्स प्रथम (Tiridates) ६६ ई० सन् में रोम की अधीनता में अरमेनिया का राजा घोषित कर दिया गया। ३०३ ई० में त्रिडेट्स तृतीय ने ईसाई धर्म को अपना राज्य धर्म बना दिया। धर्म परिवर्तन के कारण चथिी श० में अरमेनिया और पर्शिया के मध्य युद्ध चलते रहे जिसके फलस्वरूप यह देश ३८७ में फिर दो भागों में (रोम और पर्शिया का ग्रास बन कर) विभाजित हो गया। अरबों ने पर्शिया को परास्त कर इन दोनों भागों पर भी अपना अधिकार सातवीं श० के अन्त तक जमा लिया। फिर भी अरमेनिया को शान्ति न मिली। सेल्जुक और बैज़नटाइन में युद्ध होने लगे। सेल्जुक लोगों की जीत हुई और इन लोगों ने इसको अपने अधीन कर अरमेनिया को पुनः अखण्ड बना दिया।

१२४० में मंगोलों ने पूरे पश्चिमी एशिया पर अपना अधिकार कर लिया तथा नरसंहारक लूटमार मचाते रहे। इसी काल में अरमेनिया के निवासी दुखी होकर अपना घर बार छोड़ छोड़ कर विश्व के अन्य देशों में जाकर बसने लगे। १३५१ में अरमेनिया छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो गया। प्रथम महायुद्ध में लगभग दस लाख निवासी मार डाले गये ताकि अरमेनिया जाति ही समाप्त कर दी जाये। बचे हुए लोगों ने अरमेनिया का रूस के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र गणराज्य स्थापित कर लिया।

अरमेनिया की लिपियाँ : एक ईसाई सन्त मेस्राप (मेस्राब – मृत्यु ४४१ ई० सन्) ने पाँचवीं श० के आरम्भ में इस देश के लिए अरमायक व ग्रीक लिपि के वर्णों की सहायता से एक ३८ वर्णों की लिपि तैयार की जिसमें कुछ परिवर्तन के साथ नाम भी बदलते रहे, जो निम्नलिखित थे :—

सकेत:-

१. लीकिया
२. प्सीडिया
३. लाइकोनिया
४. पैम्फीलिया
५. क्लीशिया
६. ग्लाटिया
७. सोफ़ीन
८. कोनोजिनी
९. आस्रोपनी
१०. असीरिया
११. मेसोपोटामिया
१२. पैलेस्टाइन
१३. अरेबिया-पेट्रा
१४. एशिया-माइनर
१५. सीरिया
१६. लेसर अरमेनिया
१७. पोन्टस

फलक संख्या – १९९

१, एर्कत – अजिर (लोह – लिपि) – आठवीं श० तक।
२. मेस्रोपी लिपि – नवीं से बारहवीं श० तक।
३. बोलर – अजिर (गोल लिपि) – बारहवीं से चौदहवीं श० तक।
४. नोत्र – अजिर (शींघ्र लिपि) – पन्द्रहवीं से अठारहवीं श० तक।
५. सेल – अजिर (मिली हुई लिपि) – अठारहवीं से उन्नीसवीं श० तक।
६. नवीन लिपि (आधुनिक) – उन्नीसवीं से अब तक।

इसमें अधिक प्रयोगात्मक बोलर – अजिर है। इसमें ३८ अक्षर हैं। इसकी वर्णमाला 'फ० सं० – २००' पर दी गई है। इसमें कुछ अन्य देशों व लिपियों के अक्षर लिये गये हैं, कुछ में परिवर्तन करके लिये गये हैं, कुछ का आविष्कार किया गया है तथा कुछ और नई ध्वनियों को भाषा के अनुसार उत्पन्न करने के लिए अक्षरों का रूप दिया गया। इस प्रकार से यह आधुनिक लिपि तैयार की गई है। अजिर के अर्थ हैं अक्षर।

'फ० सं० – २००' पर दो प्रकार की लिपियाँ[1] दी गई हैं। एक मुद्रणार्थ जिसमें बड़े व छोटे अक्षर तथा दूसरी हस्त – लेखनार्थ जिसमें बड़े छोटे अक्षर दिये गये हैं। पहले कॉलम में ध्वनियों के लिए देवनागरी वर्ण हैं तथा दूसरे कॉलम में वर्णों के नाम दिये गये हैं।

जॉर्जिया

इतिहास : बेबीलोन – निवासी जफ़ेत का एक पुत्र तरगोमास काकेशस के पहाड़ों में आकर बस गया था। इसके एक पुत्र कार्टलास के वंशज कार्टलियन (पूर्वी जॉर्जिया निवासी) हुए तथा दूसरे पुत्र एग्रास के वंशज मिग्रेली (पश्चिमी जॉर्जिया निवासी) हुए। जब सिकन्दर ने ३३१ ई० पू० में पर्शियन साम्राज्य को को नष्ट कर दिया, कार्टलियन (इसका दूसरा नाम आईबेरिया भी था परन्तु यह स्पेन वाला आईबेरिया नहीं था) के राजा फ़रनवाज़ ने दोनों भागों को मिला कर एक करके उसको सिकन्दर के प्रान्तपतियों से मुक्त करा लिया और स्वतन्त्र रूप से राज्य किया।

आईबेरिया का राजा मिरियानी (३०० से ३६२ तक – ई० सन्) इसाई हो गया। तत्पश्चात् यह पर्शिया के अधीन रहा और ५३३ में उसका एक प्रान्त बना लिया गया परन्तु बैज़ेण्टाइन ने फिर इसको स्वतन्त्र करवा दिया और गुआराम को नरेश बना दिया जिसने तिफ़लिस या त्बीलिसी (त्बीली = गर्म) को ५६२ में अपनी नई राजधानी बनाया।

ईसा की सातवीं श० में यह मुसलमानों के अधीन हो गया और एक अरब यहाँ का राजा बना कर भेज दिया गया। इन्हीं दिनों एक बगरातैनी वंश जॉर्जिया व अरमेनिया पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए गृहयुद्ध करने लगा। इसी वंश का बगरात तृतीय (१००८ – १०१४ ईसवी) सफल हो गया और राजा बन गया और दोनों को मिला दिया। बगरात चतुर्थ (१०२७ से १०७२ ई० तक) के काल में सेल्जुक – तुर्कों ने जॉर्जिया पर आक्रमण कर दिया परन्तु धर्म – युद्ध (Crusades) के आरम्भ हो जाने के कारण तुर्क फिर पश्चिम की ओर लौट पड़े। डेविड द्वितीय अग़माशेरबेली (१०८९ से ११२५) ने ११२२ में फिर तिफ़लिस को परास्त कर दिया।

जब डेविड का स्वर्गवास हुआ तो अराजकता जागने लगी। परन्तु रानी तमारा (११८४ – १२१२) ने परिस्थिति को ठीक कर लिया तथा राज्य का कुछ विस्तार भी किया। १२२० में चंगेज़ खाँ की सेना ने

1. Bossert : Elements de la langue georgienne (1873), p. – 2.

अरमेनिया की लिपि -- बोलर -- अजिर

ध्व	नाम	मुद्रण के		हस्त लेखन		नाम	ध्व	मुद्रण		हस्त लेखन के	
अ	ऐब	Ա	ա	Ա	ա	में	म	Մ	մ	Մ	մ
ब	बेन	Բ	բ	Բ	բ	ईई-ही	ई	Յ	յ	Յ	յ
ग	गिम	Գ	գ	Գ	գ	नू	न	Ն	ն	Ն	ն
द	दा	Դ	դ	Դ	դ	शा	श	Շ	շ	Շ	շ
ए	एच	Ե	ե	Ե	ե	वू	वू	Ո	ո	Ո	ո
ज़	ज़ा	Զ	զ	Զ	զ	झा	झ	Չ	չ	Չ	չ
ई	ई	Է	է	Է	է	पे	प	Պ	պ	Պ	պ
इ	इत	Ը	ը	Ը	ը	चे	च	Ջ	ջ	Ջ	ջ
त	तो	Թ	թ	Թ	թ	रा	र	Ռ	ռ	Ռ	ռ
ज़ह	ज़ेह	Ժ	ժ	Ժ	ժ	से	स	Ս	ս	Ս	ս
ई	इनि	Ի	ի	Ի	ի	वेव	व	Վ	վ	Վ	վ
ल	लिपून	Լ	լ	Լ	լ	टिपून	ट	Տ	տ	Տ	տ
ख़	खे़	Խ	խ	Խ	խ	रे	र	Ր	ր	Ր	ր
त्स	त्सा	Ծ	ծ	Ծ	ծ	त्सो	त्स	Ց	ց	Ց	ց
क	केन	Կ	կ	Կ	կ	हीउन	हे	Ւ	ւ	Ւ	ւ
ह	क्हो	Հ	հ	Հ	հ	पिवर	प	Փ	փ	Փ	փ
द्ज़	द्ज़ा	Ձ	ձ	Ձ	ձ	खे	ख क्क	Ք	ք	Ք	ք
घ	घाट	Ղ	ղ	Ղ	ղ	औ	औ	Օ	օ	Օ	օ
ज	जे	Ճ	ճ	Ճ	ճ	फ़े	फ़	Ֆ	ֆ	Ֆ	ֆ

फलक संख्या – २००

अरमेनिया जॉर्जिया

फलक संख्या – २०१

जॉर्जिया की शान्ति को भंग कर दिया और १२३६ में यह मंगोल राज्य का एक अंग बन गया। जब पर्शिया में मंगोल के शासन का अन्त होने लगा तो फिर जियार्जी – पंचम नरेश के राज्य में (१३१४ – १३४६) शान्ति एवं एकता आ गई। १३८६ में तैमूर ने फिर आक्रमण करके बगरात पंचम (१३६० – १३९३) को बन्दी बना लिया। १४०४ ई० सन् तक तैमूर का नरसंहार होता रहा परन्तु सिकन्दर के शासन (१४१३ – १४४३) काल में जॉर्जिया ने नया जन्म लिया। १७२२ में जब रूसी साम्राज्य ने अपने हाथ बढ़ाये तो इकाली द्वितीय ने १७८३ में रूस से एक सन्धि कर ली। १७९५ में पर्शिया के राजा आगा मोहम्मद ने जॉर्जिया पर आक्रमण करके तिबलिस को नष्ट – भ्रष्ट कर दिया। १७९८ में इकाली राजा का स्वर्गवास हो गया। उसका उत्तराधिकारी जियार्जी बारहवाँ १८०० में परलोक सिधार गया और जॉर्जिया का राज्य रूस के साम्राज्य का अंग बन गया और रूस के राजनैतिक परिवर्तन के साथ एक स्वतन्त्र गणतन्त्र रूसी – पर्दे में हो गया।

जॉर्जिया की लिपि : इसके भी जन्मदाता सन्त मेस्राब हैं। जॉर्जिया निवासी पहले लोग हैं जिन्होंने अपनी भाषा की लिपि प्राप्त की। इसकी दो शाखायें हैं। एक हुतसुरी या खुतसुरी (हुतसी = पुजारी; खत्ते = लिपि या अक्षर + सुरी = आकाश अर्थात् आकाश से प्राप्त लिपि) धार्मिक लिपि है। दूसरी मेहद्रूली सैनिक (मेहद्री = सैनिक) लिपि है। हुतसुरी में ३८ चिह्न हैं (३८ छोटे तथा ३८ बड़े, रोमन के प्रकार से)। अब इसका प्रयोग कम हो गया है। मेहद्रूली का प्रयोग आज भी प्रचलित है। इसमें ४० चिह्न हैं जिनमें सात का प्रयोग अब नहीं होता। इसको जॉर्जिया के एक राजकुमार पर्नवाइ ने ईसा की चौथी श० के आरम्भिक चरण में बनाया था और कुछ विद्वानों के मतानुसार खुतसुरी से पूर्व इसका प्रयोग था। मेस्राब ने कुछ परिवर्तन इसमें भी किये। यह खुतसुरी की हस्तलिखित पद्धति है। हस्तलिखित में संश्लिष्ट अक्षरों का भी निर्माण किया गया है।

इन दोनों लिपियों में ग्रीक, अरमायक व पहेलवी के वर्ण या तो अपने शुद्ध रूप में या परिवर्तित रूप में पाये जाते हैं।

'फ० सं० – २०२' पर जो लिपियाँ[1] दी गई हैं उनका विवरण इस प्रकार हैं :—

बाएँ से दाएँ की ओर—

- पहले कॉलम में ध्वनियां दी हुई हैं।
- दूसरे कॉलम में अक्षरों के नाम दिये गये हैं।
- तीसरे कॉलम में पाँचवीं श० के खुतसुरी के अक्षर हैं।
- चौथे कॉलम में नवीं श० के खुतसुरी के अक्षर हैं।
- पाँचवें कॉलम में ग्यारहवीं श० के खुतसुरी के अक्षर हैं।
- छठे कालम में मुद्रण के लिए खुतसुरी के अक्षर हैं।
- सातवें कॉलम में हस्तलिखित मेहद्रूली के अक्षर हैं।

जिन अक्षरों पर तारे के चिह्न बने हैं उनका प्रयोग अब नहीं होता है। इसी कारण जो अक्षर मेहद्रूली में ४० तक हो गये थे अब केवल ३३ का ही प्रयोग होता है। ग्रीक लिपि के प्रभाव के कारण यह लिपि बाएँ से दाएँ पढ़ी व लिखी जाती है।

'फ० सं० – २०३' पर हस्तलिखित छोटे अक्षर दिये गये हैं तथा कुछ शब्द[2] भी दिये गये हैं।

---

1. Decters, G. : 'Das Alter der georgischen Schrift' – Oriens Christianus No. 39. (1955), p. – 63.
2. Bossert : Elements de la laugue georgienne (1873), p. – 6 – 9.

जॉर्जिया की लिपियाँ

ध्व०	नाम	५वीं	६वीं	११वीं	खु०	मे०	ध्व०	नाम	५वीं	६वीं	११वीं	खु०	मे०
अ	अन						त़	त़र					
ब	बन						उ	उन					
ग	गन						व	वी *					
द	दन						फ	फ़र					
ए	एनी						क	कअन					
व	विन						घ	घन					
ज़	ज़ेन						क़	क़र					
एइ	एइ *						श	शिन					
थ	थन						च	चिन					
ई	ईन						त्स	त्सन					
क्क	क्कन						द्ज़	द्ज़ल					
ल	लस						त्स	त्सल					
म	मन						त्श	त्शार					
न	नर						ख़	ख़न					
इए	इए *						ख्ख़	ख्ख़ार *					
ओं	ओंन						द्ज़	द्ज़न					
प्प	प्पार						ह	हाय					
ज़्ह	ज़्हन						ह	होय *					
र	रइ						फ़	फ़न *					
स	सन						य	ए *					

फलक संख्या – २०२

जॉर्जिया की मेहद्रूली -- हस्त लिपि के अक्षर

अ ब ग द ए व ज़ थ ई

क्क ल म न ओं प्प ज़्ह र स

त्त उ प क घ क़ श च त्स द्ज़

त्स त्श ख़ द्ज़ ह

(हस्त लेख)

अर अयवअदगइनत दअतीसमडलस

'हमारा जीवन क्या है' = ऊपर का भाषांतरण

फलक संख्या – २०३

पठनीय सामग्री

Albright, F. W. : Chronology of South Arabia.

Abbot, Nabia : The Rise of the North Arabic Script and its Kuranic Development (1939).

Ali Khan, Hakim Mahmud : इल्मुल हुरूफ़

Arberry, A. J. : Specimens of Arabic and Persian Palaeography (1929)

Avaltshivili, Z. : A History of Georgian People (1932).

Bernheimer, C. : Palaeografia erabica (1924).

Cantinean, J. : La nabateen – 2. Vols. (1930 - 32).

Drower, E. S. : Mandaean Writings (1934).

Enting, J. : Nabataeische Inschriften aus Arabien (1885)

Gugushivili, A. : The Georgian Alphabet.

Hoffman : Beginnings of Writing.

Kraeling, E. J. H. : The Origin and Antiquity of Mandaeans. (Journal of the American Oriental Society – 1929).

Karkash : A Critical History of Armenia (1882).

Littmann, E. : Safaitic Inscriptions (1943).

Lalaian, J. : Catalogue of Armenian MSS of Vassbourajan (1915).

Lepsius, J. : Armenia and Europe.

Mader, E. : L'evangile armenienne (1920).

Massey, W. : Origin and Progress of Letter.

Mason, W. A. : The History of the Art of Writing (1920).

Pett, T. A. : The Inscriptions of Sinai (1917).

Stark, F : Some – Pre – Islamic Inscriptions (Journal of Royal Asiatic Society 1939).

Winnett, F. V. : The Place of Minaeans in the History of Pre – Islamic Arabia. (1935).

" " : A study of the Liyanite and Thamudic Inscriptions (1937).

Wardrop. O. : Catalogue of Georgian MSS (1913).

□ □ □

परिशिष्ट

परिमार्जिका

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	ऐसा है	ऐसा होना चाहिये
२१	अन्तिम	सौजन्यता	सौजन्य
५०	३	२३	१५
५३	२१	२६००	१६००
७८	१	मौय	मौर्य
	३	पुनर्मठन	पुनर्गटन
८७	९	साास्राज्य	साम्राज्य
९०	२९	बहाहुर शाह	बहादुर शाह
९१	अन्तिम	संवर्ष	संघर्ष
९५	१	व्राण	ब्राह्मण
	१५	भू-गर्म	भू-गर्भ
	२१	१५०० ई० पू० में अन्त हो गया	१५०० ई० पू० में हो गया
	२२	होता	होना
९६	१४	सेसिटिक	सेमिटिक
९९	३०	पश्चिमात्तर	पश्चिमोत्तर
१०१	५	पहलबी	पहलवी
१०४	शीर्षक	संलिष्ट	संश्लिष्ट
११३	१०	स्पयं	स्वयं
१२५	६	इनने	इसने
	७	बड़	बड़े
	नोट	yazdaui	Yazdani
	२३	कलीहार्न	कीलहार्न
१२९	१०	१५०	५०
१३२	१२	तास्रपत्रों	ताम्रपत्रों
१५२	१	कामरूप की बंगला की असम लिपि	कामरूप की बंगला लिपि
१५७	१३	सामान्त	सामन्त
१८६	३	७४७ ७५३	७४७ से ७५३
१८८	१५	डा० कलिहार्न	डा० कीलहार्न
	२१	अ अ ण ण झ झ	अ अ ण रा झ
	अन्तिम	तीन से	तीन सौ से
२०४	१६	विभाजित होते	विभाजित होते होते
२०६	१७	नुलेख	सुलेख

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	ऐसा है	ऐसा होना चाहिये
२१२	११	जाज़ेफ़ हूकर जो	जाज़ेफ हूकर का जो
२२७	अन्तिम	राज्या	राज्य
२३२	१३	निनेब	निनेवः
२३५	५	Tosblets	Tablets
	नोट	जनुवाद	अनुवाद
२३८	१०	बेबीलोनिया नव –	बेबीलोनिया में नव –
२३९	२६	पृरातत्व	पुरातत्व
२४१	४	विश्ब	विश्व
२४३	नोट – 1	लूग़　विइव	लूग़ो　विश्व
२४८	२०	एकबहान	एकबटान
	२८	पुरोहित – राजा	पुरोहित ने – राजा
	अन्तिम	परसगादे	पसरगादे
२५०	२८	भ्रष्ट	भ्रष्ट
२५७	नोट – 7	सारे धिइव	सारे विश्व
२६१	७	उद्भय	उद्भव
	११	परसगादे	पसरगादे
	नोट – २	जेण्ट	ज़ेण्ड
२६२	१	फ० सं० – २७	फ० सं० १२७
२६३	९	निकलीं	निकले
२६४	४	असीकीज़	अर्साकीज़
२६४	१४	कोपेनगेन	कोपेनहेगेन
२६५	३	दि सेमी	सेसी
२६६	७	ऐन्तोने यान	ऐन्तोने इयान
२७२	१६	फ० सं० – १४१	फ० सं० – १३६
२७३	३१	भेद	भेज
२७६	१६	हखानीशीय	हखामनीशीय
२७९	११	शर्रुड	शर्रउ
२८२	७	आरम्भ किया (से) १४१ तक	
२८९	अन्तिम	वर्गों	वर्णों
२९०	५	Halvey	Halevy
३०२	११	राज्थ	राज्य
	१९	पटिया	पाटिया
३०३	३	षामरा　शमरा	शामरा　शामरा
३०७	६	१७१	१५७

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	ऐसा है	ऐसा होना चाहिये
३०८	६	Hitii	Hitti
३०९	३	सूल	मूल
	१५	प्रयम	प्रथम
	अन्तिम	६००	९००
३१०	मानचित्र	हत्ती	हित्ती
३१३	१५	सेसो	सेसी
	१९	अभिशेखों	अभिलेखों
३२१	२०	१८०	१६६
३२५	२	उसको	उसका
३२६	१	अमोज़ेज़को	मोज़ेज़ को
३३१	९	१४५	१६९
३३२	११	एक्र	एक
	नोट—२	Fisler	Fisher
३४०	१५	१८९	१७५
	१७	बन	बस
	अंतिम	१८९	१७५
३४३	२०	प्रयम	प्रथम
३५०	मानचित्र	क़ोरिया	कैरिया
३५९	१९	माम	माल
	२२	रोम के कारण सम्राट	रोम के सम्राट
	अंतिम	५१६ ई०	५१५ ई०
३६१	३३	मंगलों	मंगोलों
३६३	४	अनेकों	अनेक
	१५	नप्ट	नष्ट
३६६	१३	ब	एवं
	अंतिम	लघ	लघु
३७९	२८	दिथे	दिये
३८३	८	किया जाता।	किया जाता था।
	१७	तो, ज्ञो	तोय, ज्ञोय
३८५	१५	था, के विरुद्ध	था, विरुद्ध
	२१	चौंथि	चौथी

पृष्ठ सं	पंक्ति सं	ऐसा है	ऐसा होना चाहिये
३९९	१५	तिश्वत	तिब्बत
	नोट–	हसका	इसका
४००	९	प्रथान	प्रधान
४०२	१८	प्रतिदर्ज्ञ	प्रतिदर्श
	२५	अुमेद का लिपि का	अुमेद लिपि का
४०६	२	नाम पौराणिक	नाम की पौराणिक
४१४	१	वैसे बसे राज्वंश में	वैसे वैसे राजवंश में
४२७	२८	शेर	शर
४२९	११	Shn	Shu
४३२	२०	रक्त भरा थाला	रक्त भरा प्याला
४४१	१७	२५५	२३०
	२६	डसी	उसी
	२८	दसरे	दूसरे
४४३	५	di	bi
४५२	शीर्षक	रेखाओं का (ट्रोक)	रेखाओं के (स्ट्रोक)
४५४	८	भिंग वंश	मिंग वंश
४६६	२२	बर्षो	वर्षो
४७३	नोट–३	Palaeoraphy	Palaeography
	१२	गेंन्थियट	गौथियट
४७६	२७	बर्णसाला	वर्णमाला
४७९	शीर्षक		पटनीय सामग्री
४८०	१६	सिल्ला का राज्य	सिल्ला राज्य का
४८६	१२	२५२	२५१ क
	१६	Meeune	McCune
	अंतिम	Ecardt	Eckardt
४८६	२	८०५ से हो गया	८०५ में हो गया
	१६	बाहर	बारह
४९३	१५	२५३, २५४	२५४, २५४ क
	१८	लगभश	लगभग
४९६	६	ध्वनी	ध्वनि
	२२	D–1811	D–1911
५००	२	२५८ दिये गये हैं	२५८ पर दिये गये हैं
५१५	१९	पह	यहाँ
५१८	१	ब्रह्मा	ब्राह्मी

पृष्ठ सं०	पक्ति सं०	ऐसा है	ऐसा होना चाहिये
५२७	२४	१९ मार्च १६२१	१६ मार्च १५२१
	२६	स पबन्नु	से परन्तु
५४१	अंतिम	Rule	Royal
५५०	२७	१८२८ तक	१९२८ तक
	२८	१९९५ तक	१८९५ तक
५५१	२	इथ	इथ-तवी
	१७	थीबीज़ इनकी राजधानी थी	
	१९	१६०३ ई० पू०	१६७९ ई० पू०
	२१	१६७१	१६७८
५५२	१५	१४९० से १४३६ तक	१४६९ से १४३६ तक
५५३	२	सिस्र	मिस्र
५५५	प्रथम	उन्हें	उसके
	अन्तिम	आपने	अपने
५५८	प्रथम	७५१ से ६६३	७१५ से ६६२
	२३	पिपांच्वी	पियांखी
	२४	७१६	७१५
५६०	प्रथम	तिपास	तियास
	९	३३६ से ३२२ तक	३३६ से ३३२ तक
	११	किया	करने
	२१	टॉलेभी	टॉलेमी
५६१	२०	वूटस	ब्रूटस
	२६	ने भी अपनो	ने अपनी
५६२	८	सम्राट, जब मिस्र	सम्राट मिस्र
५६७	२७	बिलासी	विलासी
५९७	१७	फ० सं०–३०६	फ० सं०–३०५ क
६०३	शीर्षक	बामनुन	बामुन
६४७	१८	लाइनियर-एवं बी	लाइनियर–ए एवं बो
६५७	८	पिसिसट्रेटस	पिसिट्रेटस
६८८	२७	११	१७७१
७२१	१६	४५	४५१
७५३	२१	२७७६	१७७६
७६०	१	मोटज़ेबू	कोटज़ेबू
७६२	१०	जी० द० हेवसे	जी० डी० हेवेसी
७६४	१०	फ० सं० – ६८	फ० सं० – ६६
	११	फ० सं० – ६६	फ० सं० – ६८

□

पारिभाषिक शब्दावली (Glossary)

Alphabetic	वर्णात्मक
Anthropology	मानव विज्ञान; नृतत्त्व
Archaeological Finds	पुरातात्त्विक सामग्री
Archaeologist	पुरातत्त्ववेत्ता
Archaeology	पुरातत्त्व
Archaic	प्राचीन
Bas - relief	उद्भृत; उभरे हुए चित्र
Bibiliography	पठनीय सामग्री
Biconsonantal	द्विवर्णिक (एक वर्ण दो ध्वनियाँ)
Biliteral	,, ,, ,,
Boustrophoden	हल चलाने वाली पद्धति; दाएँ से बाएँ तथा बाएँ से दाएँ लिखने की पद्धति
Classical period	साहित्यिक काल
Cylinder Seal	वर्तुल मुद्रा
Decipherment	रहस्योद्घाटन
Demotic (from 'Demos')	जनता - लिपि
Determinative	निर्धारित शब्द
Embryo Writing	भ्रूण लिपि
Engrave	उत्कीर्ण करना
Excavation	उत्खनन
Flint	चकमक पत्थर
Horizontal	क्षैतिज
Ideographic	भावात्मक
Index	पृष्ठबोधनी; अनुक्रमणिका
Indo – European	भारोपीय
Inscribe	उत्कीर्ण करना
Inscription	अभिलेख

Linguistics	भाषा विज्ञान
Logographic	रेखाक्षरात्मक
Map	मानचित्र
Monophone	एक ध्वनि अनेक वर्ण
Museum	संग्रहालय
Observatory	वेधशाला
Phonographic	ध्वन्यात्मक
Pictographic	चित्रात्मक
Polyphone	एक वर्ण अनेक ध्वनियाँ
Pottery	मिट्टी के बर्तन
Sacrofagus	पत्थर की कब्र
Scribe	प्राचीन लिपियों को उत्कीर्ण करने वाला
Seal	मुद्रा
Short - hand	आशुलिपि
Specimen	प्रतिदर्श
Stele	कब्र पर लगाने वाला पत्थर
Syllabic	अक्षरात्मक
Syllable	एक वर्ण में व्यंजन + स्वर
Tablet	पाटिया
Test	परख
Text	पाठ
Transliteration	लिप्यन्तरण
Triconsonantal (Triliteral)	त्रैवर्णिक (एक वर्ण तीन ध्वनियाँ)
Type-Writer	टंकण
Uniconsonantal (Uniliteral)	एक वर्ण एक ध्वनि
Vertical	शिरोवृत
Vowel	स्वर

□

अनुक्रमणिका

यह अनुक्रमणिका वर्णानुक्रमानुसार तथा निम्नलिखित विषयानुसार प्रस्तुत की गयी है :—

१. अभिलेख
२. काल
३. खोजकर्ता
४. ग्रन्थ
५. ग्राम
६. जातियाँ
७, झीलें
८. द्वीप
९. देवता
१० देश
११. धर्म
१२. धर्म प्रवर्तक
१३. धर्म प्रचारक
१४. नगर
१५. नगर राज्य
१६. नदियाँ
१७. पदवियाँ
१८. पदाधिकारी
१९. पर्वत
२०. प्रांत
२१. भाषायें
२२. भूभाग
२३. महाद्वीप
२४. युद्ध
२५. राजकुमार, राजकुमारियाँ
२६. राजवंश
२७. राजवंशों के संस्थापक
२८. राज्य
२९. लिपियाँ
३०. लोग एवं निवासी
३१. विद्वान्
३२. विशिष्ट मनुष्य
३३. शासक
३४. संघ
३५. स्मारक
३६. सरकारें
३७. संस्कृतियाँ
३८. सस्थान
३९. साम्राज्य

ब्रैकेट के अन्दर लिखे गये शब्द या तो दिये गये नाम से सम्बन्धित हैं या नाम का दूसरा रूप हैं ।

□

अभिलेख

काल

खोजकर्ता

ग्रन्थ

ग्राम

जातियाँ

झीलें

द्वीप

देवता

देश

धर्म

धर्म प्रवर्तक

धर्म प्रचारक एवं धार्मिक नेता

नगरों के नाम

१. अक्कादियन भाषा में बाब = द्वार; इलिम = भगवान; बाबइलिंग; बाइबिल; बेबिल अर्थ हुए — भगवान का द्वार; ग्रीक भाषा में 'न' जोड़ने से हो गया 'बेबीलोन'। कसाइट शासकों ने इसका नाम कारदुनियाश रख दिया। अब केवल एक टीला रह गया है। उसी टीले के निकट हिल्ला ग्राम है।

नगर-राज्य

नदियाँ

पदवियाँ

पदाधिकारी

पर्वत

प्रांत

भाषायें

भू भाग

महाद्वीप

युद्ध

राजकुमार, राजकुमारियाँ

राजवंश

राजवंशों के संस्थापक

राज्य

लिपियाँ

लोग एवं निवासी

विद्वान

विशिष्ट मनुष्य

शासक

संघ

स्मारकों के नाम

स्मारक

सरकारें

संस्कृतियाँ

संस्थायें

सागरों के नाम

साम्राज्य

INDEX

A

1. *Autonomous Soviet Sacialist Republic.*

D

E

F

G

I

J

S

1. *Saint*

□

इस ग्रन्थ के लेखक

श्री ईश्वरचन्द्र राही

जिन्होंने

–समस्त भारत की यात्रा सायकिल पर की १९३८–६०

–विश्व के ३५ देशों की यात्रा सायकिल पर १९७४–७६ में की।

–४८ विश्वविद्यालयों, ८०९ महाविद्यालयों, ११,८०० विद्यालयों तथा ११४ रोटरी क्लबों में विभिन्न विषयों पर भाषण दिये।

–आठ पुस्तकें हिन्दी एवं अंग्रेजी में लिखीं तथा चार पुस्तिकाएँ इसी विषय पर लिखीं।

–विश्व की विभिन्न लिपियों के उद्‌भव एवं विकास के चार्ट बनाकर यूरोप में प्रदर्शनियाँ कीं।

–श्री राही जी का जन्म १५ अगस्त १९१६ को उ० प्र० के शाहजहाँपुर जनपद के एक ग्राम बेहटी में हुआ। बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। आर्थिक अभाव के कारण क्रमबद्ध शिक्षा ग्रहण न कर सके। किन्तु विश्व के महाविद्यालय में स्वाध्याय तथा यायावर जीवन द्वारा योग्यता प्राप्त की ऐसे कर्मठ विद्वान् पर भारत को गर्व है। □

रंजना लिपि के कुछ शब्द
महाराजाधिराज
अजटेक पंचांग का एक उदाहरण